ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 5 अंक 19 सितम्बर 2019

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

मंत्रिमंडल सचिवालय राजभाषा विभाग द्वारा आयोजित भारतेन्दु जयंती के अवसर पर 'भारतेन्दु एवं हिन्दी भाषा का उत्थान' विषय पर वक्तव्य देते साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र।
मंच पर हैं हिन्दी प्रगति समिति के अध्यक्ष सत्यनारायण एवं उपनिदेशक राजभाषा।

ए.एन.कॉलेज में आयोजित पर्यावरण महोत्सव एवं वृक्षारोपण कार्यक्रम का उद्घाटन बिहार के उपमुख्यमंत्री श्री सुशील कुमार मोदी ने किया। इस अवसर पर अपना विचार रखते कलानाथ मिश्र।

साहित्य यात्रा के संपादक कलानाथ मिश्र को अपनी गजल पुस्तक 'झील में चाँद' भेंट करते नई धारा के संपादक डॉ शिवनारायण।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक
डॉ॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	400/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1200/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1100/-
आजीवन सदस्यता	:	11000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)
उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन न० :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय:	

यहाँ से काटिए

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम: रु०..... द्वारा.....

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :.....

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :..... दिनांक :.....

दिनांक:		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1, खाता क्रमांक- 623000100016263, IFSC- PUNB0623600

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

वर्ष-5 अंक-19 जुलाई-सितम्बर, 2019

परामर्शी

डॉ॰ सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ॰ रामशोभित प्रसाद सिंह

डॉ॰ संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो॰ (डॉ॰) प्रतिभा सहाय

सहायक संपादक

डॉ॰ सत्यप्रिय पाण्डेय

डॉ॰ रवीन्द्र पाठक

आवरण चित्र

कृष्ण नन्दन झा

प्राध्यापक शहीद भगत सिंह कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

संपादक

प्रो॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/08750483224
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट,
दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

आलेख

बूँद और समुद्र : परहित सरिस धर्म नहिं भाई 11
डॉ० वेदप्रकाश अमिताभ

सामाजिक संघर्ष एवं सांस्कृतिक समन्वय 18
डॉ० बलराम तिवारी

आलोचनात्मक निबंध

हिन्दी के नामवर आलोचक 29
डॉ० चन्द्रभानु प्रसाद सिंह

आलोचनात्मक विश्लेषण

गोदान में पीढ़ियों का संघर्ष 32
प्रो. (डॉ.) गणेश प्रसाद

विश्लेषणात्मक निबंध

प्रेमचन्द के कथा साहित्य में मानवीय संवेदनाएँ 41
डॉ० राम सिंहासन सिंह

कहानी

ईशरदास की वसीयत 47
नरेन्द्र कोहली

लघु कथा

हे! प्रभु 56
डॉ. रामदरश मिश्र

कहानी

शिष्या 58
ममता कालिया

कथा

तेजस्विनी 64
रामदेव शुक्ल

आलेख

कबीर की काव्यभाषा 70
डॉ. संगीता वर्मा

विमर्श

मीन पीन पाठीन पुराने..... 78
डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय

कहानी
खोखा (राजस्थानी कहानी) 86
डॉ. नीरज दइया
विवेचना
रघुवीर सहाय का काव्य-संघर्ष 90
डॉ. सुभाष चौधरी
कहानी
मोबाइल नम्बर 94
जितेन्द्र शिवहरे
ललित निबंध
किताबें धोरां री..... 101
आबिद खान गुड्डू
विवेचना
हिन्दी लघु कथाओं में स्त्री 105
डॉ. ध्रुव कुमार
विश्लेषण
हिन्दी शब्द कैसे बना 109
डॉ. नवीन कुमार
चिंतन
नई शिक्षा नीति : विचारणीय बिंदु 115
डॉ. जसपाली चौहान
आलेख
नारी की बदलती अस्मिता : क्या खोया क्या पाया 120
डॉ. अमिता तिवारी
कहानी
गढ़ी हुई मूरत 125
डॉ. सुशीला गुप्ता
व्यक्तित्व विशेष
स्मृति शेष : डॉ. जगन्नाथ मिश्र 130
डॉ. अमित कुमार मिश्रा
अनुदित कविता (अतुल कनक की राजस्थानी कविता का हिन्दी अनुवाद)
बच्चा नहीं जानता, इन दिनों, मेरे पास बिटिया, आओ, बात करें! 132
डॉ. नीरज दइया
तकनीकी : तरक्की या त्रासदी 134
डॉ. अर्चना त्रिपाठी
सुबह का प्रणाम, नक्सलवाद 135
अमित कुमार मिश्रा
रिपोर्ट
साहित्य यात्रा सम्मान डॉ. राजपुत को 136
राजकुमारी मिश्र

सम्पादकीय

कश्मीर अब खुल कर साँस ले सकेगा

सीधी लकीड़ खींचना बड़ा टेढ़ा काम होता है। शयद इसीलिए जब भी किसी ने कश्मीर पर बात की तो सीधी बात करने से कतराते रहे। क्योंकि सब कुछ साफ और पारदर्शी नहीं था। जलरोधी कक्ष की तरह संविधान की धारा को कवच बनाकर कश्मीर को रखा गया। धारा 370 कश्मीरियत, कश्मीर की संस्कृति, पर एक काले अध्याय की तरह जोड़ दिया गया जो धीरे-धीरे कश्मीर की फिजाओं में नफरत, आतंक और आर्थिक विपन्नता का जहर घोल रहा था। सरकार का यह साहसिक कदम कश्मीर ही नहीं, देश की एकता अखंडता एवं गंगा जमुनी तहजीव की जड़ें मजबूत करेगी।

कश्मीर यानी कश्यप मीर, कश्यप मुनि के द्वारा बसाया गया पर्वत देश नगर। अतुलनीय प्राकृतिक संपदा के बीच ज्ञान, गुण एवं श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त एक प्रदेश। श्रीनगर का अर्थ सरस्वती का नगर, सौन्दर्य की धरती। आप्टे के संस्त शब्दकोश के अनुसार तंत्र ग्रंथों में इसकी स्थिति इस प्रकार बतायी गई है-

'शारदामठमारभ्य कुंकुमादितटांतकः,
तावत्कश्मीर देशः स्यात पंचाशद्योजनात्मक।

अर्थात शारदा मठ से प्रारम्भ होकर कुम कुम पर्वत के अंत तक पाँच सौ योजन (एक योजन अर्थात चार कोस) में फैला है कश्मीर।

कल्हण ने राजतरंगिनी में कश्मीर के लगभग साबा चार हजार वर्षों का इतिहास काव्यबद्ध किया था। इस पुस्तक में इतिहास के साथ साथ कश्मीर की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति, सांस्कृतिक विरासत का भी कल्हन ने सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। इसका रचनाकाल 1147 ई. के लगभग माना जाता है। आठ तरंगों में विभाजित राजतरंगिनी के 7826 श्लोकों में कश्मीर के राजाओं की सूची दी गई है। इन राजाओं का नामोल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं किन्तु यदि आप इस सूची को देखेंगे तो कश्मीर की तत्कालीन राज्य व्यवस्था से अवश्य परिचित हो सकेंगे। यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि कश्मीर के निर्माण में हिन्दू पंडितों की कितनी भूमिका रही है। इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि राजतरंगिनी भारतीय इतिहास लेखन का प्रस्थान बिंदु है। राजतरंगिणी एक निष्पक्ष और निर्भय ऐतिहासिक कृति है। कालांतर में इतिहास के साथ भी बहुत खेल हुआ। कल्हण ने राजतरंगिणी में कहा है कि एक सच्चे इतिहास लेखक की वाणी

को न्यायाधीश के समान राग-द्वेष-मुक्त होना चाहिए, तभी उसकी प्रशंसा हो सकती है-

श्लाध्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्ता।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती॥ (राजतरंगिणी, १/७)

अतः राजतरंगिनी में वर्णित कश्मीर न्याय की कसौटी पर है। विंसेन्ट ए. स्मिथ ने कहा है कि चौदहवीं शताब्दी में सिकंदर बुत किशन ने आतंक, हत्या, मतान्तरण और निष्कासन का दौड़ चलाकर कश्मीर की कृषि भूमि को उजाड़ दिया। यह उजाड़ने और निष्कासन का दौड़ रूका नहीं। स्वतंत्र और धर्म निर्पेक्ष राष्ट्र कहलाने वाले इस देश में कश्मीरी पंडितों पर लगातार अत्याचार होता रहा। धर्म परिवर्तन का दौड़ चलता रहा। उनके घर उजाड़े जाते रहे, संपत्ति लूटे जाते रहे, उनकी बहू बेटियों की इज्जत लूटी जाती रही और सहिष्णुता की दुहाई देने वाले मौन दर्शक बने रहे। सरकारें हाथ पर हाथ धरे बैठी रही। मम्मट, कैयट, बब्बट, अभिनवगुप्त, जैसे पंडितों की संतानें कश्मीरी पंडितों का परिवार अपने ही देश में प्रताड़ित होती रही।

कत्ल हुआ इसतरह हर बार किश्तों में मेरा,
कभी खंजर बदल गए, कभी कातिल बदल गया।

जब देश पर आतंकवाद का साया हो, हमारी सेना आतंकवादियों से लड़ रहे हों और यदि सेना के पक्ष में एक बात कह दी जाती है तो हम असहनशील हो गए। यदि शिक्षण संस्थाओं में देश विरोधी नारे लगाए जाएँ, 'भारत तेरे टुकड़े होंगे' कहे जाएँ और हमने आपत्ति की, तो हम असहनशील हो गए, असहिष्णु हो गए। लेकिन जब कश्मीरी पंडितों को घर से उजाड़ा जा रहा था, उन्हें बेघर कर अपनी मातृभूमि से हटाया जा रहा था, तो उनकी सहिष्णुता कहाँ चली गई थी? ईश्वर ना करें उस दर्द का एहसास आपको हो। लेकिन कश्मीरी पंडितों के साथ यह सब हुआ है। किसने किया? और किस बल पर किया? यह चिंतन का विषय है। इतिहासकार भी एकपक्षीय इतिहास लिखकर बांटते रहे हैं। कश्मीरी विस्थापितों पर जिस बेबाकी से इतिहासकारों को लिखना चाहिए था नहीं लिख सके।

कहा जाता है कि यदि इतिहास खत्म हो जाय तो साहित्य जीवित रहता है और उस आधार पर पुनः इतिहास की रचना हो सकती है। रचनाकारों ने कश्मीरी पंडितों की पीड़ा को, यातना को साहित्य में रूप रंग देकर उकेरने की चेष्टा की है। आप विस्थापित पंडितों के साहित्य को पढ़ें आप पूरा एक साँस में नहीं पढ़ पाएंगे। कश्मीरी पंडितों के विस्थापित साहित्य में व्यक्त उनकी पीड़ा, अन्याचार को देखकर मन सिहर उठता है। पढ़कर आपके रोंगटे खरे हो जाएंगे।

उन्हें प्रताड़ित कर अपनी जमीन अपनी संस्कृति, अपने समाज से जानवरों की तरह खदेर दिया गया। निष्कासित कर दिया गया। उस समय मानवाधिकार की गुहार लगाने वाले चुप थे। संविधान के तहत जो नागरिक का अधिकार है, वह कहाँ गया? उस असहिष्णुता पर कभी

किसी ने आवाज नहीं लगाई? आज असहिष्णुता पर बात करने वाले क्यों इस विषय पर मौन साधे हैं? एक बात तो याद रखनी होगी–

जो दूसरों पे तवसिरा कीजिए
सामने आईना रख लिया कीजिए।

सारे संविधान, सभी मानवीय मूल्य, समस्त मानवाधिकार की धज्जियां उड़ाते हुए उनकी बहू बेटियों के साथ बलात्कार किया गया, उनकी संपत्ति को सरेआम जला दिया गया, मस्जिदों से उन्हें घर छोड़कर भागने की धमकियाँ दी गईं और उन्हें घर छोड़ने को मजबूर कर दिया गया। आप समझ सकते हैं उनके दर्द को,जब आप अपनी आंखों के सामने अपना जलता हुआ आशियाना देखेंगे। अपनी आँखों के सामने अपने परिवार का आबरू लुटते देखेंगे, तब पता चलेगा। उसका दर्द कैसा होता है? उसकी टीस कैसी होती है।

महादेवी वर्मा कहती हैं –हमारे स्वयं जलने की हल्की अनुभूति भी दूसरे के राख हो जाने के ज्ञान से अधिक स्थायी रहती है। **जाके पाँव न फटी बेमायी सो क्या जाने पीड़ परायी।**

साहित्य में बरी ही मार्मिकता के साथ कश्मीरी पंडितों के विस्थापन, निष्कासन के दर्द को रेखांकित किया है। मैं नाम लेना चाहूंगा। महाराज कृष्ण संतोषी, रतनलाल शान्त, उपेन्द्र रैणा, महाराज कृष्ण भरत, अग्निशेखर, क्षमा कौल मोतीलाल साकी, कवि सोमनाथ, अजरून देव मजबूर, चन्द्रकांता, सुनीता रैना, शंभुनाथ शशिशेखर तोषानी आदि। शशिशेखर तोषानी की यह पंक्ति – फैलेगा–फैलेगा हमारा मौन, समुद्र की पानी में नमक की तरह आज सच होता दिखता है। अनेक ऐसे रचनाकारों ने उनकी पीड़ा को अपनी रचनाओं के माध्यम से आवाज दी है। इस क्रम में साकी की यह एक पंक्ति की **''वितस्ता का पानी बदरंग हो गया।''** बहुत बातें कहती हैं। विस्थापन से जुड़ी रचनाओं में सर्वत्र एक दहशत, पीड़ा आशंका के साथ–साथ अविश्वास की रेखाएँ दिखती हैं। डोगरी कहानियों में अपनी स्मिता खो देने के दर्द की अभिव्यक्ति चरम पर है।

संतोषी की यह पंक्ति–

''मैं पहनता हूँ अपने ही देश के जूते, जो मुझे कहीं भी ले जा सकते हैं, सिर्फ वहाँ नहीं जहाँ से हमें निकाला गया।'' – विस्थापन के दर्द हो उजागर करता है।

इसी तरह **पद्मा सचदेवा** ने भी जम्मू की पृष्ठभूमि पर लिखी अपने उपन्यास में कश्मीर घाटी की पीड़ा को व्यक्त किया है।

क्षमा कौल ने **दर्दपुरा** में धार्मिक उन्माद, आतंक की विभीषिका में जलते कश्मीर का विखंडन, कश्मीरी पंडितों का द्वंद्व एवं रिश्तों की जटिलता को लिपिबद्ध किया है। यह अंश देखें–

मरूँगा तो क्या बिगड़ेगा.. मरूँगा... गणपति की भेंट चढ़ूँगा... अगले जन्म में कश्मीर का राजा बनकर आऊँगा.... मगर तुम बहू-बेटियों का बचना जरूरी था। मेरी दोनों बेटियाँ फूला और सरला मिश्रीवाला कैम्प में रहती हैं... खैर... प्रभु से कहना.... वहाँ से आवाज बुलन्द करें... कि यहाँ देवी-द्वार घोर असुरक्षित है.... कोई सुरक्षा नहीं...''

सच ही, विस्थापन का दंश झेलते, जमीन, घर, धरोहर को खोकर कश्मीरी पंडितों की पीढ़ी अपनी अस्मिता की तलाश में जूझ रही है। कश्मीर का विस्थापन साहित्य भोगा हुआ यथार्थ है। उसमें इतनी ईमानदारी होती है कि उनकी रचनाएं मंत्र बन जाती हैं। उसमें मंत्र की शक्ति आ जाती है।

असहिष्णुता का नारा बुलंद करने वाले असंवेदनशील राजनेताओं के हृदय में शायद ही दिल को छू लेने वाली इन रचनाओं का असर हो। क्योंकि उनकी आंखों में स्वार्थ के रंगीन चश्मे लगे हैं। कश्मीरी पंडितों के लिए रचनाकारों की आवाज अंतत: सत्ता के गलियारों में गूँजी और उनके अधिकारों के लिए समस्त भारतवर्ष एक हो गया। सत्ता को मजबूरन उनकी खोई हुई अस्मिता वापस करनी पड़ी है। यही साहित्य की ताकत है, अभिव्यक्ति की शक्ति है, यह हमेशा आतंक, बंदूक और गोलियों से अधिक ताकतवर होती है। अनुच्छेद 370 के हटने से कश्मीर में यह फिर एकबार सिद्ध हो गया।

अब एक अत्यंत दुखद प्रसंग की चर्चा करना चाहूँगा। समाजिक, राजनैतिक, बौद्धिक जगत के जाने-माने हस्ताक्षर बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री एवं पूर्व केन्द्रीय मंत्री डॉ. जगन्नाथ मिश्र का विगत 19 अगस्त 2019 को देहवासन हो गया। वे जाने-माने अर्थशास्त्री एवं शिक्षाविद थे। इनके 40 से ज्यादा शोध-पत्र ख्यातिलब्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित थे। इनके निर्देशन ने 20 अर्थशास्त्रीयों ने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। साहित्य-यात्रा को उनका संरक्षण निरंतर प्राप्त था। वे साहित्य-यात्रा के नियमित पाठक थे। उनके देहवासन से देश ने एक राजनेता और बिहार ने अपना अभिभावक खो दिया। उनके प्रति साहित्य यात्रा परिवार अपनी हार्दिक श्रंद्धाजलि अर्पित करती है।

कलानाथ मिश्र

बूँद और समुद्र : परहित सरिस धर्म नहिं भाई

डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ

डॉ० रामचंद्र तिवारी ने उक्त कथित 'अमृत' की वास्तविकता पर शंका व्यक्त करते हुए लिखा है- विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय से मानवता के विकास की बात बार-बार दुहराई जाती है, लेकिन अभी तक इस समन्वय से किसी ऐसी विचारधारा का जन्म नहीं हुआ जो पूरे समाज को रूढ़ियों और अंधविश्वास से ही नहीं, अनेक प्रकार की प्रवंचनाओं और शोषणों से मुक्त कर सके। नागर जी अध्यात्म या मानवता के नाम पर 'दर्शनों के हवाई जहाजों' पर बैठ कर 'मुक्ति के एवरेस्ट' पर पहुँचने के पक्ष में नहीं है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में समसामयिक चुनौतियों और समस्याओं के साथ-साथ जीवन-मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं की उपस्थिति भी ध्यान आकर्षित करती है। अमृतलाल नागर इस दृष्टि से उनके सच्चे उत्तराधिकारी कहे जा सकते है। डा गोपालराय सरीखे समीक्षक उनके व्यपाक और वैविध्यपूर्ण कथा-संसार को लक्ष्य करके उन्हें 'प्रेमचंदोत्तर युग के सबसे बड़े उपन्यासकार' के रूप में सम्मान देते है। 'बूँद और समुद्र' उनकी कालजयी रचना है। इसकी भूमिका में नागर जी की स्वीकृति है कि 'इस उपन्यास में मैंने अपना और आपका अपने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का, गुण-दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों ऑकने का यथागति, यथासाध्य प्रयत्न किया है।' लेकिन यह उपन्यास केवल 'मध्यवर्ग' तक सीमित नहीं है, इसके अनेक पात्र यदि साधन सम्पन्न है तो कई बहुत दीन-हीन भी है। उपन्यास के शीर्षक का प्रतीकार्थ बहुत जटिल नहीं है। व्यक्ति बूँद और समाज समुद्र। व्यक्ति और समाज के अन्तर्संबंध और सामंजस्य पर बल देना उपन्यासकार का उद्देश्य है। डॉ0 महेन्द्र चतुर्वेदी ने प्रेमचन्द और नागर जी की औपन्यासिकता के सूक्ष्म पार्थक्य को रेखांकित करते हुए लिखा है-''प्रेमचंद में लोकमंगल और समाज-सत्य का आग्रह अत्यत प्रबल था, जिसके लिए वे व्यक्ति-सत्य की उपेक्षा भी करने को प्रस्तुत रहते थे। सामाजिक चेतना नागर जी के निकट भी महत्वपूर्ण है किन्तु वे व्यक्ति-चेतना के साथ उसका सामंजस्य

स्थापित करते हुए चलते है।''

'बूँद और समुद्र' में बाबा रामजी के माध्यम से इस सामंजस्य का स्पष्ट उल्लेख है- 'हर बूँद का महत्व है, क्योंकि वही तो अनंत सागर है, एक बूँद व्यर्थ क्यों जाय?' नागर जी का संकेत स्पष्ट है कि समाज के समुद में व्यक्ति की अहम् भूमिका है। व्यक्ति को अपना अलग व्यक्तित्व रखते हुए अन्ततः समाज के प्रति समर्पित होना चाहिए। निष्काम सेवा का व्रत लेकर दीन दुखियों के हित और कल्याण को समर्पित बाबा सज्जन को भी सेवा-मार्ग का पथिक बनाना चाहते है। सज्जन को उन्होंने समझाया है कि 'खरा समाजवादी वही है जो दूसरों के लिए जिए-जिए और जीने दे'। सज्जन द्वारा सार्वजनिक हित के लिए उद्योग-घंधे खोलने के निमित्त सहकारी बैंक की स्थापना उन्हीं की प्रेरणा का सुफल है। मध्य वर्ग को ऋणमुक्त करने का यह प्रयास महाजनों को नहीं रूचता। कर्मयोग में सच्चा आनंद पाने वाले वाबा व्यक्ति के लिए संयम और धैर्य बहुत जरूरी मानते है। तभी वह सेवा-मार्ग पर सफलता पूर्वक चल सकेगा। बाबा दूसरों की सेवा को अपरिहार्य मानते है- 'सेवक तुम्हें हर हालत में बनना ही पड़ेगा। माता अपने बच्चे की सेवा करती है, मित्र मित्र की सेवा करता है, मनुष्य स्वयं सेवा भी करता है। सेवा क्या छोटी वस्तु है रामजी? बाबा के लिए सेवा 'मानवतावाद' का मूलाधार है। सेवाव्रत में विज्ञान का तिरस्कार नहीं है, अपितु वह उससे गहरे संश्लिष्ट है-...इस मनमंथन से विज्ञान के जो अनुपम रत्न निकल रहे है, मानवताबाद का व्यापक प्रचार करके चेतना का जो अमृत निकलेगा, वह समस्त लोक को मिलेगा।' बाबा का सेवाव्रत व्यावहारिक है और यह पुरातन मंतव्यों-'परोपकाराय पुण्याय' तथा 'ओइम् क्रतो स्मर' से भी जुड़ा हुआ है। लेकिन इस सोच को अतीतजीवी और पुरातनवादी नहीं कहा जा सकता है। उपन्यास के समापन चरण में प्रतिगामी चिन्तन के विषय में उपन्यासकार निभ्रांत है- 'मृत्यु के भयचक्र में पड़कर परलोक चिंतन में फँसाये रखने वाला दर्शन नितांत जड़ और आत्मघातक है। इस परलोक वाले दर्शन और उसके धर्म को लोकजीवन से समेट कर म्यूजियम में रख देना ही उचित और समयानुकूल है''।

डॉ० रामचंद्र तिवारी ने उक्त कथित 'अमृत' की वास्तविकता पर शंका व्यक्त करते हुए लिखा है- 'विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय से मानवता के विकास की बात बार-बार दुहराई जाती है, लेकिन अभी तक इस समन्वय से किसी ऐसी विचारधारा का जन्म नहीं हुआ जो पूरे समाज को रूढ़ियों और अंधविश्वास से ही नहीं, अनेक प्रकार की प्रवंचनाओं और शोषणों से मुक्त कर सके।' नागर जी अध्यात्म या मानवता के नाम पर 'दर्शनों के हवाई जहाजों' पर बैठ कर 'मुक्ति के एवरेस्ट' पर पहुँचने के पक्ष में नहीं है। किसी देवता के प्रति श्रद्धाभाव उनके पात्रों को अंधविश्वास-ग्रस्त नहीं करता। वे अपने लिए 'ज्ञान और बल' अर्जित करते है। कन्या ने अपने 'मन की घृणा' से उबरने की बात कही है। उपन्यास ने इस भयावह सत्य को बार-बार अनुभव किया है कि इस देश में, पृथ्वी पर केवल व्यक्ति रहता है, समाज नहीं। अतः आकस्मिक नहीं कि सज्जन और कन्या का 'मानवता का दर्शन' करने के लिए कर्मरत होना कोई विचारधारा विशेष न होते हुए भी आश्वस्त करता है। उपन्यास का समग्र विजन इन शब्दों में व्यक्त हुआ है-

''मनुष्य का आत्मविश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है, विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख-दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे- जैसे बूँद से बूँद जुड़ी रहती है-लहरों से लहरें। लहरों से समुद्र बनता है-इस तरह बूँद में समुद्र समाया है''

व्यक्ति की सामाजिक चेतना को जगाने का संदेश न अवैधानिक है, न अव्यावहारिक है। शंका बाबा रामजी के रहस्यमय व्यक्तित्व को लेकर हैं क्योंकि ऐसे आध्यात्मिक और सेवाव्रती दुर्लभ है। लेकिन कर्नल, सज्जन, कन्या और अन्ततः ताई भी जिस तरह परहित और परसेवा में जुटे हुए है, वह उपन्यासकार के विजन को पुष्ट और प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। सज्जन, बाबा रामजी की प्रेरणा और कन्या के साहचर्य-सहयोग से अपने अभिजात संस्कारों, भोगवादी जीवन-शैली से विरत होता है, यह अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है। ताई इस उपन्यास का ही नहीं हिन्दी उपन्यास का एक अविस्मरणीय चरित्र है। ताई लखनऊ के एक धनाढ्य की परित्यक्ता पत्नी है। उपन्यास के पूर्वार्द्ध में वे कुरूपता, घृणा और प्रतिहिंसा की प्रतिमूर्ति के रूप में परपीड़क है। उनकी हवेली के आस-पास के सभी निवासी-पड़ोसी उनके जादू-टोना संबंधी गतिविधियों से त्रस्त है। प्रेम-विवाह करने वाले वर्मा-दम्पत्ति और चित्रकार सज्जन भी उनकी घृणा और हिंसा के लक्ष्य बनते है। उपन्यासकार संकेत देता चलता है कि वे अपने परित्याग और तिरस्कार की प्रतिक्रिया में भयावह और बीभत्स हुए है। अचानक बिल्ली के सद्यजात बच्चे उनके सोये हुए वात्सल्य को जगा जाते है। तारा के गर्भ को नष्ट करने के लिए टोटका करने वाली ताई पूरी तरह से उसकी प्रसूति का दायित्व उठाती है। ताई उपद्रवियों से सज्जन की रक्षा करती है। वे राधाकृष्ण का विवाह कराती है, बाबा रामजी की समाज सेवा के लिए धन देने में संकोच नहीं करती। अपनी मृत बेटी की याद में दुखदग्ध हो अचेत भी हो जाती है। कन्या को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करना भी उनके वात्सल्य भाव का प्रमाण है। उनके चरित्र को नागर जी ने बहुत मनोयोगपूर्वक रचा है, लेकिन रामविलास जी का विचार सही है कि ताई को उपन्यास में कुछ अधिक स्थना मिलना चाहिए था।

डॉ0 रामविलास शर्मा ने 'अमृत और विष' के विषय में लिखा है-''इस उपन्यास की एक विशेषता स्त्रियों का संघर्ष है। पूँजीवादी समाज में सबसे ज्यादा शोषण की यंत्रणा उन्हीं को सहनी पड़ती है। '(कल्पना, मार्च-अप्रैल 1967, पृ0 23)। यह विशेषता संभवतः नागर जी के अधिकतर उपन्यासों में ध्यान आकर्षित करती है। 'बूँद और समुद्र' में भी ताई, कन्या, चित्र, शीला, बड़ी आदि अनेक नारी चरित्र पुरूष प्रधान पूँजीवाद समाज में विसंगतियों को जीने के लिए अभिशप्त है और उपन्यासकार ने नारी-मात्र की नियति को कभी सहानुभूति तो कभी आक्रोश के साथ बयान किया है। स्वयं स्त्रियाँ समाज में अपनी दयनीयता को लेकर जहाँ-तहाँ क्षुब्ध, वाचाल और संत्रस्त है। यदि तारा का विचार है-'औरत की तो मट्टी पलीद है इस देश में' तो अनपढ़ बड़ी का अनुभव है कि 'हमारे समाज में स्त्रियों को किसी तरह की सुतंत्रता नहीं'। उपन्यासकार ने स्त्री के कथित पतन के लिए पुरूषों की लोलुपता और नीचता को ही उत्तरदायी माना है। चित्र आधुनिक है, अनेक पुरूषों से उसके देहसंबंध है लेकिन वह वास्तव में व्यभिचारिणी नहीं है। 'मैं सदा पत्नी

बनना चाहती थी और मेरे दोस्त और शुभचितंक मझे सदा वेश्या बनाते रहे'-उसका यह आक्रोश पुरूष वर्चस्व में नारी की हैसियत का बयान है। चित्र यदि आर्थिक तौर पर स्वावलंबी होती तो शायद हर कोई सरलता से उसका का अनुभव है कि 'हमारे समाज में स्त्रियों को किसी तरह की सुतंत्रता नहीं। उपन्यासकार के स्त्री के कथित पतन के लिए पुरूषों की लोलुपता और नीचता को ही उत्तरदायी माना है। चित्र आधुनिक है, अनेक पुरूषों से उसके देहसंबंध है लेकिन वह वास्तव में व्यभिचारिणी नहीं है। मैं सदा पत्नी बनना चाहती थी और दोस्त और शुभचिंतक मझे सदा वेश्या बनाते रहे- उसका यह आक्रोश पुरूष वर्चस्व में नारी की हैसियत का बयान है। चित्र यदि आर्थिक तौर पर स्वावलंबी होती तो शायद हर कोई सरलता से उसका शोषण नहीं कर पाता। महिपाल का यह कथन कटु होते हुए भी यथार्थ के निकट है-सौ में मुश्किल से दस-पाँच दो, बाकी हिन्दुस्तान का हर घर औरतों के लिए कसाई खाना है'। महिपाल ने ही स्त्री को 'सर्वहारा' मानते हुए उनके क्षुब्ध और विद्रोही होने की संभावना व्यक्त की है-'जितने मजलूम है, जितने सर्वहारा है, वह अब चोट खाए नाग की तरह फन उठा रहे है। इस बार उन्हें कोई न रोक सकेगा।' इस उपन्यास में मुखर विद्रोह न सही वैचारिक प्रतिरोध तो शुरू हो ही चुका है। चित्र का कहना है-''मेरी यह तबियत होती है कि तीन चार सौ पतियों का झुंड-उसमें कुछ शादीशुदा, कुछ रखैल लेकर एक हरम बसाऊँ।''

उपन्यास में नारी-स्वतंत्रता के विविध पक्षों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भी देखा-परखा गया है। बुद्ध और शंकराचार्य के स्त्री-विरोधी दृष्टिकोण की चर्चा होने पर वन कन्या का व्यंग्य-वचन है-'बुद्ध और शंकराचार्य अगर सभी होते तो लिखते कि पुरूष साक्षात् नरक है'। वन कन्या ने अपने लेख में बताया है कि किस तरह नारी के प्रति पुरूष का दृष्टिकोण अमानवीय होता गया है। किस तरह अर्थ का अनर्थ हुआ है'-जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवताओं का निवास रहता है'-इस महान उक्ति को निहायत बेशर्मी के साथ झुठला कर भारतीय पुरूष समाज व्यावहारिक क्षेत्र में नारी का स्थान ढोल, गवाँर, शूद्र पशु के साथ मानता आया है।'' उपन्यास के कुछ पात्र समाजिक ढाँचे और रूढ़ मानसिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते है, तो यह उपन्यासकार का अपना विजन भी जान पड़ता है। महीपाल का मानना है-'हमें निर्भय होकर शांतभाव से अपने देश के दर्शन, इतिहास, धर्म और संस्कृति की जाँच करनी होगी। जो कुछ बेउसूल है, समाज को अज्ञान और अंधनिष्ठा से बाँधता है, उसे तुरंत खत्म कर देना चाहिए''। इस उपन्यास में प्रमाण सहित दिखाया गया है कि धर्म और संस्कृति के नियामक ऋषियों ने स्त्री को ऊँचा दर्जा दिया था, लेकिन लोकाचार में उसकी स्थिति कालांतर में हीन होती गई। जहाँ ऋग्वेद-काल में स्त्री-गृहिणी गृहस्वामिनी थी, कन्या का विवाह बिना उसकी अनुमति के नहीं होता था, स्मृतिकारों के जमाने में नारी को पुरूष की दासी बना दिया गया। उपन्यास में एक स्थान पर महाभारत के ''वन पर्व'' में सूर्य-कुंती संवाद में सूर्य का यह कथन उद्धृत है-'हेसुन्दरी! तुम्हारें माता-पिता या गुरूजन, किसी को भी तुम्हें दान करने का अधिकार नहीं। कन्या शब्द का अर्थ यह है कि वह सबकी कामना पूरी कर सकती है''।

वन कन्या को विश्वास है कि स्थितियाँ शीघ्र बदलेंगी और स्त्रियों का राज आएगा। सज्जन को लगता है कि 'समाज का आर्थिक ढाँचा बदलते ही यह बेतुका खेल भी बंद हो जाएगा।' बेतुका खेल का मतलब समानता के नाम पर नारी को देह की स्वतंत्रता देने का खेल। लेकिन स्त्री की आजादी किसी वाद, राजनीतिक दल, किसी सामाजिक सम् पर निर्भर नहीं है। उपन्यास के विजन का यह पक्ष महत्वपूर्ण कि अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई स्त्रियों को स्वयं लड़नी है-''जिस दिन स्त्री जाति अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का अंत करने के लिए निश्चयपूर्वक खड़ी हो जायेंगी, उसी दिन दुनिया से हर तरह के अत्याचार मिट जायेंगे। यह विचार-मंत्री हर शोषित-दमित वर्ग के लिए प्रेरक और व्यावहारिक है।

स्त्री की स्वतंत्रता की चर्चा में विवाह-संस्कार की जरूरत और स्त्री-शोषण में इसकी भूमिका को लेकर विचार-विमर्श स्वाभाविक है। इस उपन्यास में यदि अनपढ़ 'बड़ी' दुनिया से 'शादी की रस्म' उठा देने के पक्ष में है तो डा0 शीला इस नतीजे पर पहुँची है कि 'शादी का रिवाज इंसानों में धोखा धड़ी, झूठ और अत्याचारों को जगाता है'। शीला का मानना है-'इसे हटा दीजिए, फिर देखिए औरत मर्द के रिश्ते कितने जल्दी नार्मल होते जायेंगे'। सज्जन भी शादी और मारेल कोड को खत्म करने की बात करता है। हालांकि बाद में वह वन कन्या से विवाह कर एक दूसरे को समझने

श्राजनीतिक कदाचार के साथ-साथ जातिभेद, भोगवादी मानसिकता, न्यायव्यवस्था, धार्मिक पाखंड आदि विषयों और विसंगतियों से भी इस उपन्यास के पात्र जब-जब जूझते है। महिपाल का यह कथन उपन्यास में स्वीकृत सत्य के रूप में आया है- जब तक हिन्दुस्तान में यह जटिल जातिभेद रहेगा, हम लाख सुधार करने पर भी समाज को 'मानव-समाज' के रूप में प्रतिष्ठित करने में असमर्थ रहेंगे।

वाले, प्यार करने वाले दम्पत्ति के रूप में समाज सेवा में जुटा है। कर्नल और उसकी पत्नी का दाम्पत्य जीवन आदर्श है, लेकिन महिपाल स्वयं पर अनचाहे थोपे गए विवाह से क्षुब्ध है। सभी विचारकों ने विवाह संस्था के कमियाँ तो गिनाई है लेकिन कोई 'विकल्प' उनके सामने नहीं है। 'लिव इन रिलेशनशिप' जैसे विकल्प भी आधे-अधूरे और प्रायः असफल सिद्ध हुए हैं। नागर जी 'विवाह' को खारिज नहीं करते लेकिन एकतरफा पतिनिष्ठा उन्हें काम्य नहीं है। दाम्पत्य जीवन से क्षुब्ध महिपाल भी पत्नी को 'जीवन की निष्ठा' मानता है। लेकिन वह जीवन साथी से परस्पर लगाव और आत्मीयता की अपेक्षा भी रखता है-''दुख-दर्द, हारी-बीमारी की मैटीरियल रिस्पोंसिबिलिटीज से लेकर सुन्दर, नैतिक और आध्यात्मिक धरातल तक वह अपने जीवन साथी के सहारे उठ सके।'' 'बूँद और समुद्र' के स्त्री संबंधी सम्पूर्ण विजन में भी सामंजस्य बैठाने पर जोर है। मौजूदा स्त्री-विमर्श में जो पुरूष वर्चस् को चुनौती, पति-परित्याग, देह की स्वतंत्रता, आर्थिक आत्मनिर्भरता आदि अवधारणाएँ चर्चित हुई है, उनमे पति-परित्याग को छोड़कर सभी कम-वेश

इस उपन्यास में संश्लिष्ट है। बड़ी के पर पुरूष से प्रेम और देहसंबंध को उपन्यासकार स्वीकार नहीं कर पाया क्योंकि विरहेश के साथ का उसका विवाहरहित जीवन कैसा बीता, इसका कुछ खास पता नहीं चलता है।

'बूँद और समुद्र' का विजन जितना प्रासंगिक और स्थितियों, चरित्रों, घटनाओं से निथर कर कृति में सहज ध्वनित है, उतनी ही उपन्यास में 'परिवेश की प्रामाणिकता' है। लखनऊ के चौक क्षेत्र के बहाने पूरे देश का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिदृश्य मूर्त हो उठा है। प्रथम आम चुनाव 1952 के आस-पास के लखनऊ और उसके माध्यम से पूरे देश को जानने का अवसर यह कृति जुटाती है। चुनाव के समय जिस तरह मूल्यों का हनन होता है, एक दूसरे की छीछालेदर होती है, उसे देखते हुए महिपाल जैस बुद्धिजीवी का क्षोभ स्वाभाविक है। पहले आम चुनाव में ही राजनीतिक दलों से मोहभंग नागर जी की दूरदर्शिता को भी दर्शाता है। महिपाल 'कम्यूनिस्टों को धूर्त', सोशलिस्टों को हिजड़ा, कांग्रेसियों को साम्राज्यवादी वेश्या का भड़ुआ ओर शैतान तथा संघ आदि साम्प्रदायिक संस्थाओं से हिमायतियों को पाकिटमार पौलिटीशियन कहकर इन सबसे नफरत करता है। उपन्यासकार ने 'निकम्मी लडंत' कहकर उसके इस नकारवाद पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। महिपाल प्रगतिशील विचारों का है और 'कम्यूनिज्म को 'गाँधीवादी अहिंसा का जनेऊ, पहनाकर उसे भारतीय परिवेश के अनुरूप अपनाने का कायल है। हमेशा द्वन्द और आवेश में जीने वाला महिपाल उपन्यास के उत्तरार्द्ध में एक पूँजीपति के हाथ का खिलौना बन गया है। निराला की कविता 'करना होगा यह तिमिर पार' से प्रेरणा लेने वाले महिपाल का आत्मघात इस उपन्यास का त्रासद बिन्दु है। महीपाल ही नहीं वामपंथी वनकन्या भी पार्टियों को जनविरोधी मानती है। उसने एक महत्वपूर्ण बात कही है-''जिस व्यक्ति की पीड़ाओं का सामूहिक रूप में दर्शन करके ये राजनीतिक सिद्धान्त बने हैं उसकी अनुभूति, उसकी तड़प भी हमारे मन से निकल गई है। हमारी नजर अब सिर्फ पॉलटिकल रह गई है-सिर्फ पॉलटिकल-कोल्हू के बैल की तरह आदत के कारण चक्कर काटते चले आ रहे है, काम कुछ भी नहीं रहा'। सज्जन-महिपाल संवाद में गाँधी जी की साधन-साध्य पवित्रता का समर्थन तो है लेकिन अहिंसा के सिद्धान्त को हर जगह लागू होने में संदेह भी है।

श्राजनीतिक कदाचार के साथ-साथ जातिभेद, भोगवादी मानसिकता, न्यायव्यवस्था, धार्मिक पाखंड आदि विषयों और विसंगतियों से भी इस उपन्यास के पात्र जब-जब जूझते है। महिपाल का यह कथन उपन्यास में स्वीकृत सत्य के रूप में आया है-''जब तक हिन्दुस्तान में यह जटिल जातिभेद रहेगा, हम लाख सुधार करने पर भी समाज को 'मानव-समाज' के रूप में प्रतिष्ठित करने में असमर्थ रहेंगे। स्त्री-उत्पीड़न की तरह जातिभेद के समाधान की कुंजी भी आर्थिक ढॉचे को तोड़ने में है-'हमारी नागरिक सभ्यता महाजनी गणतंत्र की सभ्यता है, जिसका आधार आर्थिक है। जब तक वह पूरी तौर पर नहीं टूटता तब तक जाति विधान नहीं टूट सकता।' मंदिर ही तरह ही न्याय-मंदिर अपनी पवित्रता खो रहे हैं, इस विडम्बना को भी महिपाल ने उजागर किया है। उसके अनुसार-सत्य बिक्री की चीज है, सत्य झुठलाने की चीज है-हमारे न्यायालय और मंदिर अधिकांश में चौबीसों घंटे इस बात का ढिंढोरा पीटते रहते है।' सकारात्मक बदलाव के लिए

सामाजिक, विधिक व्यवस्था में बदलाव जरूरी है, तभी जातिवाद, अन्याय आदि से छुटकारा संभव है। कन्या और सज्जन इस बात पर हतप्रभ है कि देश क शिक्षित वर्ग खाने-पीने और मौज करने के सिद्धान्त पर चल रहा है, जबकि खाओ, पीओ और मौज करो का सिद्धांत पूँजी के काले नाग का जहर है', जिसे उतारे बिना देश समाज का कल्याण संभव नहीं है।

इस बड़े आकार के उपन्यास में गजब की पठनीयता है। उपन्यास के समापन अंश में जरूर वैचारिक ठहराव है या महिपाल के स्वगत-चिंतन वाले स्थल कथा-प्रवाह को अवरूद्ध करते है, फिर भी उपन्यास का अधिकतर हिस्सा जीवंत चरित्रों, उनकी ताजी-टटकी बोली-बानी और कौतूहलजनक घटनाओं के कारण स्वयं को पढ़वा लेता है। ताई का बिल्ली के बच्चों से लगाव, तारा के बच्चे के प्रति ममत्व, महिपाल, शीला, सज्जन वन कन्या के साहचर्य के क्षण, बाबारामजी से संबंधित प्रसंग पाठक को ऊबने नहीं देते है। नागर जी की पात्र-स्थिति के अनुरूप भाषा बेहद सप्रेषणीय है। व्यंग्य-विनोद उपन्यास में सर्वत्र है। डॉ0 शशि भूषण सिंहल का यह कथन 'बूँद और समुद्र' पर भी सटीक है-''नागर जी की सहज विनोदवृत्ति (सेन्स आफॅ हृयूमर) तथा मस्ती के कारण उनकी रचनाओं में असाधारण सजीवता है। नागर की आस्था युक्त तथा आग्रह-मुक्त दृष्टि ने हमारे सामाजिक जीवन के बेढंगेपन पर जमकर व्यंग्य किये है, किन्तु उनकी विनोदवृत्ति उन्हें कटु या निराश नहीं होने देती है'' (हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ पृ0-102)। गंभीर स्थलों की भाषा भी अर्थग्रहण कराने में सर्वथा सक्षम है। छोटे-छोटे वाक्य भी व्यंजनाओं और अर्थच्छटाओं से सम्पन्न है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

क-बर्बरता अब सौन्दर्य की आड़ लेकर जीती है।
ख-प्यार बड़ी चीज है। प्यार से दुनिया बदल जाती है।
ग-थककर बैठ जाना ही सच्ची हार है।

बड़े आकार के उपन्यास में बहुत से प्रसंग भरती के या नगण्य भी होते है। विरहेश-बड़ी का प्रसंग अवश्य अनावश्यक सा लगता है, उससे किसी तरह का मूल्य नहीं कौंधता। विरहेश एक मनोरंजक पात्र बनकर रह गया है। इस प्रसंग का उपन्यास के व्यक्ति और समाज के सामंजस्य वाले विजन से कोई तालमेल नहीं है। अन्य सभी घटनाएँ और प्रसंग उपन्यास में सलीके से गुँथे हुए है। सज्जन और कन्या का ब्रज-प्रवास भी अलग-थलग नहीं है। इस उपन्यास को कुछ लोगों ने आँचलिक-नगराचलिक कहना चाहा है। वस्तुतः यह उपन्यास महाकाव्य सरीखा है, जिसमें स्वतंत्रता बाद के कुछ वर्षों के भारतीय समाज राजनीति, सांस्कृतिक संक्रमण का विस्तृत प्रामाणिक और प्रासंगिक चित्रण हुआ है।

डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ, डी-131, रमेश विहार, अलीगढ़-202001
मो0-09837004113

सामाजिक संघर्ष एवं सांस्कृतिक समन्वय

डॉ. बलराम तिवारी

नृजातीय संघर्ष का यदि एक वैश्विक संदर्भ है तो एक भारतीय संदर्भ भी है। सुन्नी आतंकवादी संगठन आई. एस. आई. एस. (इस्लामिक स्टेट इन इराक एण्ड सिरिया) का संघर्ष एक ओर सिरिया और इराक की सत्ता से है तो दूसरी ओर शिया नृजातीय समूह से। सूसन सैटैग के चित्र में गाजापट्टी में इजाराइली सैनिक कुछ बूढ़ी फिलीस्तीनी औरतों को राइफल के कून्दों से पीटते दिखाई देते है। फिलीस्तीनी और इजराइली संघर्ष दो परस्पर विरोधी नृजातीय समूहों का संघर्ष है। वे अपनी अस्मिता और राष्ट्रीय वजूद के लिए लड़ रहे है।

'सामाजिक संघर्ष एवं सांस्कृतिक समन्वय' में तीन बीज शब्द है- समाज, संघर्ष एवं संस्कृति। इनकी परिभाषा अपेक्षित है। समाज[1] एक निश्चित भूभाग में रहनेवाली आबादी से खास अभिलक्षणों से विभूषित एक स्वनिर्भर, सतत संचरणशील एवं आन्तरिक स्तर पर स्वायत संस्था है। समाज की यह परिभाषा राष्ट्र या राज्य की परिभाषा के करीब है।

यहाँ 'संघर्ष'[2] (Conflict) बहिर्द्वन्द का अर्थ होता है। दो समाजो, समुदायों, राष्ट्रों या एक ही समाज के दो हिस्सों की टकराहट ही संघर्ष है। असमानताएँ संघर्ष पैदा करती है। इसका कारक है एक ही वस्तु या स्थिति को पाने की परम्पर विरोधी प्रवृतियाँ। इस क्रम में अपने लक्ष्य से जितनी अधिक भावनात्मक सम्बद्धता होगी, संघर्ष के हिंसक होने की संभावना उतनी ही अधिक होगी।

समाजशास्त्रीय अर्थ में 'संस्कृति'[3] एक खास आबादी के कार्य-कलाप एवं विचार के पैर्टन को प्रदर्शित करती है। नृजाजीय समूह (Ethnic Group) से इसकी सम्बद्धता अनिवार्य है। यह नृजातीय समूह के ही नियमों, आचारों-विचारों, पहनावें-ओढावे, बोली-बानी की जटिल संरचना है। यह उस नृजातीय समूह के व्यक्तियों की सामूहिक पहचान निर्धारित करती है। संस्कृति विशेष से जुड़ी इस सामूहिक पहचान को ही नृजातीयता (Ethnicity) कहते है। यह वंशानुक्रम से यात्रा करती है और धार्मिक, भाषायी, प्रजातीय

एवं जातीय-जनजातीय आधारों पर आधारित होती है। उदाहरणार्थ, कोई बाहरी व्यक्ति एक भाषायी नृजातीय समूह की भाषा खीचकर उसका सदस्य नहीं कहला सकता और न कोई उस भाषायी नृजातीय समूह की भाषा को न बोलकर उसकी सदस्यता से वंचित हो सकता है।

भूमण्डलीकरण के आयात-निर्यात के लिए राष्ट्रों की सरहदें तोड़ दी है, संचार-क्राति के एक साथ असंख्य देश संचार-जाल में बंध गए है, फेसबुक पर जाति-धर्म से ऊपर उठकर दोस्तियाँ हो रही है, उत्तरआधुनिकवाद ने इतिहास की समाप्ति की घोषणा कर दी है फिर जातियाँ, प्रजातियाँ या नृजातीय समूह आपस में लड़ क्यों रहे है? ज्याँ बोद्रिला कहते है; ''अब किसी मूल वास्तविकता को खो बैठने की कराक भी हमारे भीतर नहीं है .....समाज में द्वन्द्वात्मक शक्तियाँ खत्म हो गई है... .....बीते हुए संदर्भ खो गए है, क्योंकि वे आधुनिक समय की तीव्रता से अपने को बचा नहीं सकते।''[4] इस घोषणा के बावजूद कभी बगदाद से कभी फिलीस्तीन से कभी कश्मीर, अहमदाबाद या मुजफ्फराबाद से कभी आसाम, मणिपुर, नागालैण्ड या छोटानागरपुर की पहाड़ियों से या बस्तर के जंगल से चीखें क्यों उठ रही है? इसका अर्थ है कि जाति, प्रजाति या नृजाजीय समूह का सामूहिक पहचानवाला इतिहास समाप्त नहीं हुआ है। वह अब भी जारी है। अस्तिव और पहचान पर जब भी संकट खड़ा हुआ है, संघर्ष ने हिंसक रूप लिया है। पूरी दुनिया में छिड़े संघर्षो की सूची तो बहुत लम्बी है, भारत में हो रहे समूह-संघर्षो की सूची भी छोटी नहीं है। यहॉ अध्ययन को सीमित करने के लिए सिर्फ तीन बिन्दुओं पर चर्चा की जा सकती है:

(1) अन्तर्नजातीय संघर्ष

(2) अन्तर्घार्मिक संघर्ष

(3) आतंकवादी-अलगाववादी संघर्ष।

उपर्युक्त सभी संघर्षो में एक बात समान रही है-हिंसा की स्वीकृति।

नृजाजीय संघर्ष का यदि एक वैश्विक संदर्भ है तो एक भारतीय संदर्भ भी है। सुन्नी आतंकवादी संगठन आई. एस. आई. एस. (Islamic State in Iraq and Syria) का संघर्ष एक ओर सिरिया और इराक की सता से है तो दूसरी ओर शिया नृजातीय समूह से। सूसन सैटैग के चित्र में गाजापट्टी में इजाराइली सैनिक कुछ बूढ़ी फिलीस्तीनी औरतों को राइफल के कूदों से पीटते दिखाई देते है। फिलीस्तीनी और इजराइली संघर्ष दो परस्पर विरोधी नृजातीय समूहों का संघर्ष है। वे अपनी अस्मिता और राष्ट्रीय वजूद के लिए लड़ रहे है। जुलाई 2004 में मणिपुर में मनोरमा नामक स्त्री की बलात्कार के बाद सैनिकों द्वारा हत्या कर दी गई। मणिपुर या नागालैण्ड के लोग ऐसी घटनाओं को सिर्फ सैनिक अत्याचार के रूप में नहीं देखते, वे इसे आर्यन और मंगोलियन के संघर्ष के रूप में देखते है। मनोरमा के साथ हुए बलात्कार के विरोध में वहाँ की महिलाओं ने निर्वस्त्र होकर प्रदर्शन किया। अंशु मालवीय ने इस घटना पर एक विचारोतेजक कविता लिखी'' देखो सरे राह उधड़ी हुई/वे वही जाँधें है/जिनपर संगीनों से/अपनी मर्दानगी के राष्ट्रगीत लिखते आये हो तुम/हम नंगे निकल आए है सड़क पर जैसे कड़कती है बिजली आसमान में बिल्कुल नंगी.....।

हम मांस के थरथराते झंडे है। ''नागालैण्ड, मिजोरम, मणिपुर में मिलिटरी हस्तक्षेप से पृथकतावादी आतंकवाद को काबू में रखने का प्रयत्न किया जाता रहा है किंतु वहॉ की स्त्रियों के साथ सैनिकों की ऐसी बर्बरता ने केवल पृथकतावादी प्रवृति को बढ़ाती है बल्कि नृजातीय संघर्ष को भी दीर्घकालिक बनाती है। दिल्ली में 29 जनवरी 2014 को नीडो तानियाम नाम का एक छात्र जो अरूणाचल प्रदेश का था, को लाजपतनगर में दुकानदारों ने मिलकर इतना मारा कि अंततः उसकी मौत हो गई। नॉर्थ-ईस्ट के छात्र-छात्राओं ने दिल्ली में कई दिनों तक जबरदस्त विरोध दर्ज किया। यह संघर्ष भी एक नृजातीय समूह के विरूद्ध दूसरे नृजातीय समूह का प्रधिकार था। पुलिस के हस्ताक्षेप के कारण यह सामूहिक हिंसा का रूप नहीं ले सका।

सामाजिक संघर्ष में समुदाय विशेष की अस्मिता और पहचान का सवाल बार-बार उठता है। सामाजिक अन्तः क्रिया बदलते ही नृजातीय समूह अपनी नृजातीय पहचान के प्रति सजग हो जाता है। उदाहरण के लिये युगोस्लाविया के संघीय ढाँचे में मूल सवाल था-युगोस्लाव होने का बोध। सब अपने को युगोस्लाव कहने में गर्व का अनुभव करते थे, लेकिन जैसे ही युगोस्लाविया का संघीय ढाँचा टूटा तो संघीय ढाँचा वाला वही व्यक्ति युगोस्लाव वाली पहचान को भुलाकर खास समुदाय वाली पहचान को पाने के विकल हो उठा। ऐसे ही स्वतंत्रता के तुरंत बाद आसाम अपनी भाषायी पहचान के लिए संघर्ष कर रहा था, उस समय बोडो, भाषायी पहचान को भूले हुए थे लेकिन बहिरागतों की समस्या को लेकर जब असमी छात्र असमी राष्ट्रीयता के लिए संघर्ष कर रहे थे, तब बोडो आन्दोलनकारियों ने बोडो भाषायी पहचान के लिए सशस्त्र संघर्ष शुरू कर दिया। इससे आसाम में हिंसक अन्तर्नृजातीय संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई।

वोडो एक ओर नृजातीय पहचान के लिए असामी हिन्दू, बंगाली मुसलमान एवं डिमाशा, खेलमा, सिंघफो आदि आदिवासियों के विरूद्ध लड़ रहे है तो दूसरी ओर बहिरागतों के निष्कासन के लिए भी संघर्ष कर रहे है। 1 मई 2014 को बक्सा जिले के नरसिंह बाड़ी गाँव, कोकराझाड़ जिले के बालापाड़ा को मौत के घाट उतार दिया। यह एकतरफा हमला नृजातीय संघर्ष तो था ही, साम्प्रदायिक भी था।

असम समस्या या बोडो समस्या के बुनियादी कारण असम के इतिहास, उनकी भौगोलिक संरचना तथा देश की राजनीति में छिपे है। देश के बँटवारे के पहले से ही पड़ोसी प्रदेश के लोग आसाम में घुसपैठ करते आ रहे थे। सन 1931 की जनगणना के समय आसाम में नियुक्त अंग्रेजी अधिकारी सी. एफ. मुल्लन ने अपनी रपट में लिखा था पिछले 25 वर्षो में इस प्रदेश की सबसे बड़ी घटना है, पूर्वी बंगाल, खासकर मेमन सिंह जिले से जमीन के भूखे मुस्लिम किसानों के झुण्डों का लगातार आगमन। इससे असम का भविष्य स्थायी तौर पर बदल सकता है और असम की संस्कृति तथा सभ्यता का सारा ढाँचा नष्ट हो सकता है।

इस स्पष्ट के अनुसार 1906 के आसपास से ही असम में घुसपैठ जारी है। 1947 में पूर्वी पाकिस्तान बनने के पश्चात् इसकी गति और तेज हो गई। आसाम के चाय बागानों में शिक्षित बंगाली हिन्दू आए प्रशासनिक कार्यो के लिए बंगाली मुसलमान आए चाय बागानों में मजदूरी एवं

अन्य कृषि-कार्यों के लिए। मजदूरी और लकड़ी की ठेकेदारी के लिए बिहारियों का भी प्रवेश हुआ। इस तरह असमी हिन्दू एवं आदिवासियों के साथ बिहारी-बंगाली हिन्दू एवं पूर्वी पाकिस्तानी या बंगलादेशी मुसलमानों की टकराहटे आम हो गई। बहिरागतों के निरन्तर आगमन से आसाम का जनसंख्या-संतुलन बिगड़ा। 1950 में आसाम में शरणार्थी निष्कासन अधिनियम पारित हुआ। बहुत शरणीर्थी निकाले भी गए लेकिन कुछ समय बाद वे फिर लौट आए। असमी लोग अस्तिव पर बहिरागातों के बढ़ते दबाव को लेकर सजग हो गए। 1979 के मार्च में मंगलडोई चुनाव क्षेत्र में उपचुनाव के पहले मतदाता सूची में संशोधन का सवाल उठा। मामला अदालत में गया और यह पाया गया कि 45 हजार मतदाता भारतीय नागरिक नहीं है। असम आन्दोलन की शुरूआत यही से हुई। आन्दोलन समाप्त भी हो गया पर माँगे नहीं मानी गई। बंगलादेशी मुसलमानों का आना जारी है और नृजातीय झगड़े (Ethinic Clashesh) बढ़ रहे है।

हिन्दुस्तान में नक्सलवाद का नया उभार सिर्फ आन्तरिक सुरक्षा की समस्या नहीं है, यह सामाजिार्थिक असमान्ता पर पुनर्विचार की समस्या भी है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के स्त्री-पुरूषों का आर्थिक-दैहिक शोषण होता रहा है। अनुसूचित जाति के लोगों को शिक्षित एवं अधिकार सजग बनाने के लिए अम्बेडकरवाद का आधार लेकर छोटे-बड़े कई संगठन गाँव से लेकर शहर तक खड़े हो गए, लेकिन यही सुयोग आदिवासियों को नहीं मिला। मैदानी इलाके में नक्सलवाद बार-बार शुरू होता है वर्ग-संघर्ष के रूप में लेकिन खत्म होता है जाति-संघर्ष के रूप में। यह भटकाव नक्सलवादी असफलता का एक जबरदस्त कारण है। जाति संघर्ष के कारण ग्रामीण रागात्मकता टूटी और विद्वेष बढ़ा। नक्सलवादियों द्वारा भूपतियों की जमीन पर झंडा गाडने, अदालत लगाने और जुर्माना ठोकने से भी उच्च और निम्न जातियों के बीच झगड़े स्थायी रूप ले चुके हैं। मैदानी इलाके में दलित एवं निम्न जाति के लोग शोषण एवं दमन के कारण नक्सलवाद से जुड़े थे। आदिवासी भी इसी कारण जुड़े। गैरआदिवासी भूपतियों ने छल से अधिकांश आदिवासियों को जमीन से बेदखल कर दिया। बाद में आदिवासियों की जमीन गैर आदिवासियों को हस्तांतरित करने पर कानूनी रोक लग गई लेकिन उद्योग, औद्योगिक खन्न, सिंचाई, विद्युत परियोजना के नाम पर सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण से आदिवासी भूमि बंचित होते गए। अनपढ़ होने के कारण नौकरी-चाकरी में आरक्षण का उचित लाभ भी उन्हें नहीं मिला। सरकार द्वारा वनसम्पति से भी उन्हें वंचित रखा गया। इस तरह से विवश बना दिए जाने के बाद प्रशिक्षण लेकर उग्रवादी बनने और पलटकर हमला करने के सिवा उनके पास कोई चारा नहीं था। उनमें यह आक्रामता आई नक्सलवाद से। बाहर सरकार से दो-दो हाथ करने और जंगल में आकर शरण लेने के क्रम में ही उन्हें अपनी खोई हुई वनसम्पति पर अवैध ही सही, अधिकार जमाने का रास्ता मिल गया। अब जंगली लकड़ी के कटाई, तेंदू पते की ठेकेदारी, जंगली इलाके के खनित पदार्थो की उगाही उनकी मर्जी से होने लगी। अफसरों एवं ठेकेदारों से लेवी वसूल करके भी वे धन्नासेठ हो चुके है। नक्सलवादी नेताओं के बच्चे विदेशों में पढ़ते है। अब सामाजार्थिक परिवर्तन लाना इनका प्रथम उद्देश्य नहीं है, उद्देश्य है हथियार के बल पर सता पर कब्जा। विदेशी माओवादी शक्तियों से भी उन्होंने हाथ मिला लिया है। सिपाहियों और सैनिकों पर हमला वे हथियार लूटने और सरकारी तंत्र

में खौफ पैदाकर सक्रियता का निरापद क्षेत्र विकसित करने के लिए करते है। नेपाल की सीमा से आन्ध्रप्रदेश तक नक्सलवादियों का एक लम्बा-सा गलियारा तैयार हो चुका है। इसमें उनकी समानान्तर सरकारें चलती है। पहले के नक्सलवादी आन्दोलन से मौजूदा नक्सलवादी आन्दोलन इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें आपसी तालमेल है। सैनिक दृष्टि से ये नक्सलवादी प्रशिक्षित हैं और अत्याधुनिक हथियारों से लैस है। साामजिक स्तर पर से ये नक्सली आदिवासी दंतेवाड़ा, हजारीबाग, डाल्टेनगंज आदि में गैरआदिवासियों से लड़ रहे है और राजनीतिक स्तर पर सीधे सरकार और उनके सुरक्षा बलों से।

भारत में हिन्दु-मुसलमान और हिन्दु-ईसाई झगड़े अन्तर्धार्मिक है। एक की जड़ मध्यकाल के मुस्लिम शासन में है तो दूसरे की जड़ ब्रिटिश शासन काल में। विजातीय सत्ता भारत में अपना सांस्कृतिक आधार तैयार करने के लिए धर्मान्तरण का सहारा लेती रही है। इससे हिन्दू आबादी प्रभावित हुई है। खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार का फर्क भी भावनात्मक सेतु बनने नहीं देता। दूसरी बात यह कि हमारे यहाँ धर्म निरपेक्षता कोई परिभाषित विचार नहीं है, एक अवधारण है। यूरोप में धर्म निरपेक्षता राजनीति एवं समाज में सभी धार्मिक प्रभावों के विरोध में विकसित हुई, जब कि भारत में धर्म निरपेक्षता धार्मिक सापेक्षता में विकसित हुई। सभी धर्मो का आदर अर्थात् सर्वधर्म समभाव हमारी धर्म निरपेक्षता का आर्दश बन गया। कबीरदास, रैदास एवं दादूदयाल जैसे मध्यकालीन संतो ने पंथनिरपेक्षता को ही धर्मनिरपेक्षता के रूप में आधारित किया था।

यह एक विचित्र बात है कि बीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में विज्ञान की जितनी तरक्की हुई है, धार्मिक उन्माद की प्रवृति उतनी ही बढ़ी है। मध्यकाल की शासन-व्यवस्था सेकुलर नहीं थी, फिर भी मुस्लिम शासन के लगभग 550 वर्षो के दौरान साम्प्रदायिक दंगे का सिर्फ एक उदाहरण मिलता है। 1693 ई0 में अहमदाबाद में गऊ हत्या को लेकर एक दंगा हुआ था (साम्प्रदायिकता और आज का भारत डॉ0 हरबंस मुखिया, पृष्ठ 24 प्रत्रिका अब अंक 17 अक्टूबर 1990)। आज के भारत के सेकुलर संविधान है, फिर भी हर वर्ष छोटे-बड़े सैकड़ो दंगे हुआ करते है।''

विश्व में चार महत्वपूर्ण संस्कृतियाँ है-पश्चिमी संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, हिन्दू संस्कृति एवं चीनी संस्कृति। पश्चिम संस्कृति एवं मुस्लिम संस्कृति आक्रमक संस्कृतियाँ है जबकि हिन्दू संस्कृति एवं चीनी संस्कृति आत्मरक्षात्मक या प्रति आक्रमणात्मक। पश्चिमी संस्कृति भूमंडलीकरण, उदारीकरण एवं आधुनिकीकरण के सहारे अपने सांस्कृतिक लवादे में पूरे विश्व को लपेटना है। वैश्वीकरण ने देशों की सांस्कृतिक सरहद को तोड़ा है। आज पीजा, बर्गर, पेप्सी, कोला आदि अमेरिका से उठकर पूरी दुनिया के पसंदीदा खाद्य-पेय बन गए है। कम्प्यूटर की नकेल डालकर अंग्रेजी को भी सभी कार्यालय-कर्मियों के गले में उतार दिया गया है। इससे खान-पान, पहनावे-ओढ़ावे, बोली-बानी में जो समरूपता आई उससे जहॉ एक ओर वैश्विक संवाद-संचार की गति तेज हुई, वहीं दूसरी ओर स्थानीय धार्मिक पहचान पर खतरे मंडराने लगे। पहचान खो देने का खतरा धार्मिक उन्माद एवं आतंकवाद के पनपने का एक कारण है-एक मात्र नहीं। इधर

अधिकांश नृजातीय समूहों में अपनी पहचान बचाए रखने की सजगता बढ़ी है। मुस्लिम समाज अन्य धार्मिक समाजों की तुलना में खान-पान, पहनावे -ओढ़ावे और बोली-बानी को लेकर अधिक धर्म-सजग है। उस समाज के कट्टरपंथी तबके यदि आतंकवाद की ओर मुड़े तो इसकी एक वजह रही है-स्थानीय साम्प्रदायिक पहचान को सुरक्षित रखने की और दूसरी वजह है पूरी दुनिया को मुस्लिम संस्कृति के रंग में रंगने की। पैन इस्लामिक नारे के सहारे पूरे विश्व को मुसलमान बनाने के उसी 14 सौ वर्ष पुराने उत्साह के साथ आतंकवादी संगठन सक्रिय है। हमास, अलकायदा, लश्करे तायेबा, हिजबुला मुहाहिदीन, इंडियन मुजाहिद्दिन आदि असंख्य संगठन पैन इस्लामिक नारे को चरितार्थ करने में लगे है। इस नारे एवं हिन्दुओं की आत्मरक्षात्मक प्रवृति का लाभ उठाकर कश्मीर के चमरपंथियों ने कश्मीरी पंडितों को मजबूर किया कि या तो वे इस्लाम कबूल करें या घाटी छोड़ दे। अगस्त 2010 में कश्मीरी आंतकवादियों ने कश्मीर घाटी के सिक्खों के लिए ऐसा ही फरमान जारी किया कि इस्लाम कबूल करो या घाटी छोड़ दो। खालिस्तानी आन्दोलन के दिनों में 21,469/- निर्दोषों की जाने गई। स्कूली बच्चे तक संगीन की नोकों पर उछाले गए। उद्देश्य यही था-पंजाब को खालीस्तान बनाना।

जो लोग यह कहते है कि आतंकवाद का कोई मजहब नहीं होता, उन्हें आतंकवाद का इतिहास पढ़ना चाहिए। फिलीस्तीनी संगठन हमास हो या अलकायदा, आई0 एस0 आई0 एस0, लश्करे तोयबा या हिजबुल मुजाहिद्दीन, हिन्दू संकीर्णतावादी आतंकवाद हो या भारत के उतर-पूर्वी राज्यों में सक्रिय आतंकवाद-सबके मूल में धर्म या मजहब है या नृजातीयता का मजबूत पकड़।धर्म ही उन्हें कट्टर एवं फिदाईन बना सकता है। यही आतंकवादियो को एकसूत्र में बाँधता है। धर्म का अफीम खिलाए बिना उन्माद पैदा नहीं होता। यह भी विरोधाभास है कि आंतकवादियों में एक ओर मजहवी प्रतिभागी प्रवृतियाँ है तो दूसरी ओर आतंक पैदा करने के लिए आधुनिक टैक्नोलॉजी के प्रयोग में अग्रगामिता।

आतंकवाद नक्सलवादियों का हो या पृथकतावादियों का-अब यह संस्थागत रूप ले चुका है। उनके संगठन समानान्तर सरकार चलाते है। इनके सदस्यों को सरकारी अफसरों से भी अधिक तनख्वाह मिलती है। अब इन सदस्यों की जीविका के लिए भी इन संगठनों एवं इनके आंतकवादी क्रिया-कलापों को जारी रखना इनकी मजबूरी है।

संस्कृति समुदाय विशेष की संस्कारित जीवन-चर्या है और सांस्कृतिक समन्वय संस्कृतियों का सहजीवन है। नागार्जुन कोडा की खुदाईयों में अश्वमेघ घाट भी मिला है और सर्वदेव मंदिर भी। इससे यही सिद्ध होता है कि 2200 वर्ष पूर्व ही ब्राह्माण धर्म और बौद्ध धर्म में मेल-जोल की संस्कृति विकसित हो चुकी थी। ईसा पूर्व ही एक आन्ध्र सम्राट ब्राह्माण था और उसकी रानियाँ बौद्ध थी। कुछ इसी तरह आज के पंजाब में एक ही घर में एक भाई हिन्दू और दूसरा भाई सिक्ख मिल जाता है। हमारे देश में संस्कृतियों में समन्वय का तत्व प्रमुख रहा है। तभी तो आज भी हिन्दू, सिक्ख, बौद्ध जैन, पारसी, मुसलमान एवं ईकाई सब इस देश में सह-अस्तित्व बनाए जिए जा रहे है। भारत संस्कृतियों का संगम है। इसका स्वरूप बहुवचनात्मक है।

हिन्दू धर्म जाति-व्यवस्था को लेकर एक बंद धर्म है किन्तु आस्था और विचारधारा का लेकर एक खुला हुआ धर्म। इसमें वैष्णव शाक्त, शैव, सौर एवं गाणपत्य आदि असंख्य समप्रदाय धुले मिले है। जैन, बौद्ध , सिक्ख, आर्य समाज, ब्राह्म समाज आदि भी हिन्दू धर्म से ही निकले है। अत: हिन्दू धर्म अपने चरित्र में ही बहुलतावादी है। दूसरों धर्मों के साथ सह-अस्तित्व और सहजीवन उसकी प्रकृति है मजबूरी नही। उपनिषद् में उनके संदेश है-वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिन।

यदि झगड़े धर्म और भाषा को लेकर है तो उनको खत्म करने के सूत्र भी धर्म और भाषा में ही छिपे है। हिन्दू धर्म भारत में बहुसंख्यकों का धर्म हैं सांस्कृतिक समन्वय के तत्व इसके दर्शन में निहित है। हिन्दू धर्म की आत्मा है-वेदान्त समर्थित मानववाद। सभी ब्रह्म है। सबका उद्गम एक है और उससे उद्गमित सताएँ भी एक है। फिर धर्म, जाति रंग एवं नृजाति के आधार पर फर्क बेमानी है। इस तरह वेदान्त समर्थित मानवाद मानवीय अखण्डता एवं वैश्विक भाईचारे की एक सार्थक दार्शनिक भूमि है। अहं ब्रहास्मि, सोडहम् या ब्रह्मौ वाडहम् और कुछ नहीं, जीव में ब्रह्म का प्रकाश है। यह प्रकाश यदि सब में है तो भिन्नता तात्विक नहीं है, स्वरूपगत है। जीवों में तात्विक एकता का यही बोध हमें दूसरों देशों से भारत की ओर चले आ रहे शरणार्थियों को गले लगाने के लिए उत्साहित करता है। रोमन जुल्म के शिकार यहूदी शरणार्थी हो या तिब्बत के बौद्ध शरणार्थी ईरान का पारसी हो या बंगला देश का मुसलमान- भारत की भूमि पर सबको शरण मिली। भारत तो बेघरों का घर है, अशरण का शरण। भारत के एक राज्य हिमालय प्रदेश के एक शहर धर्मशाला में तो निष्कासित तिब्बतियों के लिए दलाई लामा की सरकार चलती है।

वर्तमान संघर्षो को क्षणभर छोड़कर यदि हम अतीत की ओर साहित्य में झाँकते है तो वहाँ भी अन्तर्नृजातीय समूहों के अस्तिव है और संघर्ष भी। वाल्मीकि रामायण ले या तुलसी का रामचरित मानस-दोनों में देवता, मनुष्य, बन्दर, भालू, कोल, किरात, भील आदि राम के लोकमंगलकारी व्यक्तित्व के प्रभाव से एक बहुनृजातीय संगठित समाज का रूप ले लेते है। राम ने कोल, किरात एवं भीलों को भी भक्ति का अधिकार देकर आर्यो-अनार्थो में सांस्कृतिक एकता की गाँठ लगा दी है।

भए सब साधु कोल किरातिनी, रामदास मिटि गई कुल भाई कुलषाई।

रामचरित मानस में जहाँ टकराव नृजातीय झगड़े का रूप ले सकता है वहाँ भी राम उसे व्यक्ति तक रोक देते है, समूह तक पसरने नहीं देते। नर-बानर एकता में बलि को लेकर फूट पड़ सकती थी लेकिन राम ने सुग्रीव से दोस्ती की, उसके भाई बलि को मारा और सुग्रीव को राजगद्दी सौंप दी। इससे संघर्ष अन्तर्नृजातीय नहीं बन पाता।

पौराणिक कथाओं में राक्षस एक सबल नृजातीय समूह है। मनुष्य जाति से उसकी भिन्नता खान-पान-निद्रा, रहन-सहन, रूप-रंग आदि सभी स्तरों पर है। 'रामयण' और 'मानस' दोनों में राम भेदनीति का सहारा लेकर विभीषण से दोस्ती करते है, रावण और उसके समर्थक

राक्षसों का विनाश करते है और विभीषण को सता सौंप देते है। राम की दक्षिण-विजय के कारण हिमालय से लंका तक जो सामाजिक-सांस्कृतिक एकता स्थापित हुई है उसके मूल में है राम का लोकमंगलकारी एवं विस्तारवाद-विरोधी प्रवृति। राम सत्ता के केन्द्रीकरण के विरोधी है। वे जिस राजा का नाश करते है, उसका राज्य वहीं किसी को सौंपकर आगे बढ़ जाते है। उनकी नीति है भावनात्मक स्तर पर सांस्कृतिक एकीकरण एवं राजनीतिक स्तर पर सत्ता का विकेंद्रीकरण।

महाभारत और सूरसागर में मानव-दानव संघर्ष के अनेक चित्र है। महाभारत में भीम को हिडिम्बासुर और बकासुर के विरूद्ध उनकी मनुष्य-भक्षण वृति के कारण द्वन्द युद्ध में उतरना पड़ता है। वे इन राक्षसों का वध कर उनसे पीड़ित मानव-समाज की रक्षा करते है। 'सूरसागर' में कंस अपने ही भाँजे कृष्ण के विरूद्ध प्रोक्सी वार लड़ रहा है। वह बालक कृष्ण को मारने के लिए कागासुर, पूतना, शकटासुर, अधासुर, बकासुर आदि राक्षसों को भेजता है पर सारे राक्षस मारे जाते है।

सांस्कृतिक समन्वय और भाईचारे का संदेश वेद में भी उपलब्धा है। वैदिक दृष्टि सृष्टि के मूल तत्व को खोजती हुई इस निष्कर्ष पर पहुँची कि प्राकृतिक शक्तियाँ (जल, अग्नि, सूर्य आदि) ही देवशक्यिाँ है और वे ही विश्व की नियामक शक्तियाँ है। देवशक्ति अखण्ड आलोक है, ज्योतिर्मय है। जो आलोक बाहरी जगत में है, वही मानवीय सत्ता में है। जो पिण्ड में है वही ब्रहाण्ड में है। पिण्ड और ब्रहाण्ड की समरूपता वैदिक चिंतन का एक महत्वपूर्ण सूत्र है। सातवीं-आठवीं शताब्दी में सरहपा, कण्हपा, डोम्मीपा आदि सिद्धो ने वेद के इस सत्य को विवृत करते हए कहा कि ब्रहाण्ड क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर से बना है तो मनुष्य का शरीर भी इन्हीं तत्वों से निर्मित है।

अतीत से वर्तमान तक, भारत से विदेश तक समाजों पर संघर्ष के निशान मौजूद है। सिर्फ सांस्कृतिक समन्वय ही तनावग्रसत समाज को मुस्कुराने और अन्तर्सामुदायिक संवाद बनाने की भूमि दे सकता है।

रामकृष्ण परमहंस को गले का कैंसर था। शिष्यों के कहने पर उन्होंने माँ काली से कहा, माँ गले के कैंसर के कारण मुझसे कुछ खाया नहीं जाता। ऐसा कर दो कि मैं कुछ खा सकूँ।'' काली माँ ने शिष्यों की ओर संकेत करके कहा कि क्यों इतने सारे मुँह तो है जिनके द्वारा तुम खा सकते हो।'' रामकृष्ण का वेदान्त दर्शन इस संवाद से पैदा होता है। सभी ब्रह्म है-बाह्मण और शुद्र, हिन्दू और मुसलमान, सिक्ख एंव ईसाई। इनमें भेद स्वाभाविक नहीं है-हमने आपने बना रखा है। ईश्वर के अलावा इस संसार में कोई है ही नहीं। जो है सो ईश्वर है अर्थात् सभी ईश्वर है। यह अद्वैतवाद सब में अपने को और अपने में सबको देखने की दृष्टि देता है। दर्शन की इस भूमि पर हर समाजिक-संस्कृतिक संघर्ष का समाधान उपलब्ध है।

हमारे देश के आचार्यो की दिक्कत यह है कि वे मानवीय एकता और सांस्कृतिक समन्वय का सिद्धान्त तो गढ़ते है किन्तु उसे समानतामूलक अर्थनीति या राजनीति में बदलने के लिए व्यावहारिक प्रविधि नहीं ढूँढ पाते। विवेकानन्द ने वेदान्त के जरिए अद्वैतवाद के सामाजिक पक्ष को सामने रखा। उसने कहा ''जब पड़ोसी भूखा मरता है, तब मंदिर में भोग चढ़ाना पुण्य नहीं, पाप है।'' समाज में भेद तो कर्मकाण्ड ने पैदा कर रखा है। कर्मकाण्ड धर्म नहीं है, धर्म की खोल है। विवेकानन्द ने कहा जो धर्म रूढ़ियों और प्रथाओं पर आधारित होता है, वह दुकानदारी का धर्म होता है। ऐसे धर्म में ईश्वर साध्य नहीं, साधन हो जाता है-कुछ खास लोगों की कमाई का साधान।'' गाँधी जी ने दरिद्रनारायण की कल्पना विवेकानन्द से ही ली थी। विवेकान्द कहते थे ''वास्तविक शिव की पूजा निर्धन और दरिद्र की पूजा है।''

सांस्कृतिक समन्वय और भाईचारे का संदेश वेद में भी उपलब्धा है। वैदिक दृष्टि सृष्टि के मूल तत्व को खोजती हुई इस निष्कर्ष पर पहुँची कि प्राकृतिक शक्तियाँ (जल, अग्नि, सूर्य आदि) ही देवशक्यिाँ है और वे ही विश्व की नियामक शक्तियाँ है। देवशक्ति अखण्ड आलोक है, ज्योतिर्मय है। जो आलोक बाहरी जगत में है, वही मानवीय सत्ता में है। जो पिण्ड में है वही ब्रहाण्ड में है। पिण्ड और ब्रहाण्ड की समरूपता वैदिक चिंतन का एक महत्वपूर्ण सूत्र है। सातवीं-आठवीं शताब्दी में सरहपा, कण्हपा, डोम्मीपा आदि सिद्धो ने वेद के इस सत्य को विवृत करते हएु कहा कि ब्रह्माण्ड क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर से बना है तो मनुष्य का शरीर भी इन्हीं तत्वों से निर्मित है। मनुष्य का शरीर और कुछ नहीं, ब्रहाण्ड का ही एक लघुरूप है। इसलिए ब्रहााण्ड को बाहर नहीं, पिण्ड में समायी हुई है। ब्रहाण्ड प्रकृति का विराट समायोजन है। यह विराट प्रकृति न्यूनीकृत (Reduce) होकर पिण्ड में समायी हुई है। सभी धर्माबलम्बियों का शरीर इन्हीं पाँच प्राकृतिक शक्तियों से बना है। सभी का ईश्वर उन्हीं के भीतर मौजूद है। इसलिए ईश्वर की भिन्न-भिन्न बाह्य रूपात्मक कल्पना करके लड़ना अज्ञानता है।

हिन्दू संस्कृति में धैर्य, सहनशीलता एवं अहिंसा के जो तत्व है वे आपसी मेलजोल और भाईचारे की आधारशीला है। हिन्दू समाज में उच्च एवं निम्न जातियों का भेद बहुत पुराना है। इनमें झगड़े होते रहते है। किन्तु ये झगड़े कभी दीर्घाकालिक खूनी क्रांति का रूप नहीं ले सके। इसकी वजह है समझौते एवं लचीलेपन का प्रवृति। आचार्य हाजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है: लोक के दबाव में शास्त्र ने कभी-कभी अपने आपको लचीला बनाकर लोक की बहुत सी विशेषताओं को अन्तर्भुक्त कर लिया। भारत में उच्च वर्ग के इस वैचारिक लचीलेपन और समझौतावादी रूख का ही यह परिणाम हुआ कि हिंसात्मक विद्रोह की स्थितियाँ बहुत कम उत्पन्न हुई। ''जाँन इर्विन ने 1946 में लिखे अपने लेख 'द क्लास स्ट्रगल इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर' में शास्त्रीय ब्राह्मणे धर्म और लोक संस्कृति के संघर्ष को वर्ग-संघर्ष कहा है। द्विवेदी जी ने छ: वर्ष पहले ही लिखा यदि एक ओर शास्त्र ने झुककर लोक की विशेषताओं को अन्तर्भुक्त किया तो दूसरी ओर शास्त्र वंचित लोक भी अपने अनुभव संचित विचार खण्डों को सुसंगत और समृद्ध बनाने के लिए शास्त्र का सहारा लेता रहा है''। यही वजह है कि कभी व्यापक हिंसा देखने को नहीं मिली।

संस्कृतियों के पारस्परिक लेन-देन को अन्तरावलम्बन कहते है। अन्तरावलम्बन दो संस्कृतियों के बीच सेतु का काम करता है। भारत में यह अन्तरावलम्बन भाषा के स्तर पर भी हुआ और वस्तुओं के स्तर पर भी अगरबती का 'अगर- शब्द द्रविड़ भाषा से आया। 'नीर' शब्द भी उसी की देन है। कदली, कर्पास, ताम्बुल आदि इंडो-आस्ट्रिक परिवार को मुंडा भाषाओं से आए। भारत के सभी चार भाषा परिवारों की भाषाओं में आदान-प्रदान के कारण की आपसी सम्प्रेषण व्यवस्था कभी खत्म नहीं हुई।

ऐसी सम्प्रेषण-व्यवस्था नृजातीय समूहों के झगड़े के निपटारे में बहुत मददगार साबित होती है। हिन्दु-मुसलमान संघर्ष भारत में बहुत आम है पर सर्वाधिक अन्तरावलम्बन हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति के बीच ही देखने को मिलता है। यह चौंकानेवाली सूचना है कि हिन्दू स्त्रियों की आभूषण-सूची में नथ और बालियों का प्रदेश मुसलमानों ने कराया। भारत की प्राचीन मूर्तियों में कही भी बाली का व्यवहार नहीं मिलता।'' नथ का सम्बन्धा अरबी के नाकिल शब्द से है जिससे हिंदी या उर्दू का 'नकेल' शब्द बना है। नकेल वह रस्सी है जिससे मनुष्य पशु को नाथता है। यह नकेल पुरूष की प्रभुता का प्रतीक है। पुरूष ने नारी को अपनी प्रभुता का अहसास कराने के लिए ही नथ पहना रखा है। यह नथ बहुत स्थानों पर हिन्दू वैवाहिक जीवन में सुहाग का चिंह है। रोटी हमारे खाने की वस्तु नहीं है वह एक मुहावरा है। अक्सर कहते है कि हम रोटी की लड़ाई लड़ रहे है। यह रोटी शब्द संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश में नही मिलता । तथा जिस पर रोटी बनती है, वह भी हमारी भाषा का शब्द नहीं है। रोटी बनाने और खाने की कला मुसलमानों ने दी। कुर्त्ता, पाजामा, चोंगा जैसे लिबास हमें कुषाणों से प्राप्त हुए। अन्तरावलम्बन के कारण ही हमारे यहाँ कुजड़िने एक ही साँस में रामदुहाई और अल्ला कसम बोलती है। मुसलमान जुलाहों में भी नाथपंथी विश्वास का मिलन एवं धर्मान्तरित ईसाइयों में भी जाति-प्रथा का मिलना धार्मिक अपसरणशीलता का ही नतीजा है। इतना स्पष्ट है कि यह अन्तरावलम्बन संस्कृतियों के बीच द्वेष कम करता है एवं सह अस्तित्व का स्वाभाविक माहौल बनाता है।

भारतीय संस्कृति कई दृष्टियों से निराली है। यहाँ क्षेत्रीय स्तर पर लोग धर्म, जाति या स्थानीयता को आत्म पहचान के लिए महत्व देते है। राष्ट्रीय मुद्दों पर वे स्थानीय पहचान को सुरक्षित रखते हुए भी राष्ट्रीय चेतना के वाहक बन जाते है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर उनकी दृष्टि वैश्विक हो जाती है। सवाल अमेरिका के ट्विन टावर में मारे गए लोगों का हो या जापान एवं पाकिस्तान में भूकम्प से मारे गए लोगों का हम भारतीयों के लिए मानवीय फर्ज सर्वोपरि है। यह एक विचित्र बात है कि जो मुम्बई साम्प्रदायिक दंगो को अपनी छाती पर झेलती है, बिहारियों को मारकर लहू-लुहान किए जाने का गवाह बनती है वही माइकेल जैक्सन के डांस का आनन्द भी लेती है। अत: मानना पड़ेगा कि भारतीय जनचेतना के चार आयाम है-स्थानीयता, नृजातीयता, राष्ट्रीयता एंव वैश्विकता। ये सभी आयाम प्रतिस्पर्धी नहीं, सहअस्तित्वमूलक है।

सामाजिक विकास में संस्कृतियों के समन्वय की भूमिका इंकार से परे है। धर्म और भाषा की सीमाएँ फैलती-सिकुड़ती है। इतिहास समस्याएँ उठाता है और सम्बन्धों के साँचे समाधान देते है। साँचे कई है- हिन्दू-मुस्लिम, हिन्दु-बौद्ध, हिन्दू-जैन, हिन्दू-सिक्ख रिश्ते के सोंचे। इन साँचों में समस्याएँ जब नहीं अँटती है तो तनाव और टकराव पैदा होता है। जब हड्डियाँ एक जगह होगी तो टकराएँगी ही-इसमें नया कुछ नहीं है, नया इसमें है कि सामंजस्य और समझौते हुए कि नहीं?

संदर्भ :

1. समाजदर्शन की रूपरेखा: जे0एस0 मेकेन्जी, पृष्ठ 106, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. The origin of Conflict and Critical Theoriizing: Social Change in India, P 139
3. Towards a Cultural policy in India: A Socio-Cultural prespective Victor S. D"Souza. P 159-160
4. अतिरेकी यथार्थ के युग में: ज्यों बोदिला अंधेरे समय में विचार: संपादक विजय कुमार, पृष्ठ 236-237, संवाद प्रकाशन मेरठ।
5. छवियाँ वास्तविकता को खत्म कर देती है: सूसन लैंटग पृष्ठ 206 अंधेरे समय में विचार: संपादक विजय कुमार, संवाद प्रकाशन, मेरठ।
6. मॉस के झण्डे: अंशु मालवीय: इतिहास बोध (पत्रिका): संपादक: डॉ0 लाल बहादुर वर्मा, फरवरी 2005 अंक, पृष्ठ-44
7. Towards a Political Economy of Intra-State Conflicts: Rakesh Gupta: Page 3 (downloaded material)
8. सी. एफ. मुल्लन: दिनमान (पत्रिका): असम आन्दोलन पर केंद्रित।
9. आदिवासी समाज और शिक्षा (रामशरण जोशी) में डॉ० भूपिंदर सिंह, सलाहकार योजना आयोग, नई दिल्ली द्वारा लिखी गई प्रस्तावना, पृष्ठ XVI से उद्धत।
10. शंकर वेदान्त और अद्वैत प्रस्थान: भारतीय संस्कृति और साधना: महामहोपाध्याय श्री गोपनीय कचिराज, पृष्ठ 85
11. विवेकान्द: रोमों रोलॉ: अनुवादक अज्ञेय-रघुवीर सहायद्वपृष्ठ 44
12. विवेकान्द: आलोचना: अप्रैल-जून 90, अंक 93, पृष्ठ 12 से उद्धत।
13. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण: भगवत शरण उपाध्याय पृष्ठ-39

डॉ. बलराम तिवारी

हिन्दी के नामवर आलोचक

डॉ. चन्द्रभानु प्रसाद सिंह

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को साहित्य के केन्द्र में ला दिया, तो उनके शिष्योत्तम शिक्षक नामवर सिंह ने मुक्तिबोध को नयी कविता के एक महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में स्थापित किया, मुक्तिबोध की कविता के आधार पर अपनी आलोचना की संरचना को तैयार किया। नयी कविता और नयी कहानी पर विचार करते हुए आलोचना की सृजनात्मक भाषा विकसित की। उन्होंने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में छायावादी कविता को रहस्यवाद से मुक्त किया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'अनामदास का पोथा'–में लिखते हैं कि नाम में क्या रखा है? किन्तु उनके शिष्योत्तम शिष्य डॉ० नामवर सिंह अपने नाम की सार्थकता सिद्ध कर गये। नामवर सिंह सचमुच नामवर आलोचक और विचारक हैं। वे वाद-विवाद कर संवाद स्थापित करते हैं। शोधकार्य अपभ्रंश पर किया, किन्तु आलोचनात्मक लेखन समकालीन साहित्य पर किया। लेखन का आरम्भ कविता से किया, किन्तु आलोचना के शिखर पुरुष के रूप में समादृत हुए। अपने समय के दुरूह कवि गजानन माधव मुक्तिबोध को स्थापित किया और निराला के बाद मुक्तिबोध को सबसे बड़ा रचनाकार कहा, किन्तु वे अपने जीवन के अंतिम वर्षों में निराला के बाद अज्ञेय को सबसे बड़ा रचनाकार मानने लगे। महादेवी वर्मा एवं विष्णु प्रभाकर के प्रति भी उन्होंने अपने विचारों में परिवर्तन किया। नयी कहानी की त्रयी मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर से इतर निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' को पहली नयी कहानी कहकर खलबली मचा दी। जे०एन०यू० के पाश्चात्य परिवेश में खांटी देशी ठाठ--धोती, कुर्ता, पान और खैनी, पर अंग्रेजी भाषा मे उपलब्ध नये से नये विश्व साहित्य से उनका परिचय बना रहा। वे वाचिक परम्परा के आचार्य थे, जितना लिखा उससे कहीं अधिक बोलकर हिन्दी साहित्य और समाज को दिया।

साहित्य में आलोचना दूसरे दर्जे की मानी जाती है, किंतु आलोचक नामवर सिंह ने

इस अवधारणा को पलट दिया। साहित्य का कोई मुद्दा हो, कोई विवाद हो- नामवर जी के मत का इंतजार रहता था। वे जितने बड़े आलोचक थे उससे कहीं बड़े शिक्षक थे जिसका अंदाजा उनके छात्र ही कर सकते हैं। उनके लिए अध्यापन सृजन था। उनका शिक्षक रूप विराट था जिसे स्मरण कर कबीर के 'आकाशधर्मा गुरु' की याद हो आती है। पढ़ाते हुए नामवर जी का स्मरण मन को सहसा पवित्र और प्रफुल्लित कर जाता है। उन्होंने काशी, सागर, जोधपुर और दिल्ली में अध्यापन किया। बनारस में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जैसे दिग्गजों के रहते अपनी पहचान बनाई। जोधपुर और जे०एन०यू० में हिन्दी पाठ्यक्रम का चरित्र ही बदल दिया। जोधपुर में राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव' को पाठ्यक्रम में लगाया, तो पुराण पंथियों ने उपन्यास पर अश्लीलता का आरोप लगाते हुए उन पर आक्रमण किया। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केन्द्र के संस्थापक अध्यक्ष के रूप में पाठ्यक्रम सम्बन्धी कई नवाचार किए। हिन्दी-उर्दू मे संवाद स्थापित किया। साहित्य की रूपवादी और मार्क्सवादी दृष्टियों से परिचित कराया। संरचनावाद, आधुनिकतावाद, साहित्य के समाजशास्त्र जैसी अवधारणाओं से हिन्दी के छात्रों को परिचित कराया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को साहित्य के केन्द्र में ला दिया, तो उनके शिष्योत्तम शिक्षक नामवर सिंह ने मुक्तिबोध को नयी कविता के एक महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में स्थापित किया, मुक्तिबोध की कविता के आधार पर अपनी आलोचना की संरचना को तैयार किया।

नामवर जी सृजन पर अधिक जोर देते हैं। उनके लिए आलोचना एक संश्लिष्ट व्यापार है। वह आस्वादन के साथ ही सार्थक विश्लेषण एवं मूल्यांकन भी है। इस सन्दर्भ में उन पर एफ० आर० लीविस का प्रभाव रेखांकित किया जा सकता है। वे जड़ मार्क्सवादी नहीं हैं। मार्क्स के कथनों को वेद वाक्य की तरह नहीं जपते। इसीलिए उनकी आलोचना-दृष्टि में ताजगी और सृजनात्मकता दिखाई पड़ती है।

नयी कविता और नयी कहानी पर विचार करते हुए आलोचना की सृजनात्मक भाषा विकसित की। उन्होंने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में छायावादी कविता को रहस्यवाद से मुक्त किया। डॉ० नंददुलारे वाजपेयी और डॉ० नगेन्द्र के रहते एवं उनसे भिन्न छायावादी कविता को परखने की नयी दृष्टि दी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति काव्य का नया पाठ प्रस्तुत किया, तो नामवर सिंह ने छायावादी कविता, नयी कविता, नयी कहानी, और अपभ्रंश कविता का नया पाठ प्रस्तुत किया। डॉ० रामविलास शर्मा ने भारतेंदु, निराला और प्रेमचन्द के साहित्य की पहचान कराई, तो डॉ० नामवर सिंह ने मुक्तिबोध, निर्मल वर्मा, धूमिल और विनोद कुमार शुक्ल के साहित्य की पहचान कराई।

नामवर जी मार्क्सवादी आलोचक हैं, लेकिन आलोचना-दृष्टि प्रगतिवाद की जगह समकालीन रचनाशीलता, नयी कविता और नयी कहानी से निर्मित हुई है। वस्तुतः वे हिन्दी में नयी आलोचना के जनक हैं। नयी कविता जिस तरह विकसित भावबोध की प्रतिज्ञा से जुड़ी है, उसी तरह यह नयी आलोचना भी। नयी कविता और नयी आलोचना का संघर्ष छायावादी 'संस्कारों से रहा है। नामवर जी 'कविता के नये प्रतिमान' में लिखते भी हैं- 'आज नये से नये प्रतिमान के लिए सबसे बड़ी चुनौती छायावादी संस्कार है।' (पृ०-30) वे आलोचक को मुक्तिबोध की तरह ही साहित्य का दारोगा नहीं मानते हैं। उनकी दृष्टि में जिस तरह वैयाकरण भाषा के शब्द नहीं बनाता, उसी तरह आलोचक भी काव्य के मूल्यों का निर्माण नहीं करता। शब्दानुशासन के समान ही काव्यानुशासन भी वस्तुतः अनुशासन है, शासन नहीं। इस अनुशासन का आधार है नये काव्य-सृजन में निहित मूल्यों का प्रत्यभिज्ञान या पहचान, जिसे अभिनवगुप्त ने ज्ञात का भी विशेष रूप से अनुसंधानात्मक निरूपण कहा है। (कविता के नये प्रतिमान, पृ०-9-10)

नामवर जी सृजन पर अधिक जोर देते हैं। उनके लिए आलोचना एक संश्लिष्ट व्यापार है। वह आस्वादन के साथ ही सार्थक विश्लेषण एवं मूल्यांकन भी है। इस सन्दर्भ में उन पर एफ० आर० लीविस का प्रभाव रेखांकित किया जा सकता है। वे जड़ मार्क्सवादी नहीं हैं। मार्क्स के कथनों को वेद वाक्य की तरह नहीं जपते। इसीलिए उनकी आलोचना-दृष्टि में ताजगी और सृजनात्मकता दिखाई पड़ती है। उन पर पश्चिम के पूँजीवादी देशों के मार्क्सवादी आलोचकों का गहरा असर है जिसके लिए पार्टी का अनुशासन महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है। दूसरी ओर से भारतीय काव्यशास्त्र की अर्थमीमांसा वाली परम्परा से भी प्रेरित है। हिन्दी आलोचना में नामवर जी से पूर्व रसवाद की धूम थी। नगेन्द्र तो इस मानदंड पर अंत-अंत तक इस कदर डटे रहे जिससे खीझकर नामवर जी ने रस का नगेन्द्रीकरण कहा। वे इस मानदंड में युगीन चुनौतियों की पहचान की कहीं गुंजाइस नहीं देखते। वे अर्थमीमांसा पर जोर देते हैं। वे साफ-साफ कहते हैं कि अर्थमीमांसा के बिना 'रस' अपूर्ण ही नहीं निरर्थक है। अर्थमीमांसा के बिना अनायासलभ्य अनुभूति के आधार पर कविता का मूल्यांकन करना मूल्यांकन नहीं बल्कि प्रभावाभिव्यंजक आलोचना का उपहासास्पद नमूना है। उनकी दृष्टि में रस के पुनरूद्धार अथवा पुनर्व्याख्या का प्रश्न ही अप्रासंगिक हो जाता है, प्रासंगिक रहती है तो आस्वाद की प्रक्रिया, जिसका आधार अर्थमीमांसा है।

डॉ० चन्द्रभानु प्रसाद सिंह, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, विश्वविद्यालय–हिन्दी–विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा–846008

गोदान में पीढ़ियों का संघर्ष

प्रो. (डॉ0) गणेश प्रसाद

सामंती व्यवस्था के समस्त संस्कार होरी में हैं। प्रति-जन्य परवशता के कारण षकों में अंधविश्वासों का होना, धर्म के प्रति अनुचित व्याहमोह, विभिन्न देवी - देवताओं का अवलंबन तथा जीवन में अवसाद की व्याप्ति - सामंती - व्यवस्था के वरदान हैं षकों के लिए। होरी में ये सभी संस्कार लक्षित हैं। वह अपने पुराने संस्कारों से जुड़कर अपनी खेती की मर्यादा जानता है वही यह देखकर कि इतनी मेहनत करने पर भी तन-मन संतुष्ट नहीं हो पाता, वह भीतर ही भीतर सुलगता रहता है।

होरी गहरे साँवले रंग का है, जिसके गाल पिचके हुए हैं और चेहरे पर कभी कभार दांपत्य रस अपनी मृदुता दिखा जाता है। पर वह मृदुता यथार्थ की आँच को ज्यादा देर तक सह नहीं पाती। अभी वह चालीस का भी नहीं हो पाया है कि सजीलापन उससे कोसों दूर है। वह अपना चेहरा दर्पण में क्या निहारे और क्यों निहारे। फटी हुई मिर्जई जीर्ण शीर्ण अँगोछा और कंधो पर लाठी यही है होरी, जिसके गर्दन दूसरों के पांव तले दबी हुई है और जो उन पाँवों को सहलाने में ही अपनी भलाई समझता है। वह जानता है कि उन पाँवों को सहलाने का ही प्रसाद है कि उसकी जान अब तक बची हुई है। वह वेदखली और कुड़की से बचा हुआ है। होरी की सह-धर्मिणी है धनिया। उम्र छत्तीस। सारे बाल पके हुए। चेहरे पर झुर्रियों की भरमार। देह ढली हुई। सुंदर गेहुआँ रंग, जो काम करते-करते साँवला गया है और आंखों की ज्योंती मंद। खेती है इनका पेशा। इस पेशे ने इसके पेट की चिंता को कभी भी समाप्त नहीं किया। जिन्हें पेट की चिंता ने जीर्ण किया हो भला उन्हें सुख का अर्थ क्या मालूम। यही है होरी धनिया का कृषक दांपत्य जीवन, कृषि पर अवलंबित जिससे न तो उनका पेट भरता है और न तन ही ढक पाता है। होरी एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का अंग बन चुका है कि जो उसे किसान नहीं रहने देती। वह मजदूर बनता है और पेट की ज्वाला शांत करने के लिए अपने प्राण होम कर देता है। होरी उस संक्रांति कालीन पीढ़ी का किसान है जिसने

पुरानी सामंती व्यवस्था के संस्कारों को त्यागा नहीं है और नई महाजनी सभ्यता को अपना भी नहीं पाया है। हालांकि वह जी रहा है महाजनी सभ्यता में ही। जहाँ होरी खेत की मरजाद की बात करता है और उसको बचाने के लिए प्राणपण से जुटा रहता है, वहाँ वह पुरातन सामंती व्यवस्था के संस्कारों में जी रहा होता है और जहाँ वह अपनी सामाजिक मर्यादाओं की रक्षा के लिए महाजनों के पास जाकर ऋण के लिए दांत निपोरता है, वहाँ वह महाजनी सभ्यता का अभिशप्त पुतला नजर आता है। सामंती व्यवस्था उसमें कृषि के प्रति अनावश्यक मोह का वरदान देती है, ताकि वह मिट्टी के ढेलों से जूझता रहे, खून पसीना एक करता रहे और अपने शासक के लिए भोग विलास की सामग्री जुटाता रहे। यह व्यवस्था उसमें कुछ वैसे जड़ धार्मिक संस्कार भी घुसेड़े देती है कि वह सारा अन्याय चुपचाप गटकता रहे पूर्व जनम और भाग्य के नाम पर। सामंती व्यवस्था में किसान तो अपनी मिट्टी से इस तरह जुड़ा होता है कि उसे यह समझ में नहीं आता कि आस्था और धर्म के नाम पर उसके साथ ऐसा रहस्य भरा कुचक्र रचा जा रहा है कि वह उसे जीवनभर मुक्त नहीं हो सके। यह कुचक्र उसके जीवन का सारा रस लेकर उसे मिट्टी की तरह छोड़ देता है। कितनी सफाई और ईमानदारी से जीवन की व्याख्या करते हैं राय साहब। राय साहब संपत्ति को पैरों में पड़ी हुई बेड़ी की तरह समझते हैं जब तक संपत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से नहीं निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद ना पा सकेंगे जिस पर पहुंचना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है। होरी भाव विभोर हो जाता है पर इसी उक्ति के बाद जब चपरासी यह खबर लेकर आता है कि बेगारों ने काम करने से इंकार कर दिया है तो वे आँखें निकाल कर बोलने लगते हैं, चलो मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया तो आज यह नई बात क्यों? एक आने रोज के हिसाब से मजदूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है और इस मजदूरी पर काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े- होरी इसे सुनकर अवसन्न रह जाता है। उसका सहज मन अपने ही शंकाशील प्रश्नों के घूमावर्त्त में चकराने लगता है- अभी यह कैसी-कैसी नीति और धर्म की बातें कर रहे थे और एकाएक इतने गरम हो गए।

सामंती व्यवस्था के समस्त संस्कार होरी में हैं। प्रकृति-जन्य परवशता के कारण कृषकों में अंधविश्वासों का होना, धर्म के प्रति अनुचित व्यामोह, विभिन्न देवी-देवताओं का अवलंबन तथा जीवन में अवसाद की व्याप्ति-सामंती-व्यवस्था के वरदान हैं कृषकों के लिए। होरी में ये सभी संस्कार लक्षित हैं। वह अपने पुराने संस्कारों से जुड़कर अपनी खेती की मर्यादा जानता है वही यह देखकर कि इतनी मेहनत करने पर भी तन-मन संतुष्ट नहीं हो पाता, वह भीतर ही भीतर सुलगता रहता है। होरी की पीढ़ी में ही है धनिया खुले शब्दों में कहती है, ''हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियां भी ना मिले, उसके लिए खुशामद क्यों?'' होरी की पीढ़ी उस संधिस्थल पर खड़ी है जहाँ सामंती व्यवस्था समाप्त हो गई है, पर उसके संस्कार अभी नग्न नृत्य कर रहे हैं- अंग्रेजों द्वारा लाई गई उद्योगों पर आधृत पूँजीवादी सभ्यता भौतिक आकर्षणों से सबको अपनी ओर खींच रही है जिसके भीतर अनेक रूग्णताएँ भरी हैं। सामंती व्यवस्था में जीवन प्रारंभ करने वाला होरी पूर्णत: पूँजीवादी व्यवस्था के चुंगल में आ जाता है और मजदूर की तरह कठोर परिश्रम करता

हुआ मर जाता है। अपने जीवन से चिपका हुआ होरी, अंत में उसकी रक्षा नहीं कर पाता और उसके मरने के बाद धनिया सुतली से उगाहे बीस आने पैसे गाय या बछिया के अभाव में गोदान के रूप में पंडित दातादीन को देती है। प्रेमचंद की भाषा यहाँ आते-आते अत्यंत सांकेतिक हो गई है। अंत में बीस आने पैसे को गोदान के रूप में दिए जाने वाले प्रसंग को प्रेमचंद की एक सांकेतिक व्यंग्य का रूप देते हैं। गाय और जमीन कृषक के अविभाज्य अंग है। होरी जीवन भर कृषि के प्रति ऐसी अनावश्यक आसक्ति से चिपका रहता है कि उसकी पत्नी उसके मरने पर गोदान करना नहीं भूलती। गोदान यहाँ उस अनावश्यक आसक्ति का प्रतीक है जो उसके ठंडे हाथों में ही होता है। होरी किसान बना रहकर जी नहीं पाता, पर किसान बने रहने की ललक छोड़ नहीं पाता। किसान बने रहने की ललक के साथ होरी के जीवन का वह पक्ष उजागर होता है जिसमें सामंती व्यवस्था के संस्कार हैं और किसान बनकर वह जी नहीं पाता के साथ उसके जीवन का वह पक्ष सामने आता है जिसमें पूँजीवादी व्यवस्था की जड़ता है। उस जड़ व्यवस्था में गाँव के महाजन उसका सारा खून जोंक की तरह चूस लेते हैं जिसके चलते उसे अपनी लड़की की शादी एक अधोड़ पुरूष से करनी पड़ती है।

गोबर साँवला, लंबा और इकहरा युवक है जिसका मन कृषिकार्यों में नहीं लगता हैं। उसके चेहरे पर साफ विद्रोह की रेखाएँ पढ़ी जा सकती हैं। वह राय साहब के यहाँ से लौटते हुए अपने बाप से पूछ लेना चाहता है: 'यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है नजराना सब तो हमसे भराया जाता है, फिर क्यों किसी की सलामी करो!' ऐसे तो गोबर भी अपने बाप को कृषि में मदद देता है, पर भीतरी हुलास से नहीं। गोबर साफ होरी की पीढ़ी से अलग है। होरी दोराहे पर खड़ा है, पर गोबर शुरू से ही एक ही रास्ता का राही है। होरी के भीतर का विद्रोह उसकी जीवन-दृष्टि का परिणाम नहीं है, वह तो मानवीय प्रवृत्ति के कारण ही है। मानव प्रवृत्ति है कि जब उसका शोषण किया जाता है तो एक सीमा तक बर्दाश्त करने के बाद विद्रोह कितने स्तरों पर होता है। सामर्थ्य के साथ यह विप्लवी रूप धारण कर लेता है और सामर्थ्यहीन में यह महज दबी जुबान की शिकायत बनकर रह जाता है। चूँकि होरी अपनी पुस्तैनी कृषि से जुड़ा रहना चाहता है, इसलिए शोषण के विरूद्ध के मानवीय चेतना तो उसके पास है, पर बड़ी क्षीणता के साथ। गोबर अपने पहले के जड़ संस्कारों को ओढ़ना नहीं चाहता, उसे अस्वीकृत कर देता है। उसका उग्र व्यक्तित्व शोषकों के कलंकित जीवन पर प्रचंड प्रहार करता है। एक बात ध्यान देने की है कि राय साहब के यहाँ से लौट आने के बाद होरी के मन में ठीक वे ही भाव उठने लगे है जो भाव गोबर के मुख से भी से अभी उसके सामने निकले हैं, पर ना जाने वह क्यों आतंकित है कि गोबर के उस विद्रोह भाव को दबाना चाहता है। उस समय यही भाव होरी के मन में भी आ रहे थे, लेकिन लड़के के इस विद्रोह भाव को दबाना जरूरी था। बोला-'सलामी न करने जाएँ तो रहे कहाँ? अपने मतलब के लिए सलामी करने जाता हूँ पाँव मे सनीचर नहीं है और न सलामी में कोई बड़ा सुख मिलता है।' होरी के आतंक का प्रश्न सीधे उसकी जमीन के प्रति विवशता और मोह के साथ जुड़ जाता है जो सामंती व्यवस्था का रूप है।

होरी गोबर से यह कहता है कि पहले वह भी विद्रोह की बातें सोचा करता था, परंतु अब मालूम हुआ कि हमारी गर्दन दूसरों के पैरों के नीचे दबी हुई है, अकड़कर निर्वाह नहीं हो सकता, या सिद्ध कर देता है कि विद्रोह शोषण के विरुद्ध एक अनिवार्य परिणति है। पहले यहाँ चिंतन में होता है और बाद में यह क्रिया में आता है। जो विद्रोह होरी के भीतर धुएँ की तरह सुलग रहा है, वही विद्रोह निर्धूम (गोबर के व्यक्तित्व में) चिंगारी बनकर सारे आकाश में आग लगाने को उद्यत है। होरी का ही मूक विद्रोह गोबर के वाचाल विद्रोह में परिणत हो जाता है। यौवन का पदार्पण विद्रोह के साथ ही होता है, पर विद्रोह का परिणाम स्थिर यौवन की तपस्या से प्राप्त होता है। होरी का विद्रोह स्थिर यौवन का विद्रोह नहीं है, उसका विद्रोह यौवन की खलबली है जो अपने आगत जीवन को याद कर उतार पर आ जाती है। होरी की पीढ़ी विद्रोह को मौन की राख के भीतर छिपाए अपने ही भीतर छटपटाती रहती है, पर गोबर की अंतर की ज्वाला से अपने अस्तित्व को समाप्त नहीं करेगी, अपितु अपने व्यक्तित्व के कंचन को तपाकर और निखार पा लाएगी। जौ के राजा और गेहूं को चमार कहने वाली पीढ़ी (होरी को) अपने शोषक के प्रति घृणा का भाव रखती है, यह बात किसी को भी समझ में नहीं आ सकती हैं।

होरी की पीढ़ी विद्रोह को कायर घृणा के रूप में पालकर चुक जाती है और गोबर की पीढ़ी विद्रोह को संयत क्रिया के स्तर पर ले जाती है। गोबर की जागरूकता अनायास नहीं है, यह प्रेमचंद के सहज विकास का प्रतिफल है। आदर्शोन्मुयखी प्रेमचंद जब यथार्थ की भूमि पर सँभलकर पाँव रखते हैं तो गोबर के चरित्र का निर्माण होता है। होरी जहाँ सामंतवादी व्यवस्था का प्रतीक है, वही गोबर साम्यवादी व्यवस्था की ओर इंगित करने वाला पात्र। सामंतवादी व्यवस्था में कृषक और जमींदार में तनाव पैदा होता था, क्योंकि जमींदार किसानों से बेगार भी लिया करता था, लगान भी। इसी तनाव के कारण पूँजीवादी व्यवस्था का सिंचन हुआ। पूँजीवादी व्यवस्था ने मजदूरों और मिल मालिकों के बीच संघर्ष का पुरस्कार दिया। इसी संघर्ष ने सामाजिक व्यवस्था को साम्यवाद की ओर उन्मुख किया।

होरी अन्याय पर पले विलास को देखकर भी समझ नहीं पाता, क्योंकि उसपर पीछे से आते हुए एक लंबे समांतवादी अंधविश्वासों का संस्कार हावी है। वह राय साहब के कथन पर विश्वास कर लेता है, पर गोबर भला विश्वास क्यों करने लगा? होरी जब कहता है: 'खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। इसी तरह जमींदारों का भी हाल समझ लो। उनकी जान को भी तो सैकड़ों रोग लगे हुए हैं, हाकिमों को रसद पहुँचाओ, उनके सलामी करो, अमलों को खुश करो, तारीख पर मालगुजारी ना चुका दे तो हवालात हो जाए, कुड़की आ जाए। हमें तो हवालात नहीं ले जाता। दो-चार गालियाँ घुड़कियाँ ही तो मिलकर रह जाती है, 'जब गोबर इसका प्रतिवाद करता है, ''यह सब कहने की बातें हैं। हमलोग दाने-दाने के मोहताज हैं देह पर साबित कपड़े नहीं है, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है तब भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी-मसलंद लगाए बैठे हैं, सैकड़ों नौकर-चाकर हजारों आदमियों पर हुकूमत है, रूपए न जमा होते हों, पर सुख तो सभी तरह भोगते हैं। धन लेकर आदमी क्या करता है? होरी अपने स्वाभाविक आदमीयत

से राय साहब के कथन पर विश्वास करता है, उनके दुख-दर्दों को भी अपनी मानवीयता से समझने का प्रयास करता हैं। उस प्रयास में उसका कभी-कभार उपजा हुआ क्रोध भी काफूर हो जाता है, पर गोबर अपने प्रतिवाद से यह बता देता है कि मानवीयता उस समय ढोंग हो जाती है जब हमारी गर्दन किसी के कठोर पैरों के नीचे पड़ी हो और हम उन कठोर पैरों की प्रशंसा करने में लगे हो। गोबर यदि शब्द-रचना जानता तो कहता-ऐसी आत्मप्रशंसा आत्मछलना है। (नियतिवाद ने आदमी को जितना काहिल, सुस्त, भीरू और कमजोर बनाया, उतना किसी सिद्धांत ने नहीं, साधारण जन तो यही जानता रहा है कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते) होरी कहता है, यह बात नहीं है बेटा, छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते है। संपति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए हैं उनका आनंद भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं सोचा तो भोगे क्या? गोबर इसे स्वीकार नहीं करता। वह पूर्व जन्म तथा नियतिवाद को परिस्थितियों के साथ समझौता करना ही मानता है। इसलिए वह कहता है ये सब मन को समझाने की बातें हैं। भगवान सबको बराबर बनाते हैं; यहां जिसके हाथ में लाठी है वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।

होरी का भगवान सामंती व्यवस्था का भगवान है, गोबर का भगवान उसके भीतर का सामर्थ्य है। दान-धर्म जनसाधारण को लूटने और निर्बल करने का फंदा अंधा बनाकर उसे और शोषित किए जाने का उपक्रम है। गोबर कहता है, मेहनत ही भक्ति है 'हमें कोई दोनों जून खाने को दें, तो हम आठों पहर भगवान की जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाए।' होरी का धर्मात्मापन उस का भोलापन है जिससे वह बराबर धोखा खाता रहता है और गोबर का धर्मात्मापन उसकी व्यवहारिकता है, वह कभी धोखा नहीं खा सकता, वह ठगा नहीं जा सकता। प्रेमचंद ने गोदान के प्रारंभ में होरी और गोबर के वार्तालाप में दो पीढ़ियों के संघर्ष को स्पष्ट रेखाओं में हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

यहाँ विद्रोह पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध मजदूरों के तनाव का ही नाम नहीं है, अपितु यह तो परिस्थितियों से समझौता नहीं करने की आंतरिक आवाज है। यह मानव का शाश्वत धर्म है। होरी में भी विद्रोह है और गोबर में भी, होरी का विद्रोह अपनी समाजवादी व्यवस्था को समझने में व्यक्त होता है और गोबर का विद्रोह पूंजीवादी व्यवस्था से लड़ने में। समझने के लिए तो होरी भी समझ गया है कि उसकी गर्दन दमन-चक्र के नीचे है पर वह उसके विरोध में देर तक खड़ा नहीं हो पाता, क्योंकि पुरातन निरर्थक संस्कारों के बोझ ने उसकी कमर बहुत ही पहले तोड़ रखी है। भोला जब होरी से यह प्रश्न करता है कि बड़े आदमियों की बराबरी तुम कैसे कर सकते हो भाई? तो होरी बहुत छोटा सा जवाब देता है- 'आदमी तो हम भी हैं। मानो, उसकी गर्दन पर रथ का पहिया टिक गया हो और वह घिघियाने लगा हो, होरी की यह घिघियाहट 'गोदान' में अंत तक गूंजती रहती है।

होरी अतीत के सुखों में खोता है, वर्तमान के दुखों में रोता है और भविष्य? भविष्य तो उसके लिए सर्वनाश का मनोरंजन काल-नाटक है। गोबर ने केवल वर्तमान में जीना जाना है, वर्तमान के जीने के ढंग पर भविष्य उसका अपना हो जाएगा जो पीछे छूट गया है, वह उसकी परवाह क्यों करें!

सामंतवादी व्यवस्था ने किसानों में भी प्रदर्शन और विलास की तरफ रूची जगाई और उन्हें मनचाहे ढंग से चूसा। ये गरीब मर्यादा को प्रदर्शन के साथ बाँधकर चलने लगे और अपने भीतर पैदा हुई विलास प्रियता को अपनी औकात से ज्यादा खर्च करके दिखाने लगे। परिणाम यह हुआ कि इन्हें बार-बार जोंक देवताओं को प्रणाम करना पड़ा और अपनी स्थिति बिगाड़नी पड़ी। होरी गाय से अपने द्वार की शोभा और अपने घर का गौरव बढ़ाना चाहता था। वह चाहता था लोग गाय को द्वार पर बँधी देखकर पूछे यह किसका घर है? लोग कहें, होरी महतो का। तभी तो लड़की वाले भी उसकी विभूति से प्रभावित होंगे। होरी सच्चाई को छिपाने के लिए कसम का सहारा लेता है, अपने बेटे गोबर के माथे पर हाथ रखकर कसम खाता है कि उसने हीरा को गाय को नाँद के पास खड़ा नहीं देखा था। गोबर अपने बाप की झूठी कसम के विरूद्ध हो जाता है: खा ले झूठी कसम। वंश का अंत हो जाए। बूढ़े जीते रहे। जवान जीकर क्या करेंगे! गोबर के इस कथन में विद्रोह का वह स्वर है जो पुरानेपन को बर्दाश्त करने को तैयार नहीं है।

आश्चर्य की बात है कि धनिया जो होरी की पीढ़ी की है होरी से एक अलग मानसिकता लेकर जीती है, वह झूठी प्रतिष्ठा से चिपककर अपनी दुर्दशा नहीं होने देती, पर जितनी दुर्दशा हो रही है वह तो होरी महतो के कारण ही! गोबर होरी का नहीं धनिया का पुत्र है। धनिया का ही उग्र स्वाभाव विरासत में उसे मिलता है। धनिया के चरित्र की उग्रता गोबर के चरित्र की विद्रोहात्मकता बनकर अपनी अकड़ दिखाती है। होरी सब कुछ देखने और सहने पर भी बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाता, पर धनिया तो है भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था की छाती पर मूंग दलकर जीने की उत्कट अभिलाषा का प्रतीक! धनिया की चेतना गोबर की चेतना में विस्तार पाती है। धनिया और गोबर के पात्रत्व में ऐसी कुछ विशेषताएं और समानताएँ हैं कि जब धनिया बोलती है तो लगता है कि विद्रोही गोबर चिंघाड़ रहा है और जब गोबर सिहंनाद करता है तो लगता है धनिया ही सामाजिक व्यवस्था को जुतिया रही हो। गोबर का चरित्र धनिया के चरित्र की तरफ प्रत्यावर्त्तन है, उसी रास्ते से नहीं जिससे वह उससे आगे निकला हो, अपितु उसी दिशा में दूसरे रास्ते से। धनिया स्वाभाविक विद्रोह की प्रतीक है और गोबर वहीं लौटकर अपने व्यक्तित्व की रक्षा करता है। गोबर की राजनीतिक चेतना शहर में रहने से पुष्ट होती है परन्तु धनिया की राजनीतिक चेतना गाँव मे रहकर ही प्रौढ़ होती है, इसलिए गोबर की राजनीतिक चेतना स्वतंत्रता तक सिमटी हुई है। जबकि धनिया को राजनीतिक चेतना, स्वराज्य तक विस्तृत है। धनिया कहती है जेल जाने से सुराज नहीं मिलेगा। स्वराज मिलेगा धर्म से, न्यास से। विडंबना है कि धर्म से शोषित होने वाली धनिया राजनीति को भी धर्म के खूंटे से बांध ही देती है। धनिया और गोबर की राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि गोबर राजनीति को भौतिक दृष्टि से देखता है और धनिया राजनीति को आध्यात्मिक दृष्टि से। गोबर की राजनीतिक चेतना पर मार्क्स की छाप है और धनिया की राजनीतिक चेतना पर गांधीवाद की मोहर। होरी बेचारा तो हाड़ मांस का पुतला है। जो देखता है कह नहीं सकता, सुनता है नकार नहीं सकता, समझता है प्रतिकार नहीं कर सकता। दरअसल वह एक पराजित जिंदगी को अपने निर्जीव कंधो पर ढो रहा होता है। परिस्थितियों के समक्ष विनत,

विनयावनत होरी धर्म, बिरादरी, सामाजिकता, आर्थिक विपन्नता, कृषि की मरजाद तथा महाजनों की चाल में इस कदर फंसा हुआ है कि वह जितना ही फरफड़ाता है उतना ही जकड़ता चला जाता है। वह कृषि की मरजाद नहीं भूलता तो विपत्तियों में उलझता जाता है। धार्मिक मर्यादा को नहीं तोड़ता तो उसका और खुल का शोषण होता है। तांवे के एक पैसे के अभाव में वह सत्यनारायण भगवान की कथा नहीं सुनने जाता। सब की आंखों में हेठा कैसे बने। वास्तव में होली और गोबर की पीढ़ी का संघर्ष गोबर के लखनऊ भाग जाने के बाद ही प्रारंभ होता है। इसके पूर्व का संघर्ष, प्रस्तावना मात्र ही है। जो धनिया के विद्रोह के साथ बहुत अंशों में मेल खाता है। गोबर साल भर से शहर में रह रहा है। उसका रंग ढंग बहुत कुछ बदल चुका है। राजनीतिक ज्ञान भी कुछ कुछ प्राप्त हो चुका है। राष्ट्र और वर्ग का अर्थ समझने लगा है। सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिष्ठा और लोक निंदा की परवाह अब उसमें बहुत कम रह गई है। लोक निंदा के जिस भाई ने उसे झुनिया को घर पर छोड़ कर भागने को बाध्य किया था, अब वह उसकी समझ में बेकार लगने लगा है। क्योंकि उसने अपने आसपास ऐसे बहुत से लोगों को बेफिक्र मस्ती से जीते देखा है जिन्हें लोक निंदा का कोई भय ही नहीं है। वह नौकरी छोड़कर दुकान लेता है और रोजाना ढाई तीन रुपए कमाने लगता है। महाजनों के विरोध में वह छोटा-मोटा महाजन बन बैठता है। परोस के एक्के वालों, गाड़ी वानों और धोबियों को सूद पर रूपए उधार देता है। पूंजीवादी व्यवस्था का काईयांपन और पैसों को जोड़ने की कुशलता गोबर में देखी जा सकती है। गोबर पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ लड़ने के लिए पूंजीवादी व्यवस्था का ही सहारा लेता हुआ दिखाई पड़ता है। होली में अपने घर जाता है और छूटकर अपने दोस्तों पर खर्च करता है। साहूकारों महाजनों तथा पंचों का स्वांग रचाया जाता है और ग्रामीण जनता को मनोरंजन के साथ सामाजिक और राजनीतिक चेतना की कुछ समझ होती है। उसकी आंखों पर की पट्टियाँ हटती है। गोबर गाँव के साहूकारों, महाजनों और पंचों की धौंस सहने को एक पल भी तैयार नहीं है। यह तो सरासर अन्याय है। पंचों को उसपर डाँढ लगाने का अधिकार क्या है? कौन होता है कोई उसके बीच में बोलने वाला। उसने एक औरत को रख लिया तो पंचों के बाप का क्या बिगड़ा। अगर इसी बात पर व फौजदारी दावा कर दे तो लोगों के हाथों में हथकड़ी पड़ जाए। सारी गृहस्ती तहस नहस हो गई। क्या समझ लिया है उसे इन लोगों ने। मेरा गधापन था कि घर से भागा। नहीं, देखता हूँ कैसे कोई एक धोला डाँढ लेता है। यही जी चाहता है कि लाठी उठाउँ और पटेश्वरी दातादीन, झिंगूरी, सब सालों को पीटकर गिरा दूँ और उनके पेट से रुपए निकाल लूँ। गोबर में बची खुची रूढ़िगत संस्कारों की भीरुता समाप्त हो जाती है। और वह खुल्लम खुल्ला संघर्ष के मैदान में आ खड़ा होता है। वह ताने मारता है, व्यंग्य करता है और लाठी उठाकर सब अन्यायियों की हड्डी पसली तोड़ने को उद्धत होता है। ताने और व्यंग्य से वह ग्रामीण महाजनों की छटपट्टी छुड़ा देता है। संसार में इलम की कदर नहीं है। ईमान की कदर है। क्या करोगे बहुत सा धन बटोर कर। कि साथ ले जाने की कोई जुगुत निकाल ली है (दातादीन से) उन पंचों से दावा करना है जिन्होंने डांड़ के बहाने मेरे डेढ़ सौ रुपए हजम किए हैं। देखूँ कौन मेरा हुक्का पानी बंद करता है, और कैसे बिरादरी मुझे जात बाहर करती है। (दातादीन से) रुपए हो तो हुक्का पानी कोई

नहीं पूछता। होरी के धर्म और नीति गोबर की बुद्धि से परास्त है। होरी अपने मन में सोचता है लड़के की अक्ल जैसे खुल गई है। कैसी बेलाग बात करता है। होरी गोबर के साथ भोला के यहां जाना चाहता है पर गोबर इसे स्वीकार नहीं करता। तुम बनी बात बिगाड़ दोगे। गोबर के इस कथन में यह संकेत प्रच्छन्न है कि गोबर अब अपनी जीर्ण परंपरा की मदद लेना चाहता, वह अकेले काफी है। होरी ही नहीं धनिया भी अब परास्त है गोबर की बुद्धि से। वह कहती है तुम से तो मैं हार गई। इस तरह पुरातन पीढ़ी को परास्त कर गोबर की पीढ़ी अपनी साहसिकता प्रदर्शित करती है। होरी की नियति चाकरी की नियति है। वह चाकरी की मनोवृत्ति से कभी उबर नहीं पाता। पर गोबर चाकरी को धत्ता बता देता है। कैसी चाकरी और किसकी चाकरी? यहाँ तो कोई किसी का चाकर नहीं सभी बराबर हैं। होरी जब तक जीता है चलने की अनुमति मांगता है गोबर से। पीढ़ी की कोख से जन्मी जब एक जवान पीढ़ी तैयार हो जाती है तो पुरातन पीढ़ी अपनी नयी पीढ़ी के सामने निश्तेज होने लगती है। वह पीढ़ी अपने आदर्शों में ही जीती है। पर यह देखती जरूर है कि उसकी अगली पीढ़ी उससे कुछ सही सोच रही है। पर दुर्भाग्य यह होता है कि पुरातन पीढ़ी अपने कतिपय नैतिक आदर्शों से मुक्त होना नहीं चाहती। उसके पास वह साहस नहीं होता कि नई पीढ़ी के आदर्शों को स्वीकार कर ले। होरी की जड़नीति गोबर के गले नहीं उतरती। बेटा जब तक मैं जीता हूँ मुझे अपने रास्ते चलने दो। जब मैं मर जाऊँ तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह करना। होरी का रास्ता अलग है। गोबर का रास्ता स्वाभिमान, विद्रोह अकड़ और बुद्धि के क्षेत्रों से होता हुआ गुजरता है। होरी गीली लकड़ी की तरह धुआँता रहता है। और गोबर सूखी हुई लकड़ी की तरह जल उठता है। अगर आग लगानी पड़ेगी तो आग भी लगा दूँगा। बेदखली करते हैं, करें, मैं उनके हाथ में गंगाजल रखकर अदालत में कसम खिलाउँगा। तुम दुम दबाकर बैठे रहो, मैं इसके पीछे जान लड़ा दूंगा। मैं किसी का एक पैसा दबाना नहीं चाहता ना अपना एक पैसा खोना चाहता हूँ।

गोबर की पीढ़ी जीवन को सहेजने में वैसा विश्वास नहीं करती, जैसी होरी की पीढ़ी। गोबर चाहता है कि वह गृहस्थी को सहेजें पर गृहस्थी के दारूण प्रपंचो को सहेजना उसके लिए असंभव दीखता है, अत: वह उससे अपने को मुक्त करना चाहता है 'जिसे सहेज नहीं पाया, उसके प्रति आसक्ति कैसी?' गोबर की पीढ़ी इसी में विश्वास करती है। गोबर अपने बूढ़े बाप को अच्छी तरह लथाड़ता है एक तो सामंती व्यवस्था ने उसे निर्जीव कर दिया है और दूसरी नई पीढ़ी ने उसे घसीटना शुरू किया है। ''तुम तो बच्चों से भी गए-बीते हो जो बिल्ली कि म्याऊँ सुनकर चिल्ला उठते हैं, कहां कहां तुम्हारी रक्षा करता फिरूँगा। मैं तुम्हें सत्तर रूपये दिए जाता हूँ। दातादीन ले तो देकर भरपाई लिखा देना। उसके ऊपर तुमने एक पैसा भी दिया तो फिर मुझसे एक पैसा.....''

गोबर दोबारा शहर में आता है पर पहले जैसी व्यवस्था नहीं हो पाती है। हार-पाछ कर उसे चीनी मिल में काम करना पड़ता है। गोबर सामंती संस्कारों से छूटकर पूँजीवादी संस्कारों में जीने लगता है और भविष्य में साम्यवादी संस्कारों की छाया में अपने शेष जीवन पूरा करेगा। गोबर सामंतवादी व्यवस्था में जन्म लेता है और साम्यवादी व्यवस्था में आकर वयस्क होता है। होरी जिस व्यवस्था में जन्म लेता है उसी व्यवस्था के प्रभाव में जीता मरता है, परंतु गोबर तीन-तीन

व्यवस्थाओं के संपर्क में आता है। मिल में असंतोष फैल जाता है, हड़ताली मजदूरों और नए भर्ती होने वाले मजदूरों में संघर्ष होता है और गोबर मिर्जाजी की रक्षा में अपना अंग-अंग चूर कर लेता है।

होरी का चरित्र फोटोग्राफी की तरह है जिसमें चित्रकला की तरह कोई जोड़ घटाव बदलाव-श्रृगांर नहीं है। अंत अंत तक वही है पुराने संस्कारों की मर्यादा में मरनेवाला। गोबर के चरित्र में एक विकास है, वह पहले किसान हैं बाद में छोटा-मोटा महाजन बनता है और अंत में मजदूर और गुलाम। गोबर मजदूर बनता है और अपने को जमीन के मोह से एक-दम काट लेता है, परंतु होरी मजदूर बनकर भी जमीन से अपने को तोड़ नहीं पाता- वह जमीन के कारण ही तो मजदूर बनता है। तीसरे दिन गोबर जब शहर की तरफ लौटने लगा तो होरी ने कातर स्वरों में कहा बेटा मैंने इस जीवन के मोह से पाप की गठरी सिर लादी। ना जाने भगवान मुझे इसका क्या दंड देंगे। गोबर इस पर अपने पिता को समझाता है इसमें अपराध की कोई बात नहीं है दादा तुम्हारी खेती में उपज नहीं कर्ज नहीं मिल सकता, एक महीने के लिए भी घर में भोजन नहीं ऐसी दशा में तुम और कर हीं क्या सकते थे? जैजात न बचाते तो रहते कहाँ? जब आदमी का बस नहीं चलता तो अपने को तकदीर पर ही छोड़ देता है। ना जाने यह धांधली कब तक चलती रहेगी? जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोंग हैं। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता उनकी जमा मारी होती तो तुम भी भले आदमी होते, तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा यह उसी का दंड है। तुम्हारी जगह मैं होता तो या जेल में होता या फांसी पर गया होता। मुझसे कभी अब बर्दाश्त नहीं होता कि मैं कमा कमाकर सबका घर भरूँ और आप अपने बाल बच्चों के साथ मुंह में जाली लगाए बैठा रहूँ। करुणा की मूर्ति होरी को देखकर गोबर का उद्दंड व्यक्तित्व भी शील से पूर्ण हो जाता है। गोबर के उपर्युक्त कथन में परस्पर विरोधी विचारों की स्थिति होरी की निष्पाप दयनीयता के कारण ही है। कहां विद्रोह की चिंगारी फैलानेवाला और कहां भाग्य को जीवन में महत्व देने वाला दोनों की संगति नहीं बैठ पाती। होरी की जीवन यात्रा में मोड़ नहीं है राह भी टेढ़ी-मेढ़ी है। गोदान आदि से अंत तक दो पीढ़ियों की आरोप-प्रत्यारोप भरे संघर्ष की कहानी है जिसमें होरी अपने देवत्व से दुर्दशा प्राप्त करता है और गोबर अपने व्यवहार कुशल व्यक्तित्व से नौकर होकर भी भरपेट भोजन प्राप्त कर पाता है मेहता की टिप्पणी होरी पर कितनी सटीक बैठती है।

इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है काश यह आदमी ज्यादा और देवता कम होते तो यो ठुकराए न जाते। होरी अपनी करुणा से देवता बन जाता है और गोबर अपने विद्रोह से सच्चा इंसान

प्रो. गणेश प्रसाद सिंह, आचार्य एवं अध्यक्ष(सेवा निवृत्त), हिन्दी विभाग एवं पूर्व निदेशक, पत्रकारिता तथा जन संचार बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रेमचन्द के कथा साहित्य में मानवीय संवेदनाएँ

डॉ0 राम सिंहासन सिंह

यहाँ पर बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचन्द ने कलावाद के विपरीत साहित्य के जीवनवादी दृष्टिकोण को अपनाया था और उनका लक्ष्य लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित था। प्रेमचन्द का लोकमंगलवाद तुलसीदास आदि मध्यकालीन साधकों के मंगलवाद से सर्वथा भिन्न है। प्रेमचन्द का लोकमंगलवाद वर्ण जाति के लौकिकत्व में प्रकट मानवता पर निर्भर है। उनके लोक मंगल विधान में आर्थिक, सामाजिक विषमता के अन्याय से मनुष्यता का उद्धार प्रमुख है।

प्रेमचन्द का समस्त कथा साहित्य मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत है। हिन्दी कथा साहित्य में उनकी सी प्रतिभा और अन्तर्दृष्टि लेकर दूसरे साहित्यकार ने अबतक प्रवेश नहीं किया है। जीवन के अनुभव और पर्यवेक्षण में कल्पना की विधायिका शक्ति का योग देकर उन्होंने महान साहित्य की सृष्टि की। उनकी कृतियाँ जीवन विस्तार के अनेक चित्र प्रस्तुत करती है। उनका साहित्य जीवन की व्याख्या है। इसके अन्तर्गत उनके जीवन दर्शन एवं मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमचन्द का कथा साहित्य गत्यात्मकता से पूर्ण है। वह जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता है और जीवन को प्रेरणा देता है।

प्रेमचन्द की कृतियाँ उद्देश्य निष्ठ है। उनके लक्ष्य संधान में अतिशय प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। प्रथमत: उनके पात्र और वस्तु ही उनके उद्देश्य को स्पष्ट कर देते है, अन्यथा प्रेमचन्द स्वयं अपने उद्देश्य की आलोचना प्रस्तुत करते चलते है। अतएव उनकी लक्ष्य प्रधान कृतियों की नि:संशयता प्रकट की है। उन्हें साहित्य के लक्ष्यवाद के प्रति किसी प्रकार की दुविधा न थी। इस सन्दर्भ में उनकी मानवीय संवेदनाएँ और अधिक प्रखर होती सी प्रतीत होती है। कला के लिए और जीवन के लिए कला ऐसे विवादास्पद विषयों पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है-साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाय। कला

के लिए कला के सिद्धान्त पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती है.....पर कला के लिए कला का समय वह होता है, जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि भांति-भांति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में लोग जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते है, विपत्ति का करण क्रन्दन सुनाई देता है तो कैस संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न पिघल उठे?

यहाँ पर बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचन्द ने कलावाद के विपरीत साहित्य के जीवनवादी दृष्टिकोण को अपनाया था और उनका लक्ष्य लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित था। प्रेमचन्द का लोकमंगलवाद तुलसीदास आदि मध्यकालीन साधकों के मंगलवाद से सर्वथा भिन्न है। प्रेमचन्द का लोकमंगलवाद वर्ण जाति के लौकिकत्व में प्रकट मानवता पर निर्भर है। उनके लोक मंगल विधान में आर्थिक, सामाजिक विषमता के अन्याय से मनुष्यता का उद्धार प्रमुख है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में प्रस्ताव किया है-जो दलित है, पीड़ित, वार्जित है-चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका (साहित्यकार) फर्ज है। उसकी अदालत समाज है, इसी अदालत के सामने वह अपना इस्तगासा पेश करता है और उसकी न्यायवृत्ति को जाग्रत करके अपना यत्न सफल समझता है।

वस्तुत: प्रेमचंद-युग राजनीतिक दृष्टि से बड़े उथल-पुथल का युग था। राजनीतिक नेताओं की तरह साहित्यकार भी देश की स्वतंत्रता के लिए सक्रिय प्रयास कर रहे थे। ये लोग समाज के प्राय: सभी वर्गो का समर्थन प्राप्त करके एक ऐसे राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करने में सचेष्ट थे, जिसका उपयोग ब्रिटिश शासन को समाप्त करने में किया जा सके।

आधुनिक भारत में राष्ट्रीय चेतना एवं राजनीतिक संघर्ष का प्रथम सामूहिक सूत्रपात सन् 1857 के देश-व्यापी स्वाधीनता आंदोलन से हुआ। शीघ्र ही यह जन विद्रोह देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला और जिस सामूहिक उत्साह से एक ओर दिल्ली के मुगल बादशाह, दक्षिण के पेशवा और मध्य भारत के हिन्दू राजाओं में तथा दूसरी ओर भारतीय सेना ने इसमें भाग लिया, वह सिद्ध करता है कि यह विद्रेह केवल गदर या सैनकि का जज़्बा नहीं था। प्रेमचन्द ने भी प्रथम महायुद्ध के भीषण रक्तपात की खबरों को सुना और उसका प्रभाव उनके मन और मस्तिष्क पर पड़ा था। उन्होंने उसके परिणामों पर काफी सोच विचार के पश्चात् उसमें होने वाली निरर्थकता को समझा था। रक्तपात से मानवता का विकास नहीं नाश होता है। इस तथ्य तक भी पहुँच चुके थे। वे यह भी जानते थे कि रक्तपात से बचने के लिए कायरता कोई उपाय नहीं है। समर यात्रा में आवश्यकता पड़ने पर हिंसा का भी प्रयोग किया जा सकता है और उससे डरना करयरता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे हिंसात्मक कार्यो के समर्थक थे। इस दिशा में गाँधीजी के जीवन दर्शन का भी उनपर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। राजनीतिक हलचलों के अभाव में समाज सुधारवादी संधी हलचल स्वभावत: जोर पकड़ने लगी थी। समाज में स्त्री की दयनीय अवस्था की ओर समाज सुधारकों का बयान प्रकाशित हो चुका था और वेश्या समस्या के प्रति भी समाज में जागृति के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे। सेवासदन से पूर्व वेश्या समस्या पर हिन्दी में किशोरी लाल गोस्वामी

के स्वर्गीय कुसुम कुमारी तथा उर्दु में मिर्जा मुहम्मद हादी रन्सवा के उमराव जान अदा नामक उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। प्रेमचन्द को 'सेवासदन' के लिए इनसे प्रेरणा मिली। प्रेमचन्द की रानी सारन्धा और राजा हडकौल जैसी ऐतिहासिक कहानियाँ भी इसी काल में लिखी गई थी।

प्रेमचन्द की प्रायः सभी रचनाओं में दलित, पीड़ित और शोषित प्राणियों कें दुख-कष्ट को समाज के सामने प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने साहित्य की सिद्धि इसी में मानी है कि वह देश, जाति, समाज के कल्याण का माध्यम बने। उनका यह लक्ष्य निम्नांकित शब्दों में और भी स्पष्ट हो जाता है। तुम्हारी कविता उच्च कोटि की है। मैं इसे सर्वांग सुन्दर कहने को तैयार हूँ। लेकिन तुम्हारा यह कर्तव्य कि अपनी इस अलौकिक शक्ति को स्वदेश बन्धुओं के हित में लगाओ। अवनति की दशा में श्रृंगार और प्रेम का राग अलापने की जरूरत नहीं होती, इसे तुम भी स्वीकार करोगे। वस्तुतः जिन परिस्थितिओं में प्रेमचन्द ने साहित्य की सृष्टि की, उनमें साहित्यकार के लिए इससे उदात कर्त्तव्य दूसरा न था कि वह देश के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक बन्धनों से मनुष्यता के उद्धार-साधन में योग दे। अतएव यहां ध्यातव्य है कि प्रेमचन्द की उक्त धारणा के निर्माण में उनकी परिस्थितियों का प्रभाव भी पड़ा था।

प्रेमचन्द साहित्य का उद्देश्य विल्कुल स्पष्ट है। उन्होंने अपने उपन्यासों एंव कहानियों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मन्तव्यों को बड़े विस्तार से पैठ दी है। राजनैतिक जीवन-चित्रण में वह देश की परतन्त्रता को नहीं भूलते, आर्थिक प्रश्नों पर दृष्टि डालते ही विषमता और शोषण से पीड़ित किसान और मजदूर की समस्याएँ उनके समक्ष आ जाती है और सामाजिक जीवन पर दृष्टि डालते ही चिरपीड़ित नारी समाज के उत्पीड़न से वह व्यथित हो उठते है। जो भी दलित और पीड़ित है, प्रेमचन्द उनके साथ है। प्रेमचन्द की रचनावनिर्माता का सामाजिक ध्येय न्याय और नीति के मूलभूत आदर्शों से प्रेरित है। उनकी प्रत्येक कृति किसी न किसी व्यापक सामाजिक उद्देश्य से संबंधित है। 'वरदान' में स्नेह पर कर्त्तव्य की विजय अंकित की गई है, 'प्रतिज्ञा' में विधवाओं को सामाजिक त्रास से मुक्त करने का संकल्प ध्वनित होता है, 'सेवासदन' में वेश्या के उद्धार की व्यवस्था की गई है, 'प्रेमाश्रय', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' और 'गोदान' में मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण का विरोध किया गया है। प्रेमचन्द ने राष्ट्र की प्रायः सभी मुख्य समस्याओं को युग चेतना के प्रकाश में देखा है और उनके प्रति अपना दायित्व अनुभव किया है। इसी दायित्व-निर्वाह के निमित उन्होंनें जैसा समझा, वैसा प्रकट कर दिया। उनके कथा-साहित्य में सत्य, आदर्श, न्याय, त्याग, सहिष्णुता, प्रेम, करूणा, समानता और बन्धुता की धारा सतत् प्रवहमान है।

प्रेमचन्द ने अपनी कृतियों के द्वारा हमारे सामने जीवन का एक दृष्टिकोण उपस्थित किया है। व्यक्तिगत भाव के धरातल पर उन्होंने व्यक्ति के चरित्र को लिया है, उसके सत-असत् तथा नैतिकता-अनैतिकता का अध्ययन पूर्ण सफलता से किया है। प्रेमचन्द ने एक प्रकार से अपनी रचनाओं में प्रचारक और सुधारक का बाना धारण किया है। प्रारम्भिक कृतियों में प्रेमचन्द ने सुधारवादी दृष्टि से काम लिया है, किन्तु उनकी सतत् विकासशील कला प्रयोग और परिणाम के द्वारा प्रत्येक परवर्ती कृति पूर्ववर्ती प्रभाव से मुक्त होती गई है। 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते उनकी

लक्ष्यनिष्ठ कला का स्टैनडर्ड निश्चित हो गया था, और उनकी मानवीय संवेदना और अधिक मुखर हो उठी थी।

प्रेमचन्द के कथा साहित्य में आये व्यक्ति भारतीय समाज के प्राय: प्रत्येक क्षेत्र और समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। उनके व्यक्ति समूह को सरलतापूर्वक उच्च, मध्य और निम्न वर्ग में विभाजित किया जा सकता है। पूंजीपति, भूमिपति और राजा महाराजाओं के चरित्र उच्च वर्ग के अन्तर्गत एवं अछूत, किसान-मजदूर आदि श्रमजीवी निम्न वर्ग के अन्तर्गत आते है, और सभी में उनकी मानवीय संवदेना की झलक मिलती है। समाज शास्त्रीय दृष्टि से प्रेमचन्द के पात्रों को स्पष्ट रूप से तीन वर्गों में बांटा जा सकता है-शोषक, शोषित और सुधारक। मोटे रूप से यह उपर्युक्त उच्च, निम्न और मध्य वर्ग के स्थानापन्न है, यद्यपि मध्यवर्ग के सब पात्र सुधारक नहीं है। 'कर्मभूमि' के प्रोफेसर शांति कुमार सुधारक है, जबकि 'गोदान' के अध्यापक डॉ0 मेहता को सुधारक नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार कुछ अन्य पात्रों का उल्लेख भी किया जा सकता है। 'गबन' का रामनाथ, निर्मला का तोताराम मध्यवर्गीय चरित्र हैं, पर सुधार से कोसों दूर हैं और उसकी उपेक्षा रखते हैं। इसके विपरीत प्राय: सब उच्चवर्गीय पात्र शोषक है और निम्न वर्गीयशोषित। इस तरह उनकी मानवीय संवेदना प्राय: प्रत्येक व्यक्ति पर परिलक्षित होती है।

प्रेमचन्द के व्यक्ति अपने वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। उनका होरी कृषक वर्ग का प्रतिनिधि है, रामनाथ मध्यवर्गीय दुर्बलताओं का प्रतिनिधि है और जनसेवक उद्योगपति पूँजीपति वर्ग का। इसी प्रकार उनके डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, जमींदार, सरकारी अधिकारियों आदि के चरित्र कार्य व्यापार से नहीं अपितु मानसिक संघटन से भी सोलहो आने अपने वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। व्यक्तियों की मानवीय संवेदना को प्रेमचंद की चरित्र चित्रण कला ने जितनी कुशलता से ग्रहण किया है, उतनी कुशलता से अन्य कथाकार नहीं कर पाये। उनके आदर्शवादी चरित्र मनुष्य की उदात्त चेष्टाओं के प्रतिरूप हैं और यथार्थवादी चरित्र दुर्बलताओं से संबद्ध है 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर के उदात्त मनोभाव और 'गबन' के रामनाथ की चारित्रिक दुर्बलताओं का उल्लेख हमारे मन्तव्य का प्रमाण है।

उपन्यास महाकाव्य का उत्तराधिकारी होता है। महाकाव्य की भाँति ही चरित्र-चित्रण उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। महाकाव्य के नायक, प्रति-नायक और खलनायक आधुनिक उपन्यास में भी होते हैं किन्तु सत् और असत् की धारणा का आधार बदल जाने से नायक और खलनायक का मानदण्ड बदल गया है। यह परिवर्तित विधान प्रेमचन्द के औपन्यासिक परिवारों में प्रतिष्ठित है। यहां होरी जैसे नीच जाति का अशिक्षित परिवार नायक है और ऊची जाति के शिक्षा सम्पन्न ज्ञानशंकर ऐसे व्यक्ति खलनायक। ऐसे दृष्टिकोण का आधार है मनुष्य में विश्वास और शोषण का विरोध। होरी गंवार है, नीची जाति का है, सूरदास अंध भिखारी है, फिर भी वह नायक है, क्योंकि इसमें मानवता है, जबकि विद्या बुद्धि सम्पन्न ज्ञानशंकर खलनायक है क्योंकि वह मनुष्यता की हत्या करने वाला निर्दय शोषक है। इसी प्रकार जमींदार पूंजीपति और अधिकारी वर्ग के पात्र पुराने खलपात्रों के आधुनिक संस्करण हैं। ये देखने में सुंदर हैं, सुनने में मीठे हैं पर

अत्याचार, अनाचार और विचार के काले देव हैं। ये न्याय, नीति और मनुष्यता की हत्या करते हैं, इसलिए वे खल चरित्र है। पुराने महाकवियों की भांति प्रेमचंद भी खल पात्र की भर्त्सना करते हैं। इस संबंध में प्रेमचन्द की सत्य-न्याय प्रतिष्ठा युक्त मानवीय संवेदना देखते ही बनती है। सत् की विजय असत् की पराजय उनकी संवेदना का मूल आधार है। पर वर्तमान परिवार में साधन, सुविधा और त्याग की प्रतिष्ठा का नया ढंग खोज निकाला। असत् चरित्रों की विजय के उपरांत में उन्हें घोर मानसिक अशांति की दशा में दिखाकर उनके जीवन की असफलता चित्रित कर उन्होंने सत् पर से मनुष्य का विश्वास नहीं उठने दिया और असत् की पराजय को अंकित कर दी। 'कर्मभूमि' के सेठ धनीराम और 'गोदान' के अमरपाल सिंह के चरित्र में प्रेमचन्द की सत्य न्याय की विशिष्ट धारणा द्रष्टव्य है। इसी प्रकार 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर का उल्लेख भी किया जा सकता है, जिसे भौतिक उन्नति की चरमावस्था में मानसिक दु:ख के कारण आत्म हत्या करनी पड़ी।

प्रेमचन्द की संवेदना में उनके परिवेश का विशेष हाथ रहा है। उनकी रचनाओं में हमें अपने युग की स्पष्ट ध्वनि सुनाई देती है। परिवेश के दमन, शोषण तथा उत्पीड़न का जितना सुन्दर एवं यथातथ्य चित्रण प्रेमचन्द ने किया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। उनके कथा साहित्य मध्य वर्ग, जमींदार किसान, पूँजीपति, मजदूर, अछूत, समाज से बहिष्कृत व्यक्तियों एवं नारी जीवन के अनेकानेक चित्रों से सम्पन्न है। प्रेमचन्द की श्रेष्ठता और महत्ता का सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने हिन्दी के प्राचीन उपन्यासकारों द्वारा संस्थापित परम्पराओं को ध्वंस्त कर, पुरानी मान्यताओं तक का परित्याग कर, हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में नवीन आदर्शों की स्थापना की और चिर उपेक्षितों को भी पढ़े-लिखे पड़ोस के आकर्षण का केन्द्र बनाया। जिस परिवेश में वे सांस ले रहे थे, वह जर्जर हो रहा था। प्रेमचन्द को संवदेनशील बनाने में उनके परिवेश की विशेष भूमिका रही है। इन्हीं संवेदनाओं से द्रवीभूत होकर प्रेमचन्द एक महान संवेदनशील कथाकार बन पाये हैं।

साहित्य क्षेत्र में प्रेमचन्द के पदार्पण से हिन्दी कथा साहित्य में युगान्तर उपस्थित हुआ। उनकी रचनाओं का उद्देश्य मनोरंजन मात्र न था, बल्कि उनका मानव जीवन और समाज में उपयोग वांछित था। प्रेमचन्द का कथा-साहित्य समस्या प्रधान है, जिसमें समाज की समस्याओं का व्यापक चित्रण किया गया है। विषय की दृष्टि से भी प्रेमचन्द ने नवीनता का परिचय दिया, जहाँ साहित्यिक दृष्टि विस्तार के लिए बड़ा अवसर था। उन्होंने साहित्य को रूढ़िवादी परम्परा से मुक्त किया और अति मानवता के जीवन-चित्रण द्वारा कला की सार्थकता अनुभव की। प्रेमचंद ने स्पष्ट शब्दों में कला की जीवनी शक्ति से अनुप्राणित देखने में विश्वास प्रकट किया। इसी भाव से अनुप्राणित होकर उन्होंने ग्राम और नगर जीवन का संवेदनापूर्ण चित्र प्रस्तुत किया।

'प्रेमाश्रम' में ग्रामीण और नागरिक समाज का चित्रण है जिसके अन्तर्गत विभिन्न वर्गो के जीवन चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। उपन्यासकार की दृष्टि ग्रामीण समाज के चित्रण में कृषक वर्ग की समस्याओं के प्रति काफी संवेदनशील है। नगर की सामाजिक मान्यताओं में प्राचीन और नवीन का संघर्ष है। प्राचीन मान्यताओं के प्रति नागरिक समाज का विश्वास उठ रहा है। पर, कुछ व्यक्ति ऐसे

भी है, जो प्राचीन आदर्शों पर दृढ़ विश्वास रखते हैं। यह प्राचीन और नवीन का संघर्ष प्रेम और विवाह ऐसे प्रश्नों को सर्वाधिक प्रभावित करता है। यह वर्ग पाश्चात्य शिक्षा और सामाजिक मान्यताओं से अत्यन्त प्रभावित है। यह पुरूष के समान नारी के भी जीवन साथी चुनने में पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता है। नगर निवासियों के तीन वर्ग है। उच्च वर्ग या पूँजीपतिवर्ग, जिसमें शोषण के आधार पर अपने ऐश्वर्य विलास का स्वर्ग बना रखा है। 'गोदान' के खन्ना इसके प्रतिनिधि हैं। दूसरा है-मध्य वर्ग। इसमें डॉक्टर प्रोफेसर और सम्पादक ऐसे व्यक्ति आते है। 'गोदान' के मालती मेहता और ओंकारनाथ मध्यवर्ग के प्राणी हैं।

प्रेमचन्द युग में अर्थ व्यवस्था की स्थिति बहुत नाजुक थी। ग्रामीण समाज की आर्थिक स्थिति गिरी हुई थी। इन गिने मुखियों के अतिरिक्त प्रायः समस्त प्राणी पैसे-पैसे को मोहताज थे। किसान को लगान से ही मुक्ति नहीं मिलती, उस पर बेदखली नजरानों आदि उसकी दुरवस्था को पूर्ण करते है। धरती की छाती चीरकर अन्न पैदा करनेवाला भूखों मरता है, उसके परिश्रम का लाभ दूसरे व्यक्ति उठाते हैं। पेट में भोजन नहीं, तन पर कपड़ा नहीं हैं, फिर भी अनवरत परिश्रम की पाट में पिसते-पिसते एक दिन जीवन का अन्त हो जाता है। प्रेमचन्द की यह आर्थिक संवेदना चुनौतीपूर्ण है।

प्रेमचन्द समस्त मानव जाति के पुजारी थे। वे मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना चाहते थे। उन्होंने अपने युग की मर्यादाओं से बंधकर साहित्य सर्जन नहीं किया, बल्कि विश्व मानवतावाद के प्रशस्त मार्ग पर चलना उनका शौक है। वे जन साधारण के लिए भी सुख और स्वराज्य की कामना करते थे।। उनके विश्वबन्धुत्व की भावना पर गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। मानव-मानव एक है एवं 'बसुधैव कुटुम्बकम' का भाव उनके कथा साहित्य का मूल घर्म है। विश्व बन्धुत्व की श्रृंखला में सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य जगत में केवल तुलसी, सूर और कबीर ही प्रेमचन्द के प्रतिद्वन्दी होने का दावा कर सकते हैं।

प्रेमचंद की संवेदना मानव मात्र तक सीमित नहीं, गाय बकरियों, कुत्ते, घोड़े, तोते जैसे मानवेतर प्राणी भी उनकी संवेदना के घेरे में आते हैं। इस तरह प्रेमचन्द का सम्पूर्ण कथा साहित्य मानवीय संवेदनाओं से अनुप्राणित एवं अभिप्रेरित है।

डॉ0 राम सिंहासन सिंह, पूर्व प्रधानाचार्य

ईशरदास की वसीयत

नरेन्द्र कोहली

जाने क्यों ईशरदास को लगने लगा कि ये सारे लक्षण अब जाल समेटने के हैं।.... बाहर निकलेंगे तो कभी पैर में ठोकर लग जाएगी, कभी कोई साइकिल वाला टकरा जाएगा, कभी फुटपाथ आड़े आ जाएगा। वे सारा दिन ब्रेन हैमरेज, सिर फटने, हड्डियां टूटने, चोट खाने और पट्टियां बंधवाने के ही दृश्य देखते रहे। यदि कूल्हे की हड्डी टूट गई तो यह भी संभव है कि वे पट्टी बंधवाने के लिए डाक्टर के पास जाने योग्य भी न रहें। कौन ले जाएगा अस्पताल?.....

ईशरदास मंडी गए थे, शाक-भाजी लाने।

लौटे तो थैले में आलू, प्याज, टमाटर तो थे ही; साथ ही माथे पर एक डरावना सा गूमड भी उभर आया था। दोनों घुटने छिले हुए थे। पाजामा फट गया था। ऐनक टूट गई थी। सिर जैसे चक्कर खा रहा था और सारा शरीर घबराहट के मारे कांप रहा था।

दमयंती ने देखा तो घबरा गई।

''यह क्या कर आए।''

''शाक-भाजी ले आया हूं।''

''मैं पूछ रही हूं, माथे पर क्या है?''

''आलू नहीं है तो टमाटर होगा।'' ईशरदास बोले।

दमयंती ने माथा पीट लिया, ''शाक-भाजी तो मैं घर बैठी, ठेली वाले से भी ले लेती। माथे पर गूमड़ तो नहीं पड़ता।....कहीं गिर पड़े थे क्या?''

ईशरदास आ कर चारपाई पर ढह गए, ''अब गिर पड़ा तो क्या करूं। उठ कर घर तक तो आ ही गया हूं।.....जमीन पर पड़ा गूमड़ इस टूटी ऐनक से दिखाई ही नहीं दिया, नहीं तो उस हरामी को क्यों अपने माथे से चिपकने देता।.....'' और सहसा उनका स्वर बदल गया, ''मेरा दिल घबरा रहा है। जाने का समय आ गया क्या''।

''पिता जी, अब आप शाक-भाजी के लिए मंडी मत जाया कीजिए।'' बहू ने बड़े दुलार से कहा, ''अब आपकी वह अवस्था

नहीं रही। गिरते-पड़ते रहेंगे तो किसी दिन कोई बड़ा हादसा हो जाएगा।''

''तुम थैला मत पकड़ाया करो, मैं मंडी नहीं जाऊंगा।''

''तो अम्मां को कहिए कि आस-पास से फल-सब्जी खरीदने को न वे मेरा आलस कह कर प्रचारित करें और न उसे मेरी फजूलखर्ची बताया करें। थोड़े पैसे अधिक खर्च हो जाएंगे पर माथे पर गूमड़ तो नहीं पड़ेगा।''

दमयंती भड़क उठी,'' मैं क्या कहती हूँ। यही तो कि जहाँ दो पैसे बचा सको, बचाओ। तुम्हारे ही बच्चों के काम आएंगे। मैं छाती पर धर कर नहीं ले जाऊंगी।....मैं यह तो नहीं कहती कि ससुर को थैला दे कर मंडी भेजो और उससे सब्जी में जो पैसे बचें, वे डाक्टर को भेंट कर दो। पायजामा भी फट गया है। ऐनक भी टूट गई है। उनका खर्च अलग।''

''अब आप से कौन सिर मारे।'' बहू अपने कमरे में चली गई, ''बुढ़िया का माथा ही ठिकाने नहीं है।''

जाने क्यों ईशरदास को लगने लगा कि ये सारे लक्षण अब जाल समेटने के हैं।.... बाहर निकलेंगे तो कभी पैर में ठोकर लग जाएगी, कभी कोई साइकिल वाला टकरा जाएगा, कभी फुटपाथ आड़े आ जाएगा। वे सारा दिन ब्रेन हैमरेज, सिर फटने, हडडियां टूटने, चोट खाने और पट्टियां बंधवाने के ही दृश्य देखते रहे। यदि कूल्हे की हडडी टूट गई तो यह भी संभव है कि वे पट्टी बंधवाने के लिए डाक्टर के पास जाने योग्य भी न रहें। कौन ले जाएगा अस्पताल?.....

बेटा भी कहेगा, आप बाहर जाते ही क्यों हैं। चैन से घर में पड़े नहीं रह सकते। हम अपना काम-धंधा देखें या आपकी पट्टियां ही करवाते रहें। लोगों के घरों में वृद्ध काम में हाथ बटाते हैं। और कुछ नहीं तो बच्चों को ही संभालते है.....हमारे घर के वृद्ध हमें डाक्टरों के पास दौड़ाने और अस्पतालों में टक्करें मारने का प्रबंध करते रहते है।

''ऐसे जीवन नहीं चलता ईशरदास''। उनकी आत्मा पुकार रही थी।

अब उनका कोई भविष्य नहीं है। आगे कुछ भी अच्छा होने वाला नहीं है। व्यक्ति जीवन जीता है तो अंत में बुढ़ापा भी झेलता है।.....वे वही झेल रहे हैं। भविष्य में कुछ नहीं धरा। अतीत ही उनकी पूंजी है। बैठे उसे ही याद करते रहे।...

वे जैसे किसी गहन स्वप्न में डूब गए।....अतीत। अर्थात् सत्या।....उसे ही स्मरण करना होगा। जितने दिन उसके साथ बीते, वह ही जीवन था। और उनके अतीत में रखा क्या है.....

तब ईशरदास बूढ़े नहीं थे। सूट पहनते थे, टाई बांधते थे, तेजी से चुस्त और स्मार्ट लोगों के समान चलते थे। तेज तर्रार आवाज में बोलते थे।

कॉलेज की नौकरी करते हुए दो साल हुए थे कि सत्या मिल गई। वह बड़ी तेजी से उनकी ओर बढ़ी। छह महीनों में उन्होंने विवाह कर लिया। तब वे थैला ले कर घिसटते हुए मंडी नहीं जाते थे। दोनों को ही बाहर जाने और बाहर ही खाने का शौक था। बाहर निकलते तो उसी चक्कर में घर का समान भी खरीद लाते थे।.....

सुधीर के जन्म के बाद तो उसे भी प्रैम्यूलेटर में डाल कर साथ ले जाते थे। लौटते हुए सुधीर गोद में होता था और प्रैम घर के सामान से लदी होती थी।

तीन साल अच्छे बीते और फिर गुड़िया का जन्म हो गया। गुड़िया के जन्म के बाद सत्या के हारमोन बदलने लगे। उसका रस कुछ सूखने लगा। उसका व्यवहार बदलने लगा था। वह नीरस और शुष्क ही नहीं हो गई, बेहद झगड़ालू भी हो गई थी।..... उसके सुंदर मुखड़े पर उनके लिए कोई कोमल रेखा नहीं रह गई थी। उनकी समझ में नहीं आया कि उसमें दोष गुड़िया का था, या उनका अपना।

वे सत्या से पूछते रहे किंतु उसने कभी कोई कारण नहीं बताया।

उनकी खोज जारी रही किंतु कोई निष्कर्ष नहीं निकला।.... और एक दिन वह उनके नाम एक पत्र लिख कर घर छोड़ गई..... तब उन्हें पता चला कि उन दोनों की जोड़ी सजती नहीं थी। ईशरदास उसके योग्य नहीं थे। वह परियों जैसी सुंदर थी। और ईशरदास फुटपाथ पर मिलने वाले साधारण पुरूष थे। हूर और लंगूर वाला किस्सा था।

सत्या अनेक पुरूषों के लिए आकर्षण का केन्द्र थी..... ईशरदास उसे कभी गुलाब का एक फूल भी भेंट नहीं करते थे और वे पराए पुरूष उसे अच्छी साड़िया, घड़ियां और मोबाइल भेंट करते थे। वे उसे गोवा और कश्मीर घुमाना चाहते थे। इंग्लैड और स्विटजरलैंड ले जाना चाहते थे। और ईशरदास तो अब कनॉटप्लेस भी नहीं जाना चाहते थे। उसके साथ चलना और लंगूर कहलवाना उन्हें पसंद नहीं था।

वे सब कुछ देखते रहे, किंतु इसमें उन्हें कोई संकट दिखाई नहीं दिया। संकट उस दिन दिखाई दिया, जब वह अपने दोनों बच्चों का हाथ पकड़ कर एक आई.ए.एस. के साथ चली गई और उनके हाथ में विवाह-विच्छेद के कागज आ गए।

ईशरदास के मस्तिष्क को जैसे पक्षाघात खा गया। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। एक ओर तो वे स्वयं को अत्यंत अपमानित और वंचित पा रहे थे और दूसरी ओर उनका आत्मसम्मान उन्हें सत्या को मनाने से रोक रहा था। जाती है तो जाए। भाड़ में जाए। जब वह आई.ए.एस. उसको वैसा प्यार नहीं देगा, जैसा कि वे दे रहे हैं तो अपने आप रोती हुई लौट आएगी। उस आई.ए.एस. के भी पहली पत्नी से दो बच्चे हैं। सत्या संभाले गी चार-चार बच्चों को? खेल नहीं हैं। बसी बसाई गृहस्थी को छोड़, उठी और चल दी। मूर्खा कहीं की.....

उन्होंने समझा था कि यह दो-चार दिनों का नाटक है। लौट आएगी अपने आप। पर वह नहीं लौटी। अब वह एक आई.ए.एस. की पत्नी थी। उसकी बड़ी सी गाड़ी से बच्चों और कुत्ते के साथ घूमती-फिरती थी। कॉलेज भी गाड़ी में ही जाती थी। अपना उपनाम भी बदल लिया था। अब वह श्रीमती मल्होत्रा थी।.....और फिर उस आई.ए.एस. से एक बेटा भी पैदा हो गया था। सिद्धार्थ मल्होत्रा। सत्या को अब ईशरदास की तनिक भी आवश्यकता नहीं रह गई थी।

ईशरदास को उसकी प्रतीक्षा करना व्यर्थ लगा।.....और अब ईशरदास की समझ में यह भी आ रहा था कि स्त्री के बिना जीवन काटना कितना कठिन है।.....घर में कोई बात करने वाला भी चाहिए। अकेले न भोजन बनता है और न खाया जाता है। दिन कट भी जाए तो रात नहीं कटती।....

ईशरदास के कुछ परिचितों ने घर का काम करने के लिए कोई नौकरानी रखी और वह रसोई से उनके विस्तर तक की यात्रा तय कर आई। कुछ लोगों ने तो समाज के समाने विवाह भी कर लिया कुछ रखैल के रूप में रही। अब वह बहुत सम्मानजनक हो गया था। अब उसे ''लिव-इन'' कहते थे।

ईशरदास को लगा, नौकरानी को पत्नी अथवा रखैल बनाने से तो अच्छा था कि वे किसी भले घर की साधारण लड़की से विवाह कर लें। ज्यादा मीन-मेख में न पड़े। बाद में जब सुविधा होगी तो वे नौकर या नौकरानी भी रख लेगें। नौकर और नौकरानी.....यदि सुंदर और स्मार्ट पत्नी ही नौकर के साथ भाग जाए तो? यदि सत्या आई.ए.एस. के साथ भी भाग सकती है तो दूसरी पत्नी नौकर, ड्राइवर या पड़ोसी के साथ भी भाग सकती है। नौकरानी उनके साथ सह-शयन करे या न करे, उन पर लांछन तो लगा ही सकती है। गर्भ किसी और का ले आएगी और उनके सिर मढ़ दे तो? उन्हें अपवाद की कालिमा में तो डुबो ही सकती है। नहीं..... उन्हें विवाह ही कर लेना चाहिए।..... पर वे पूर्व-विवाहित थे। उनके दो बच्चे भी थे। यह जान कर उन्हें कौन अपनी बेटी देगा..... और इस सूचना को वे छिपाएंगे भी कैसे। कॉलेज और विश्वविदयालय के इतने लोग सत्या के विषय में जानते हैं।..... नहीं, वे कोई नया झमेला नहीं चाहते।..... पर विवाह तो वे करना ही चाहते हैं।..... कोई प्रौढ़ युवती हो, कोई परित्यक्ता हो, कोई विधवा हो। कोई भी हो किंतु वे नौकरानी रख कर व्यभिचार नहीं करेंगे।

वे तो किसी को नहीं खोज पाए किंतु दमयंती के परिवार ने उन्हें खोज निकाला। उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा गया और उन्होंने चुपचाप स्वीकार कर लिया।

गृहस्थी चल निकली। दमयंती का वय कुछ अधिक हो गया था। बहुत आकर्षक भी वह नहीं थी। शायद इसी कारण अभी तक उसका विवाह नहीं हो पाया था।

उसकी अपेक्षाएं भी अधिक नहीं थी। सीधी-सादी गृहस्थिन थी। रोटी, कपड़ा और मकान के अतिरिक्त शायद ही उसने कोई इच्छा प्रकट की हो। ईशरदास उसके लिए कभी कुछ करना भी चाहते थे तो वह उनको रोकने का प्रयत्न करती थी। कोई गहना लाते तो वह उसे बैंक के लॉकर में रखवा देती थी।..... उसने कभी कहा नहीं किंतु उसके मन में कही था कि वह उसे अपनी बहू-बेटी के लिए संभाल लें।.....

ईशरदास के साथ न हो किंतु वे एक क्षण के लिए भी भूल नहीं पाते थे कि उनके दो बच्चे भी थे। वे कहीं भी रहें, सत्या किसी की भी पत्नी बन जाए, एक नहीं चार विवाह कर ले किंतु उन बच्चों के पिता ईशरदास ही रहेंगे। इस संबंध को न वह बदल सकती थी और न ही तोड़ सकती थी। प्रकृति का बनाया हुआ यह संबंध कोई कानून कोई न्यायालय नहीं तोड़ सकता था। पति-पत्नी का संबंध मनुष्य का बनाया हुआ था किंतु संतान और माता पिता का संबंध तो ईश्वर का बनाया हुआ था। वह नैसर्गिक और अटूट था....

दयमंती को ईश्वर ने संतान नहीं दी। उसकी गोद कभी नहीं भरी। वह ईशरदास से चर्चा भी करती तो वे उसे टाल जाते। उसके सामने न कभी अपने बच्चों की चर्चा की और न कभी उन्हें

अपनाने के लिए कहा। कहते भी कैसे, वे तो सत्या के पास थे और सत्या कभी उन्हें ईशरदास को सौंपने वाली नहीं थी। वे चाहते तो कानून का आश्रय ले कर उन्हें प्राप्त कर सकते थे किंतु उसके लिए कोर्ट-कचहरी करने के लिए ईशरदास तैयार नहीं थे। जाने दमयंती उन्हें अपने आंचल की छाया दे सके, न दे सके। उसने वर्षो से कभी उनसे मिलने की इच्छा प्रकट नहीं की थी। वह अपनी सूनी गोद के साथ भी संतुष्ट थी किंतु अपनी सौत के बच्चों को इस घर में लाना नहीं चाहती थी। ईशरदास यदि उन्हें अपने साथ ले आते तो उनकी वर्तमान गृहस्थी में कौन सा तूफान आता..... उन्होंने पहली बार जाना कि वे सत्या से भी डरते थे और दमयंती से भी। उनमें इतना साहस नहीं था कि इन दोनों में से किसी से भी मोर्चा ले सके।

ईशररदास को सूचना मिली थी कि उस आई.ए.एस. ने सत्या को छोड़ दिया था। उसकी पोस्टिंग किसी और नगर में हो गई थी और उसने शायद नई शादी भी कर ली थी। ईशरदास को लगा कि यह उपयुक्त अवसर था कि वे सत्या को मना लाएं और बच्चों को उनका घर दें।.....पर दमयंती.....वह सत्या को या बच्चों को स्वीकार करेगी?

रात को ईशरदास बिस्तर पर आए तो उन्हें लगा कि दमयंती पूरी कामिनी बनी हुई थी। आज तक उसने काम का आवेग इस प्रकार नहीं दर्शाया था। पर आज वह उन पर कुछ इस प्रकार छा गई थी कि उसे झेलना कठिन हो रहा था।

''आज क्या हो गया है तुम्हें?'' उनसे कहे बिना नहीं रहा गया।

''मुझे संतान चाहिए। कब तक सूनी गोद लिए बैठी रहूंगी।''

''प्रयत्न तो कर ही रहे हैं। आगे जो ईश्वर की इच्छा।''

पर दमयंती का उदवेग बढ़ता ही रहा। वह प्रतिदिन संतान की चर्चा ही नहीं, उनकी मांग करती रही। जैसे ईशरदास संतान के आने का विरोध कर रहे हों। वे डाक्टर के पास भी गए और अस्पताल भी। पर संतान का जन्म नहीं होना था, नहीं हुआ।

अंत में दमयंती ने किसी के बच्चे को गोद लेने का प्रस्ताव रखा।.... ईशरदास इस प्रस्ताव को किसी हालत में स्वीकार नहीं कर सकते थे। वे जानते थे कि उनके अपने दो बच्चे थे, फिर वे किसी और का बच्चा गोद लेने क्यों जाते।

''है तो मेरे दो बच्चे।''

''तुम्हारे है। मेरे तो नहीं हैं। सच मानो तो वे तुम्हारे भी नहीं है। उस चुड़ैल के हैं। तुम्हारे होते तो तुम्हारे पास होते। साहस है तो कानून की सहायता से उन्हें उससे छीन लो।''

''मैं उन्हें ले आऊंगा तो तुम उन्हें स्वीकार कर लोगी?''

''उन्हें स्वीकार करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।'' दमयंती बोली, ''पर उस चुड़ैल के पास तो नहीं रहेंगे न।''

''तो कहां रहेंगे? अनाथालय में?''

''अनाथालय में रहें, सड़क पर रहें, नाले में रहें किंतु मेरे घर में नहीं रहेंगे।''

''संतान उत्पन्न नहीं कर सकतीं, जो हैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकती, तो फिर संतान गोद लेने का व्यर्थ का शोर क्यों मचा रखा है।''

''देखो सीधे से मेरी बात मान जाओ। मेरी बहन का एक लड़का गोद ले लो। नहीं तो मैं भी तुम्हारे साथ नहीं रहूंगी।''

ईशरदास का दिल दहल गया: पहली वाली चली गई थी तो उन्हें तो कष्ट हुआ ही था, बदनामी कितनी हुई थी..... जिसकी छोड़ भागी है..... किसी को उन से सहानुभूति नहीं थी। सब ओर परिहास ही परिहास था। वे उस अपमान को दूसरी बार सहन नहीं कर सकते थे।.....

''किस को गोद लेना चाहती हो?'' वे बोले, ''मुझे विश्वास है कि तुम अब तक कहीं न कही बात तय कर चुकी होगी।''

''अनाथालय से नहीं लेना चाहती।'' दमयंती बोली, ''मेरा बड़ा भांजा हैं। साल भर का है। मैं पालूंगी तो बड़ा हो कर उसे पता भी नहीं लगेगा कि वह हमारा बच्चा नहीं है।''

''खैर यह तो भूल ही जाओ। ऐसी बातें छिपी नहीं रहती। कोई न कोई उसे बता ही देगा। और कोई नही तो तुम्हारी अपनी बहन ही अपने पुत्र को बता देगी।''

''वह क्यों बताएंगी?''

''क्योंकि जीवन के किसी भी पड़ाव पर उसे खेद होने लगेगा कि उसने अपना बेटा क्यों किसी और को दे दिया।''

''वह मेरी बहन है। अपनी बात से नहीं टलेगी।'' दमयंती ने कहा, ''आपकी बहन होती तो बात और थी। हमारे परिवार में लोग वचन के पक्के होते हैं।''

ईशरदास ने देखा कि बातचीत अशोभनीय होती जा रही है। दमयंती को लग रहा है कि वे उसके मायके पर आरोप लगा रहे हैं। मायके के नाम पर वह कुछ भी सहन नहीं कर सकेगी और जो कुछ वह उनके और उनके परिवार के लिए कहेगी, उसे वे सहन नहीं कर पाएंगे।

''हां जानता हूँ कि तुम्हारे परिवार वाले सीधे राजा दशरथ की संतान है।'' वे मन-ही-मन बोले और अपने कमरे में चले गए।

इसके बाद उन दोनों में इस विषय को ले कर कोई बात नहीं हुई। कानूनी कारवाई अवश्य हुई। वे चाहते थे कि दमयंती उसे गोद ले। किंतु दमयंती सब कुछ उनसे करवाना चाहती थी।

उन्होंने आकाश को कानूनी तौर पर गोद ले लिया। वह उनका कानूनी उत्तरराधिकारी था। दमयंती ने उसमें स्पष्ट रूप से लिखवाया था कि उनके बाद उनकी सारी चल और अचल संपत्ति का स्वामी वही होगा।....

फिर जीवन सहज गति से बह निकाला। ईशरदास को कुछ भी स्मरण नहीं रहा.....

और एक दिन एक युवक उन से मिलने आया। उसने उनके चरण छुए।

''प्रणाम करता हूँ पिता जी।''

ईशरदास ने उसे ध्यान से देखा, ''कौन हो भाई। मैंने तुम्हें पहचाना नहीं।''

वह हंसा, ''मैं आपका पुत्र सुधीर।''

''सुधीर।'' उन्होंने ध्यान से देखो, ''इतना सुदर्शन और हष्टपुष्ट पुत्र है उनका।''

उन्होंने उठ कर कपाट बंद किए और सुधीर को कंठ से लगा लिया, ''कहां थे अब तक तुम?''

''आपके और मां के विरोध के बीच में फंसा हुआ था। नही तो मैं कब का आप के पास आ गया होता।''

''सत्या कहां है?''

''अभी कॉलेज में पढ़ा रही हैं। उनके दूसरे पति भी उनको छोड़ गए है।''

''वह छोड़ गया है या सत्या ने उसे छोड़ दिया है।''

''नहीं। उसने ही अपनी पी.ए. से विवाह कर लिया है। उसके पहले विवाह से उत्पन्न बच्चे भी उसके पास ही हैं। बड़े हो गए हैं, समर्थ हैं। हम लोग मां के भाग में आए हैं। उस बड़ी कोठी को छोड़ कर एक एम. आई. जी. "लैट में आ गए है।''

''और मैं? मेरा अधिकार?'' ईशरदास के मुख से निकला, ''तुम्हारा पिता तो मैं हूं।'' वे कहते-कहते रूक गए कि उनके पास बहुत बड़ा मकान है। करोड़ों की जायदाद है। उनके बच्चों को एम.आई.जी. फलैट में रहने की आवश्यकता नहीं है।

''उसमें किसी को क्या संदेह हो सकता है।'' सुधीर बोला, ''किंतु आप और मां जब तक मिल नहीं जाते तब तक हमारी स्थिति भी स्पष्ट नहीं होती।''

''तुम जानते हो न कि मैंने भी दूसरा विवाह कर लिया है और मेरी दूसरी पत्नी ने अपने भांजे को गोद ले लिया है। वह तुम्हें स्वीकार करेगी?''

''संभवत: नहीं करेंगी।'' वह बोला, ''मैं आपके पास आया था...सुना था कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। यदि मैं आपके किसी भी काम आ सकूं तो...।''

ईशरदास का मान पिघल गया। मन हुआ कहे, वह गुड़िया को ले कर उनके ही पास आ जाए। उनके पास बहुत बड़ा मकान था। वे लोग आराम से रह सकते है।.....किंतु सत्या?

उनके गिरने और माथे पर गूमड़ पड़ने का समाचार भी सुधीर को मिला था। वह अपने एक डाक्टर मित्र को ले कर आया था कि ईशरदास की जांच हो सके।

वह देख रहा था कि दमयंती को यह सब पसंद नहीं आ रहा है। किंतु वह सुधीर को ईशरदास से मिलने से रोक नहीं सकती थी। वह दमयंती का हो न हो, ईशरदास का पुत्र था।..... आकाश को गोद तो लिया था। किंतु ईशरदास का और सपुत्र तो सुधीर ही था, वही रहेगा।

सुधीर विदा हुआ तो ईशरदास उनकी पीठ को देखते रहे।.....कैसा सुंदर और सुदृढ़ युवा था। मन होता था कि उसे बैठा कर अभी अपनी सारी संपत्ति उनके नाम कर दें। उनका वास्तविक उत्तराधिकारी तो वही था।.....

ईश्वरदास उसे रोक नहीं सकेय किंतु वे अपने आप को भी रोक नहीं सके। सुधीर के जाने के पश्चात् दमयंती को बुला कर अपने पास बैठाया और बोले, ''सोचता हूं कि अब समय आ गया है कि मैं अपनी वसीयत तैयार कर दूं।''

''कर दीजिए। उसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। पर क्या बांटना है आपको? आपके पास है ही क्या? और किस को देना है''।

''मकान है मेरे पास। तीन मंजिले हैं। सोचता हूं कि ऊपर की एक मंजिल सुधीर के नाम कर दूं।''

''होश में तो हैं आप?''

''वह मेरा बेटा नहीं है क्या?'

''वह आपका नहीं, आपको छोड़ भागी स्त्री का बेटा है।'' वह बोली'' मैं आपकी पत्नी हूं। मकान आपके जीवन में भी मेरा है और आपके बाद भी। आप उसकी एक ईंट भी किसी को नहीं दे सकते। वसीयत लिखेंगे तो उसे भी आपकी चिता में डाल दूंगी।''

ईशरदास उसका चेहरा देख कर ही डर गए।

अगली बार सुधीर आया तो ईशरदास ने उसे बैठा लिया।

''कैसे है आप?''

''उसकी चिंता छोड़''। वे बोले, ''जैसा भी हूं। अब बहुत दिन नहीं चलना है। सोचा था कि इस मकान में से तुम्हार हिस्सा तुम्हें दे दूं। पर दमयंती वह करने नहीं देगी।''

''कोई बात नहीं पिता जी। मुझे वह नहीं चाहिए।''

''तुम्हें कुछ नहीं चाहिए; किंतु मुझे कुछ चाहिए।''

''क्या?''

''जो माँगूंगा मना मत करना।''

''नहीं करूंगा।''

''तो यह ले जा। पचास लाख हैं। एक फ्लोर का मूल्य चार करोड़ है। न मैं तुम्हें चार करोड़ दे सकता हूं और न ही फ्लोर। मेरे हाथ बंधे हुए हैं।'' वे रूके, ''ये पचास लाख ले जा। किसी से इसकी चर्चा भी मत करना। इसके बदले में मुझे एक वचन दें.....।''

''क्या पिता जी?''

''कि मुझे मुखाग्नि तू देगा...''

''कैसी बाते कर रहे हैं पिता जी अभी से।''

''अब ऐसी बातों का समय आ गया है पुत्र।'' वे बोले, ''वचन दे।''

''वचन देता हूं।''

''जा।'' उन्होंने उसके सिर पर हाथ रख दिया।

शव को श्मशान ले जाने से पहले सुधीर और गुड़िया भी घर पहुंच गए थे। उन्हें प्रणाम तो करने दिया गया किंतु उसके पश्चात् बड़ी चतुराई से पीछे धकेल दिया गया।

सुधीर ने साहस किया, ''मैं उनका बड़ा पुत्र हूँ। कुछ कर्तव्य मेरे भी है।''

''तुम सत्या के पुत्र हो। ईशरदास जी के नहीं।'' आकाश तन कर उसके सामने खड़ा हो गया।

उसने सिर मुंडवा लिया था। धोती और बनियान में वह श्मशान जाने की वर्दी में खड़ा था। उसके साथ, जैसे उसे सहारा देने के लिए दमयंती खड़ी थी। आकाश के सगे माता-पिता और भाई बहन उसके साथ थे। पूरा कुटुंब एकत्रित था.....सुधीर का पक्ष लेने वाला कोई नहीं था।

''पिता जी की इच्छा थी कि उन्हें मुखाग्नि मैं दूं।''

''तुम्हारे पास उनकी वसीयत है क्या?''

''वसीयत तो है किंतु लिखित रूप में नहीं है।''

''होती भी तो उसे मैं चिता में डाल देती।'' दमयंती ने कहा।

''पर मैं मुखाग्नि दूं तो आपको क्या आपत्ति है?''

''बहुत चतुर मत बन।'' दमयंती ने कहा, ''यह हमारे समाज की अलिखित वसीयत है कि मुखाग्नि देने वाला पुत्र ही संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है।''

''मैं लिखित रूप में देता हूं कि मुझे संपत्ति में से कुछ नहीं चाहिए किंतु मुझे मुखाग्नि का उत्तराधिकार दिया जाए।''

''तू अपनी टांगो पर चल कर घर जाना चाहता है, तो चला जा नही ंतो यहीं टांगे तोड़ दूंगा। श्मशान भी नहीं जा पाएगा।''

सुधीर समझ गया कि पिता जी पहले से ही यह सब भांप चुके थे। तभी तो अपनी वसीयत अपने वक्ष में छिपाए हुए ही चले गए। मकान पर कब्जा जिसका था, उसी का रहेगा। वसीयत किसी के भी नाम हो। (9.7.2018)

नरेन्द्र कोहली, 175 वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली 110034

हे! प्रभु

डॉ. रामदरश मिश्र

किसी ने माँ को बताया कि निजामुद्दीन के पास एक साधु रहते है वे बड़े प्रतापी है। उनके आशीर्वाद से पुत्र प्राप्त हो सकता है। वसुंधरा जी उस आदमी के साथ साधु के यहाँ पहुँची। एक खाली सुनसान जगह में साधु की झोपड़ी थी। आस-पास पेड़ पौधे बिखरे हुए थे। वसुंधरा जी पहुँची तो बाहर तीन साधु बैठे थे। वसुंधरा जी ने उनसे कहा-हमें संत जी का दर्शन करना है''। एक साधु बोला''बैठिए अभी वे पूजा में लीन है''।

श्रीमती वसुंधरा देवी बहुत पेरशान थीं कि उनकी बहू दिव्या के बेटे की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो रहा है। लगातार तीन बेटियाँ ही पैदा हुई। उन्होंने पोते की प्राप्ति के लिए मनौतियां मानी, जोग टोट करवाए, पूजा-पाठ करवाए लेकिन मनोवांछित फल नहीं मिला। बेटा प्रपुल्ल समझाता रहा-माँ तुम बेट के लिए इतनी परेशान क्यों हो रही हो, बेटियाँ भी तो अपनी ही संतान है। आजकल बेटियाँ बेटों से अधिक लायक निकल रही है। उन्होंने एक मित्र का संदर्भ दिया। बताया कि उन्हें भी शुरू में तीन बेटियाँ मिली। उनके बाद लड़का पैदा हुआ तो घर में खुशी छा गई। अब स्थिति यह है कि तीनों बेटियाँ पढ़-लिख कर उच्च पदस्थ हो गई और बेटा बारहवीं पास करने के बाद आवारा और नशेड़ी हो गया। बेटियाँ माँ-बाप का सहारा बनी हुई है और बेटा सिरदर्द बन गया है। जबर्दस्ती पैसा लेकर फूँक रहा है। गुस्से में घर के सामान तोड़ रहा है।

माँ कहती- ''हां बेटे लेकिन सारे बेटे तो ऐसे नहीं होते। बेटियाँ तो अपने-अपने घर चली जाती है बचता है बेटा ही ना''

''माँ कुछ भी हो, अपने हाथ में क्या है। बेटा बेटी पैदा करना अपने अधिकार में तो नहीं है ना तो जो ईश्वर दे रहा है उसी में संतोष करना चाहिए।''

लेकिन माँ को पोता चाहिए ही। बेटे की किसी बात का उनपर असर नहीं हो रहा था।

किसी ने माँ को बताया कि निजामुद्दीन के पास एक साधु रहते है वे बड़े प्रतापी है। उनके आशीर्वाद से पुत्र प्राप्त हो सकता है। वसुंधरा जी उस आदमी के साथ साधु के यहाँ पहुँची। एक खाली सुनसान जगह में साधु की झोपड़ी थी। आस-पास पेड़ पौधे बिखरे हुए थे। वसुंधरा जी पहुँची तो बाहर तीन साधु बैठे थे। वसुंधरा जी ने उनसे कहा-हमें संत जी का दर्शन करना है''। एक साधु बोला''बैठिए अभी वे पूजा में लीन है''।

कुछ देर बार भभूत रमाए साधु जी निकले। चेलों ने कहा- ''गुरू जी ये लोग आपके दर्शन के लिए आए हैं''।

''आओ बच्चों बोलो क्या समस्या है?''

''महात्मा जी, ये वसुंधरा जी है। इनकी बहू को बेटियाँ ही पैदा हो रही है। ये बेटा चाहती है।'' साथ का आदमी बोला।

''हाँ महात्मा जी मैं बेटे के लिए आशीर्वाद लेने आई हूँ।

साधु जी ने ध्यान लगाया। कुछ मंत्र बुदबुदाए। फिर बोले- ''जा देवी इस बार तुम्हारी बहू को बेटा ही होगा।''

''धन्यवाद महात्मा जी बहुत-बहुत धन्यवाद। आपकी क्या सेवा करूं।''

''अरे कुछ नहीं रे जब बेटा पैदा हो जाए तब आना।''

वसुंधरा जी खुशी-खुशी घर लौटने लगीं और साथ वाले आदमी से कहा- ''आपने इस महात्मा का पता बता कर बहुत उपकार किया है। इस महात्मा में कोई लोभ नहीं है। मुझसे कुछ नहीं चाहा।''

और इस बार बहू को बेटा ही पैदा हुआ। साधु के प्रति बसुंधरा का विश्वास और भी सघन हो गया। बेटे ने कहा- ''माँ यह साधु वाधु की कृपा से नहीं हुआ है। इसे होना ही था। अपने आप हुआ है।'' लेकिन वसुंधरा जी अपने इस विश्वास पर अटल थी कि यह साधु के आशीर्वाद से ही हुआ है। अत: वे एक दिन साधु के दर्शन को चली गई। बेटे का समाचार सुनकर साधु बहुत प्रसन्न हुआ और उसे लग गया कि उसके प्रति औरत का विश्वास अटल हो गया है।

वसुंधरा जी ने साधु से फिर पूछा- आपकी क्या सेवा करूँ।

डॉ. रामदरश मिश्र, आर–38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059
दूरभाष : 28563587, मो. : 9211387210

शिष्या

ममता कालिया

प्रत्यूष ने कहा उनसे कैसा खतरा। न आप पॉलिटिक्स करती हैं, ना व्यापार। उल्टे डरना तो हमें चाहिए आप से। उसने कहा-इनसे क्या खतरा हो गया तुम्हें? राजेश अवस्थी ने कहा इनसे तो घर के मक्खी मच्छर भी नहीं डरते। जहाँ सुंदर लड़कियाँ होती हैं वहाँ वारदात की गुंजाइश बनी रहती है। मैं हूँ न इनका बॉडीगार्ड। राजेश ने कोने की मेज चुनते हुए कहा। बॉडी तो हो। गार्ड हो ना हो। प्रत्यूष ने कहकर ठहाका लगाया। हम सब हंसने लगे। इस हँसी ने हमारे ऊपर से दफ्तर की मनहूसियत धोकर हमें निर्मल बना दिया। हम चमकने लगे थे। हाथ में थामे क्रिस्टल ग्लासों की तरह। इस वक्त प्रत्यूष अपनी भराई आवाज में तीसरी बार कह रहा था। राजेश जल्दी ड्रिंक खत्म करो।

'तुम ने शादी क्यों नहीं की अब तक'?

इस सवाल तक आने में लोग ज्यादा देर नहीं लगाते। ज्यादा से ज्यादा दूसरी या तीसरी मुलाकात।

मैं भी जवाब देते देते पारंगत हो गया हूँ।

मेरा जवाब प्रश्नकर्ता और श्रोता पर निर्भर करता है।

क्या बताऊं जितनी अच्छी लड़कियां थी, उनकी पहले ही शादी हो चुकी थी। बाकी लड़कियों को बेहतर लड़कों की तलाश थी।

खिल खिल खिल खिल हंसी का झरना बह निकला।

सुनीता अवस्थी अपनी भूरी आंखों और सुनहरे बालों के संग हँसती जा रही थी। उसकी खुशी पर निसार राजेश अवस्थी ने अपना विस्की का ग्लास उसकी तरफ सरका कर इसरार किया, एक सिप लो डार्लिंग। तब इस पक्के बैचलर की बातों में और भी मजा आएगा।

सुनीता अवस्थी ने पतली, कलात्मक उंगलियों से ग्लास हटाया, कुछ इस अदा से कि उसके सुनहरे बालों ने उसका आधा चेहरा ढक लिया 'नई राजे, यू नो आय कान्ट।'

ओफ क्या नजारा था। कभी आधा सूर्यस्त देखा ना था।

आज रात नौ बजे यह भी घटित होना था।

किसी का खुलेआम प्रेम प्रदर्शन दिख जाए तो अपना अकेलापन चिकोटी काटने लगता है- अहमक के अहमक! रह गए न तुम। चालीस वर्षों में एक भी ऐसा रिश्ता नहीं बना पाए जो तुम्हें सीरियसली ले। जितनी लड़कियां तुम्हें मिली सब एक-एक करके चलती बनी। तुम सिर्फ उनकी शादी में अपने फैब कुरते पहनकर तोहफे का पैकेट थामे खड़े देखते रहे। कारवां गुजर गया, गुबार देखते रहे।

इस वक्त यह भी अफसोस हुआ कि मैं हिंदी डेली का संवाददाता ही क्यों हुआ। होता मैं अमिताभ बच्चन तो जुल्फों के गिरते ही कह देता 'लॉक किया जाए'।

सुनीता अवस्थी के भरे-भरे होठ कत्थई लिपस्टिक से और भी भरे लग रहे थे। वह उन बेहद गोरी महिलाओं में से थी जिनके बारे में गुलजार ने लिखा है कि लगता था इनके कपड़ों के अंदर कहीं टड्बलाइट जल रही है। इसके आगे हॉल में बैठी अन्य सभी स्त्रियां मामूली लग रही थी। यह तय करना मुश्किल था कि खुद उसे अपने जादू का एहसास था या नहीं।

सुनीता की नजर एकदम स्थिर थी। उसकी निगाहें ज्यादा समय राजेश पर टिकी थी जहाजी कम्पास की तरह वे आ दिशा में घूम कर वापस अपने नींबू पानी पर टिक जाती। वैसे अब तक वह तो एक बार मुझसे मुखातिब हो चुकी थी। पर वे नजर के छोटे-छोटे सफर थे, हड़बड़ी में किए और समेटे गये। जब प्रत्यूष ने मेरा उससे परिचय करवाया, सुनीता ने कहा-बाप रे मुझे तो पत्रकारों से बड़ा डर लगता है। उनसे कैसा खतरा। न आप पॉलिटिक्स करती हैं, ना व्यापार। उल्टे डरना तो हमें चाहिए आप से। उसने कहा-इनसे क्या खतरा हो गया तुम्हें। राजेश अवस्थी ने कहा-इनसे तो घर के मक्खी मच्छर भी नहीं डरते। जहाँ सुंदर लड़कियाँ होती हैं वहाँ वारदात की गुंजाइश बनी रहती है। मैं हूँ न इनका बॉडीगार्ड! राजेश ने कोने की मेज चुनते हुए कहा बॉडी तो हो। गार्ड हो ना हो। प्रत्यूष ने कहकर ठहाका लगाया। हम सब हंसने लगे। इस हँसी ने हमारे ऊपर से दफ्तर की मनहूसियत धोकर हमें निर्मल बना दिया। हम चमकने लगे थे। हाथ में थामे क्रिस्टल ग्लासों की तरह। इस वक्त प्रत्यूष अपनी भर्राई आवाज में तीसरी बार कह रहा था-राजेश जल्दी ड्रिंक खत्म करो। बहुत भूख लग रही है। हालाँकि यह हमारा पहला पेग था। मैंने थोड़ी चिढ़ से प्रत्यूष की तरफ देखा। इसे क्या पता इतने खूबसूरत माहौल में हिंदी के खबर नवीस को दारू कब कब नसीब होती है। दो पेग के बाद तो अपनी जमीन तैयार होती थी। सुनीता अवस्थी बार-बार सलाद की प्लेट उसके सामने रखती जिसे वह हर बार वापस खिसका देता। जब मुझे भूख लगी हो, सलाद मुझे जहर लगता है। यह क्या कि पेट तो मांगे मुर्गा और हम बकरी की तरह गाजर मूली चबाएँ। भूख की बार-बार घोषणा करना प्रत्यूष का तकिया कलाम है। मुझे वह जब भी मिला है, वह खाने जा रहा होता है या खाकर आ रहा होता है। उसका मुँह चलता रहता है। कभी पान मसाला तो कभी पान। और कुछ नहीं तो चूरन चूस रहा होता है। उसकी यह भर्राई आवाज पान मसाले की देन है। हर घंटे पर वह पान मसाले का नया पाउच खोलकर मुँह में ऐसे उड़ेलता है जैसे इंजन में

इंधन पहुँचा रहा हो। उसने आईनॉक्स जैसे सिनेमा हॉलों में फिल्म देखनी बंद कर दी है, क्योंकि वहाँ पान मसाला खाना या ले जाना मना है। कई साल पहले मैंने यह धारणा बनाई थी कि जीवन से हताश लोग ही पान मसाले की शरण में जाते हैं। कहीं मैंने पढ़ा भी था कि हरदम खाना हताशा की निशानी है पर प्रत्यूष में हताशा के चिन्ह नजर नहीं आते थे। उसके गदबदे शरीर को देखकर कोई भी बता सकता था कि यह भोजनभट है। सोलहवें साल में ही वह द्विवेदी होने की दुविधाओं को पार कर भोजन-तालिका की सामिष-सूची तक पहुंच गया। वह बीहड़ से बीहड़ व्यंजन में दांत गड़ा कर हमें विस्मित और चकित होने के लिए छोड़ देता। केकेड़े और लॉबस्टर के अलावा शार्क के पकोड़े उसने जहाजी सफर में खा रखे थे। लेकिन लाख कोशिश के बाद भी वह अपनी पत्नी को सामिष व्यंजन खिलाने में कभी कामयाब नहीं हुआ। एक बार उसने कृत्तिका को धोखा देने की गरज से कबाब को कटलेट कहकर चखाना चाहा पर कृति मुँह के साथ-साथ नाक पकड़ कर, गुसलखाने की तरफ ऐसे भागी की प्रत्यूष की फिर हिम्मत ही नहीं हुई। आश्चर्य की बात यह कि जब उसने दोस्तों के बीच या बात बताई तो पता चला बहुतों के अनुभव इसी तरह के थे। राजेश अवस्थी इस वक्त कह रहा था, मेरी भी कोशिश है सुनीता शाकाहार छोड़ दें तो कम से कम तसल्ली का खाना तो मिलने लगे। प्रत्यूष ने आंखों में शरारत भर कर कहा, आज ही शुरू किया जाए। आप फिश फ्राय ट्राइ कीजिए। 'शो, ना' सुनीता ने उल्टी हथेली से होठ ऐसे ढँक लिये जैसे अगर ना ढके तो मछली उसके मुंह में चली जाएगी। शाम के खाने की मैन्यू तय करने में प्रत्यूष की दिलेर भूमिका रही। बात तंदूरी व्यंजनो से बोनलैस व्यंजनो तक पहुँची तो महज इसलिए कि सुनीता को प्लेट में बची हुई हड्डियाँ देखना गवारा नहीं। यह नागवारी वह घर से लेकर आई है। दिल्ली में जब कभी वह अपने माता पिता और बहनों के साथ काके दा होटल में खाना खाने गई उसने ऊपरी मंजिल पर टेबिल खाली होने का इंतजार करते हुए देखा कि खाकर उठ जाने वाले की टेबल का नजारा ऐसा होता जैसे जंगल का राजा शिकार करने के बाद उठकर गया हो। हर प्लेट में हड्डियों का अंबार होता। छोटी बहन बॉबी ने तो इस जगह का नाम ही दे डाला था हाड़महल। एक बार एक अकेले ग्राहक ने दो तंदूरी मुर्गे खाकर बची हुई हड्यिों को एक के ऊपर एक ऐसे चिन दिया कि लगने लगा जैसे प्लेट में अनगिनत मुर्गी की हड्डियां पड़ी है। तब से सुनीता को काके दा होटल जाने से डर लगने लगा। उसने डैडी से कहा, 'ऐसी जालिम जगह ना जाया करें।' सुनीता के डैडी मस्त मौला इंसान थे। उन्होंने कहा, 'जगह जालिम नहीं होती, जमाना जालिम होता है। जिस बात से एक को खुशी हो दूसरे को दर्द होता है। नहीं जाऊंगा तो चोरी छिपे खाऊंगा। तब मुझे खाना और स्वाद लगेगा। चोरी के माल की लज्जत कुछ ज्यादा होती है।' सुनीता की माँ डर गई 'तूसी खाओ जी जो खाना है, मैं कब इनकार करती हूँ। बस अपनी लाडो से बचाकर खाओ जी। इसे अभी घिन लगती है। शादी के बाद से सुनीता के जीवन में अनुभवों की रील एकदम गड्ड-मड्ड चल रही थी। पति उसे अनुरागी मिला था। दफ्तर के तनाव वह कभी घर पर न लाता। लेकिन काम के सिलसिले में उसे बहुधा दौरे पर जाना पड़ता। उन दिनों उसे पत्नी की बेहद फिक्र रहती। राजेश दिन में सात-आठ बार फोन करता और उतनी ही बार एसएमएस। तुम बोर तो नहीं हो रही हो? नई सीडी

मंगाकर फिल्म देख लो। तुम्हारी किटी पार्टी कितने बजे है? मैं ड्राइवर को कह दूँ। मुंबई से तुम्हारे लिए क्या लाऊँ? सुनीता हर बार जवाब देती। नहीं राजे, मैं एकदम ठीक हूँ। फिक्र मत करो। राजेश मन मसोस कर रह जाता। वह सोचता कहाँ हुआ है अभी टेक्नोलॉजी का विकास। बात करते हुए वह अपनी पत्नी का चेहरा देखना चाहता है। पर ऐसा कहाँ होता है। हाँ सर्किट हाउस के सामने वाले मैदान में चर रही गायों का फोटो मैं लेना चाहूँ तो लेलूँ। उसकी गैर हाजिरी में ही सुनीता को लेखन का शौक लगा था। पढ़ने का चस्का तो पहले से। हर कहानी पढ़ने पर सोचती ऐसी कहानी तो मैं मिनटों में लिख दूँ। इसमें है ही क्या? बस रोजमर्रा की बातें हैं। उसने लिखने की कोशिश की तो पाया कि मिंटू के काम में घंटों लग गए। पर कहानी का ओर छोर ही न मिला। उसे लगा इतना आसान नहीं यह काम। उसने पति से कहा राजे! मेरे लिए कोई उस्ताद रख दो। राजेश ने हंसते-हंसते पूछा? क्यों संगीत सीखोगी या कुश्ती। जब असली जरूरत पता चली तो आला अफसर पति का बड़ा मनोरंजन हुआ। उसने कहा शायरी में तो हमने उस्ताद शागिर्द के किस्से सुने हैं। कहानी के महकमें में तो यह नहीं चलता। सुनीता बोली सारा दिन मैं बोर हो जाती हूँ। जितनी मेरी

जिसने बड़ी समझदारी से पति के वेतन और महंगाई के बीच संतुलन बैठा लिया। जब-जब राजेश को घर की तरफ देखने की जरा भी फुर्सत नहीं मिलती वह याह देखकर प्रसक होता कि अन्य अधिकारियों की पत्नियाँ की तरह सुनीता हरदम शिकायतनामा लेकर बैठने की बजाय कोरे कागज और कलम लेकर बैठती है। बड़े मनोयोग से व रचना प्रारंभ करती है। अगर प्रत्यूष गुरुजी कहानी वापस कर दे तो वह पूरी रचना फिर से लिखती है। पहले पहल जब उसने प्रत्यूष से सुनीता की सनक बतलाई उसने कहा यह आजकल अफसरों की विबियों में क्या चोचला चला है, लेखिका बनने का। क्या तुम्हारी और भी शिष्याएं हैं? है तो नहीं पर मैं देख रहा हूँ। पहले लड़कियाँ संगीत सीखती थी, पेंटिंग करती थी, आजकल कलम के पीछे लठ लेकर पड़ गई है। लेकिन सुनीता में प्रतिभा है।

सहेलियाँ हैं सब कुछ ना कुछ करती हैं। सुषमा और तरन्नुम की कहानियाँ छपी भी है। तो उन्हीं को बना लो उस्ताद। आप बात टालिए मत। वे इतनी बड़ी लेखिका भी नहीं हुई है। ऐसे में राजेश को याद आया था प्रत्यूष द्विवेदी जो कॉलेज के जमाने में उसका साथी था। वह कोई स्थापित लेखक तो नहीं बन पाया था लेकिन उसने जीवन के कई वर्ष साहित्य सेवा में बिता दिये, कुछ इस तरह के तमाम अच्छी नौकरियां के लिए वह ओवरएज हो गया अपनी कहानियों का एक संग्रह उसने अपने खर्च से छपवाया था 'खंडित स्वप्न' जो वह अभी भी दोस्तों मे बाँटता रहता था। प्रत्यूष के तेवर एक साहित्यकार के थे। दरअसल जो जितने किस्से सुना सके वो उतनी अच्छी कहानी लिख सकता है। राजेश ने सोचा उसे याद था एक बार बीए द्वितीय वर्ष में उसकी पूरी कक्षा के नंबर खराब आए

थे। उस साल बेटे को पढ़ाई में प्रोत्साहित करने के खयाल से राजेश के पिता ने वादा किया था कि अगर वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ तो वे उसे कार खरीद देंगे। अपना परीक्षाफल देखकर राजेश ने मुँह लटका कर कहा, घर जाकर किस मुँह से दिखाएं रिजल्ट। अपना तो फोर व्हीलर आते-आते रह गया। प्रत्यूष ने अपनी परीक्षा फल देख कर कहा अपना तो थ्री व्हीलर आते-आते बचा। पापा ने कहा था, बेटा अगर सेकंड इयर में सेकंड डिविजन भी ना लाए तो कसम से तुमसे इसी शहर ऑटो चलवाउँगा। उस कठिन समय में भी सब हँस पड़े थे। प्रत्युष की बातों से सबका मन बहलता था। कुछ वर्ष प्रतियोगी परीक्षाओं में गँवा कर प्रत्यूष एजी ऑफिस में स्थाई नौकरी पा गया। लेकिन सबको पता था कि उसका मन दफ्तर में नहीं कॉफी हाउस में लगता था। ना प्रत्यूष नौकरी को गंभीरता से लेता था, ना नौकरी प्रत्युष को। उसके जीवन में नौकरी की सिर्फ इतनी भूमिका रही कि उसकी शादी अच्छे घर की एक अच्छी सी लड़की से हो गई। जिसने बड़ी समझदारी से पति के वेतन और महंगाई के बीच संतुलन बैठा लिया। अब-जब राजेश को घर की तरफ देखने की जरा भी फुर्सत नहीं मिलती वह यह देखकर प्रसन्न होता कि अन्य अधिकारियों की पत्नियाँ की तरह सुनीता हरदम शिकायतनामा लेकर बैठने की बजाय कोरे कागज और कलम लेकर बैठती है। बड़े मनोयोग से वह रचना प्रारंभ करती है। अगर प्रत्यूष गुरुजी कहानी वापस कर दे तो वह पूरी रचना फिर से लिखती है। पहले पहल जब उसने प्रत्यूष से सुनीता की सनक बतलाई उसने कहा यह आजकल अफसरों की वीबियों में क्या चोचला चला है, लेखिका बनने का। क्या तुम्हारी और भी शिष्याएं हैं? है तो नहीं पर मैं देख रहा हूँ। पहले लड़कियाँ संगीत सीखती थी, पेंटिंग करती थी, आजकल कलम के पीछे लठ्ठ लेकर पड़ गई है। लेकिन सुनीता में प्रतिभा है। मौलिकता भी है तुम एक दो बार मिलकर तय कर लो। तुम्हें सिखाना है या नहीं? पहली मुलाकात में ही प्रत्यूष उत्साह में आ गया। उसने तभी घोषणा कर दी। देखना राजेश मैं सुनीता जी को फर्स्ट क्लास कहानी लिखना सिखा दूँगा। महीने भर में इनकी रचनाएँ छपने लगेंगी। आजकल महिला लेखकों की बड़ी माँग है। सुनीता इतनी प्रसन्न हो गई कि उसने राजेश को अपने से सटालिया। राजेश बोला, अबे यह कार चलाना नहीं सिखाना है। साहित्य सिखाना है। महीने भर में कैसे आ जाएगा। हम तो चावल के एक दाने से दावत परख लेते हैं प्रत्यूष ने कहा। पर मेरी भी शर्त है, राजेश और सुनीता के चेहरों पर लिख गया ''क्या?'' यह काम मुझे अपनी तरह करने देना। तुम बीच में अपनी अफ़सरी मत लगाना। ना कोई फीस देने की कोशिश करना ना रिश्वत। रिश्वत तो राजे खुद नहीं लेते। आप को क्या देंगे। रही बात फीस की। गुरु दक्षिणा तो देनी ही होगी, सुनीता ने हँसते हुए कहा। फिर मैं नहीं आऊँगा। प्रत्यूष उखड़ने लगा। अरे हमारे गुरु दक्षिणा में बस एक कप कॉफी या एक पैग दारू रहती है। राजेश ने बात समाप्त की। अपनी व्यस्तता के बीच पत्नी का ध्यान आने पर कभी राजेश पत्नी से पूछता कैसी चल रही है तुम्हारी कहानी ट्रेनिंग? सुनीता मगन मन सिर हिला देती। बहुत अच्छी। उसके चेहरे से जड़ता की परत धीरे-धीरे हट रही थी। वह चीजों को बड़े ध्यान से देखती। समाचार बड़े ध्यान से सुनती। पत्र-पत्रिकाओं को बड़े ध्यान से पढ़ती। अब वह सिर दर्द और जुकाम की भी उतनी मरीज नहीं रही जितनी पहले थी। अखबारों के पृष्ठ वह दो-दो बार पड़ जाती। उसके बिस्तर पर दो एक

मोटे उपन्यास हरदम आधे खुले पड़े मिलते। उसका कथा गुरु सप्ताह में एक दिन आता। सुनीता ससंकोच अपने लिखे पृष्ठ उसे दिखाती। कभी प्रत्यूष वहीं पढ़ कर संशोधन सुझाता, कभी उसके पास अवकाश ना होता। तब वह उसकी पांडुलिपि अपने साथ ले जाता। इस बात से भी सुनीता अह्लादित थी कि प्रत्यूष उसे दो तीन गोष्ठियों में अपने साथ ले गया था। वहाँ उसने सुनीता अवस्थी का परिचय नवोदित लेखिका के रूप में करवाया। आज हेस्टी टेस्टी बार एंड रेस्तरां में जश्न इसी सिलसिले में था। रांची से निकलने वाले अखबार प्रभात संदेश में सुनीता अवस्थी की कहानी 'कीमत' तीन दिन पूर्व प्रकाशित हुई थी। मैं अपनी भूमिका समझ रहा था। प्रत्यूष ने पहले ही बता दिया था। अवस्थी तुम्हें प्रेस नोट और सुनीता जी की तस्वीर अपनी फाइल में से निकाल कर दें, तो नहीं नहीं कहने की बेवकूफी मत करना बल्कि लोकल पेज पर छाप देना यार। हेस्टी टेस्टी में स्कॉच और मुर्गे के बदले बुरा नहीं है सौदा। मैंने न ना की थी ना हाँ। मैं वहाँ पहुंच जरूर गया था। अच्छी दारू की खातिर जहन्नुम में भी जा सकता हूँ। फिर राजेश मेरा परिचित था। मुझे वह भलामानस लगता था। वह और सुनीता मिल कर सुखी दांपत्य की तस्वीर बनाते। मैं जब-जब उन्हें देखता तब तब मेरा इरादा शादी की दिशा में मुड़ने लगता। काफी गपशप, जुमलेबाजी, बधाई और मुबारकों के बीच शाम का अंत हुआ। गुड नाइट, नमस्कार, फिर मिलेंगे के बीच हमने विदा ली। राजेश सुनीता अपनी कार में रवाना हो गए। प्रत्यूष ने स्कूटर के किक मारी और मुझसे कहा चलो तुम्हें छोड़ दूँ। तुम जाओ, मेरा ऑफिस नजदीक ही है, टहलता हुआ जाऊँगा। मैंने कहा और सिगरेट सुलगाने की तैयारी में लग गया। तभी मुझे लगा कि मैं कुछ कागज वहीं गिरा आया हूँ। जेब में सुनीता जी का फोटो परिचय और प्रेसनोट नहीं था। मैं वापस हेस्टी-टेस्टी में घुसा। अंधेरे के बीच अपनी मेंज पहचानने में थोड़ी सी दिक्कत आई। वेटर ने मुझे पहले पहचाना। बोलिये? उसने कहा। मेरे कुछ कागज यहाँ गिरे होंगे? केसे कागज साब। एक फोटो और दो और कागज। वेटर ने अपनी जेब से कागज निकाले और छोटा सा फोटो वाला लिफाफा। यहां कोई चीज खोता नहीं है साब। आप नहीं आते तो हम यह कागज माया मेमसाब को दे देते। कौन मेमसाहब? वही जो आपके साथ बैठी थी। वह दर हफ्ता आती यहां। बाकी यहां का बिल पन वही देती। तुम किसी और की बात कर रहे हो? नहीं साब बिल्कुल यही इन्हीं की बात बोलता मैं। वह मोटे वाले साब के संग आती। दोनो बैठ कर दारु के दो पेग लेते। कभी ऊपर कमरे में भी जाते साब। कभी इधर ही बैठकर कुछ लिखते। मेरा सिर घूमने लगा। मेरे मुंह से निकला होगा, ओ नो। 'गुड नाइट' सर वेटर ने कहा वह बख्शीश की आशा खो चुका था। मैं पैरों में वजन बांध कर वहां से लौटने लगा। मुझे लगा चीजों के बीच कार्यकारण संबंध समाप्त होता जा रहा है। मेरा सुरुर उतर रहा था।

ममता कालिया, B3A/303, Sushant Aqua Polis, Opp. Crossing Republic,
Ghaziabad-201009, Mob. : 9212741322

परिचय

21 अक्टूबर, 1938 में कुशीनगर के गाँव शाहपुर कुरमौट में जन्म। गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग से विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृति। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा एमेरटिस फेलोशिप। यूरोप के कई देशों के विश्वविद्यालयों में आमंत्रित व्याख्याता के रूप में व्याख्यान।

प्रकाशित साहित्य–उपन्यासः 'ग्रामदेवता', संकल्पा' (चौखट से बाहर' नाम से पुनः प्रकाशित), 'विकल्प' 'मनदर्पन', 'अगला कदम' (हिन्दी प्रचारक संस्थान से उपन्यासों के संग्रह 'दस दिगन्त' में 'आगामी' नाम से प्रकाशित), गिद्धलोक, भोजपुरी उपन्यास 'ग्रामदेवता' (मारीशस में लोकार्पित), 'बेघर बादशाह', 'अपराजिता' और 'अनाम छात्रा की डायरी'।

कहानी संग्रहः 'उजली हँसी की वापसी', 'पतिव्रता', तीन लम्बी कहानियाँ, 'माटीबाबा की कहानी, 'नीलामघर', 'अपहरण', 'सुग्गी'। भोजपुरी उपन्यास 'ग्रामदेवता' पर दूरदर्शन द्वारा फिल्म (1996) निर्माण।

प्रकाशन–हिन्दी की प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित शतधिक कहानियाँ, 'ग्रामदेवता', 'माटी बाबा', कितना कितना खून आदि के अनुवाद, बँगला, उड़िया और अँग्रेजी में प्रकाशित।

तेजस्विनी

रामदेव शुक्ल

जिसको किसी से कुछ भी नहीं चाहिए वही तो शाहों का शाह है, राजाओं का राजा। वरना राजे बेचारे तो सबसे सब कुछ चाहते हैं। प्रजा से धन चाहते हैं, विद्वानों से मान चाहते हैं, सुंदरियों से प्रेम चाहते हैं, दास दासियों से सेवा चाहते हैं। उन्हें सब कुछ मिलता भी है।

शास्त्री जी खुशी से उछल पड़े। उन्हें इस एक क्षण में नरक की आग से मुक्ति मिल गयी थी। वे चीख पड़ने को हुए कि बेटी का नाम एक बार फिर बदल देंगे।

लेकिन ठहरिए। जब तक आपको यह जानकारी न हो जाय कि शास्त्री जी अपनी बेटी का नाम पहले कितनी बार बदल चुके हैं और नाम बदलने के पीछे कारण कौन से रहे हैं, तब तक इस चमत्कारी क्षण का मर्म आप कैसे समझ पायेंगे और इस चमत्कारी क्षण का मर्म न समझने पर शास्त्री जी के उल्लास को कैसे समझ पायेंगे। कैसे समझ पायेंगे कि सदा सबका भला चाहने और करने वाले शास्त्री जी कैसे नरक की आग में झोंक दिए गए थे और कैसे उनकी बच्ची ने एकही क्षण में उन्हें उस

नरक से निकालकर स्वर्ग के शिखर पर खड़ा कर दिया था।

इसलिए आपको सारी बात खोल कर बताना जरूरी है। शास्त्री जी कोई कथा बाँचने वाले या शास्त्र की कमाई खाने वाले शास्त्री नहीं हैं। आजादी की लड़ाई के लिए बेचैन तरूणाई में शास्त्री जी ने महात्मा गान्धी की ललकार पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़ दी। कुछ दिन तक थाना पुलिस के साथ लुकाछिपी खेलने के बाद काशी विद्यापीठ में नाम लिखाकर उन्होंने शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद स्वाधीनता को व्रत की तरह धारण करके अपने जीवन को ही एक यज्ञ बना लिया शास्त्री जी ने। गान्धी जी की एक एक बात को मंत्र की तरह पकड़ते शास्त्री जी। स्वाधीनता केवल अँग्रेंजो की राजनीतिक गुलामी से छूट जाना नहीं है। असली स्वाधीनता वह है जिसके मिल जाने के बाद आदमी कभी किसी चीज के लिए किसी पर निर्भर नहीं होता। गान्धी की इस बात का पूरा अर्थ शास्त्री जी को कबीर दास की एक बानी से मिला।

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवां बेपरवाह।

जाको कछू न चाहिए, सो ही शाहन को शाह।।

जिसको किसी से कुछ भी नहीं चाहिए वही तो शाहों का शाह है, राजाओं का राजा। वरना राजे बेचारे तो सबसे सब कुछ चाहते हैं। प्रजा से धन चाहते हैं, विद्वानों से मान चाहते हैं, सुंदरियों से प्रेम चाहते हैं, दास दासियों से सेवा चाहते हैं। उन्हें सब कुछ मिलता भी है। मगर बेचारे अपनी इच्छाओं के ऐसे गुलाम होते हैं कि एक इच्छा पूरी हुई नहीं कि उसकी राख से हजारों इच्छाएँ फुफकारती हुई उठ खड़ी होती हैं। कहने को राजा। असल में इच्छाओं के गुलाम।

शास्त्री जी को गान्धी शाहों के शाह लगते। हिन्दुस्तान की जनता को औसत एक व्यक्ति साल में पाँच गज कपड़ा मिलता है। हिसाब लगाकर गान्धी ने देखा और अपनी पाँच गज की धोती उन्होंने दो हिस्सों में फाड़ दी। हिसाब लगाया कि औसत हिन्दुस्तानी को ढाई या तीन पैसे रोज में गुजारा करना पड़ता है। निश्चय कर लिया कि बाजरा, मूँगफली, खजूर उतने में ही जितना मिल जायेगा, भूनकर कूट कर खा लेंगे। परम स्वाधीन सिर्फ गान्धी लगे थे शास्त्री जी को।

आजाद हिन्दुस्तान के आजाद नागरिक शास्त्री गाँव लौटे। पिता जीवित थे। माँ दिवंगत हो गयी थीं। बड़े भाई सरकारी कर्मचारी थे। शहर में बस गये थे। शास्त्री जी ने पिता से कहा, मैं कहीं नहीं जाऊँगा। कोई नौकरी नहीं करूँगा। आपके पास रहूँगा। खेती करूँगा। आपकी सेवा करूँगा। जो समय बचेगा उसमें गाँव जवार के लोगों को सिखाऊँगा कि आई हुई आजादी चली न जाए, इसके लिए उन्हें क्या कुछ करना चाहिए।

शास्त्री जी ने जीवन भर यही किया। लोगों को समझाते, आजाद देश के नागरिक के पास सबसे बड़ी दौलत क्या होती है जानते हो? कोई कुछ बताता, कोई कुछ। शास्त्री जी कहते-वह दौलत है वोट देने का अधिकार। सोचकर देखो, राजा हो या भिखारी वोट की ताकत ही उसे बराबर बनाती है। उसी दौलत को कुछ रूपए, कम्बल या शराब के बदले बेचकर कितना बड़ा गुनाह करते हेा, सोचो? वोट की कीमत नहीं लगाई जा सकती।

जब तक पिता जीवित थे, शास्त्री जी ने विवाह के लिए हामी नहीं भरी। पिता कहते, मुझे पोते पोतियों का सुख नहीं मिला। बड़ा शहरी हो गया। तुम मेरे पास रहकर भी मेरी साध पूरी नहीं

कर रहे। शास्त्री जी कहते-आपकी जितनी सेवा मैं कर रहा हूँ, उतनी कोई बहू करेगी? उसकी अपनी हजार फरमाइशें होंगी, शौक सिंगार की अगणित इच्छाएँ होगी, उसके बाल बच्चों की इच्छाएँ होंगी। मैं उनमें खो जाऊँगा। आप अन्य वृद्धों की तरह एक एक बात के लिए तरसते रहें, यह मैं नहीं चाहता। इसीलिए शादी ब्याह के चक्कर में मैं नहीं पडूँगा। अनेक बूढ़े लोगों की बेटे बहुओं द्वारा की जा रही दुर्दशा के उदाहरण सामने रखते हुए शास्त्री जी ने अपने पिता को समझा दिया कि उनका और उनके बेटे का भला इसी में है कि वे अपनी जिद छोड़ दें।

पुत्र के हाथों बुढ़ापे के सुख भोगते हुए शास्त्री जी के पिता दिवंगत हो गये। उनको मजूर किसानों को पढ़ाने लिखाने, बीमारों की सेवा करने और आने जाने का समय भी मिलने लगा। खाना बनाकर खाने की मजबूरी भी शास्त्री जो को नहीं रह गयी। गाँव में लोग खाने के लिए बुलाते। जहाँ जाते, वहाँ खाना दाना मिलता है। धीरे-धीरे खाना बनाने की आदत छूटती गयी। कई बार ऐसा होता कि कोई खाने के लिए नहीं बुलता तो घर में जो कुछ होता, चबाकर पानी पीकर सो जाते। विवाह करने और गृहस्थी बसाने का ख्याल भी अब शास्त्रीजी को नहीं आता।

ख्याल से भले निकल गया हो ब्याह, शास्त्रीजी के सिर पर वह सीधे आ धमका। हुआ यह कि शास्त्री जी ने एक पुराने मित्र की बहन की जिन्दगी का सवाल सामने आ पड़ा। मित्र ने आठ दस लाख रूपए खर्च करके अपनी इकलौती बहन का विवाह एक सम्पन्न परिवार में किया। लड़का डाक्टर था। पिता अध्यापक। नकल कराने का धंधा करके लाखों रूपये साल कमाने वाले मास्टर ने बेटे को रूपये लेकर एडमिशन देने वाले मेडिकल कालेज में भर्ती करा दिया। डाक्टर बनकर लौटने पर बेटे के दहेज का मोलभाव होने लगा। शास्त्रीजी के मित्र उस बैलबाजार में सबसे ऊँची बोली लगाने वाले निकले। उनकी बहन के लिए वह डाक्टर खरीदा जा सका। शादी हुई। बहुत धूम धाम से हुई, मगर सुहागरात को ही वज्रपात हो गया। डाक्टर पहले तो अपनी नामर्दी छिपाता रहा। आखिर में दहेज की सारी सामग्री के साथ लड़की अपने घर लौट आई। शास्त्री को अपने मित्र की बीमारी का सामाचार मिला। भागे मित्र के गाँव की ओर। वहाँ जाकर सारा हाल देखा सुना। सुंदर सुशील युवती। वह बारबार भाई को समझा रही थी कि आप चिन्ता छोड़े। अपना इलाज कराएँ। मैं थोड़ी पढ़ी लिखी हूँ ही। हाईस्कूल पास करके कोई काम सीख लूँगी। जिन्दगी कट जाएगी। आप स्वस्थ होकर अपने बाल बच्चों का पालन पोषण कीजिए। शास्त्री भी अपने मित्र को समझाने लगे। उन्होंने अगले दिन मेडिकल कालेज चलने का प्रस्ताव किया। शास्त्री जी के मित्र ने अचानक शास्त्री जी के दोनों हाथ पकड़ लिए। आँखों में आसू भर उन्होंने कहा, मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं कहा। तुम्हारी हर बात मानता हूँ। आगे भी मानूँगा। सिर्फ एक बात मेरी तुम मान लो। शास्त्री ने आकुल कंठ से कहा: बोलो तो। तुम्हारी कोई बात मेरे लिए अमान्य नहीं। जल्दी बोलो। उस जर्जर देह में न जाने कहाँ से ताकत आ गयी। मित्र बिस्तर पर उठकर बैठ गये। शास्त्री के हाथ उनके हाथों में ही थी। बोले, 'मेरी बहन से विवाह कर लो'। शास्त्री को करेंट जैसा झटका लगा। परंतु पल भर में उन्होंने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। बोले, ठीक है। कर लूँगा।

एक बार अपनी बहन से तो पूछ लो। मित्र पर तो जैसे जनून सवार था। बहन का नाम लेकर पुकारा, वह आई। मित्र ने उसका दहिना हाथ खीचकर शास्त्री जी के हाथ पर रख दिया। बहन से बोले, तुम्हें कोई एतराज तो नहीं बहन। शास्त्री को बचपन से जानती हो। इनके साथ तुम सुखी रहोगी। तुम्हें सुखी देखकर मैं जी जाऊँगा।

विवाह के समय शास्त्री जी ने पत्नी से कहा, एक बात मानोगी तो हम दोनों का भला होगा। हम दोनों एक संतान से अधिक के माता पिता नहीं बनेंगे। वह संतान बेटा हो या बेटी। धूर्त पाखंडियों ने किसी पुयोद के नरक की कल्पना कर डाली है, जिसमें पड़े हुए नारकीय जीव का उद्धार केवल पुत्र कर सकता है। पुत्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार करने वाले अंधविश्वासी पुत्र पाकर अपने को धन्य मान लेते हैं। जो पुत्रवान हैं, उनमें से अधिकांश का हाल यह होता है कि बेटा उनके जीवन को ही रौरव नरक बना देता है। मरने के बाद वह क्या करेगा, यह तो बाद में सामने आयेगा। इसीलिए मेरी राय है कि तुम्हें पहली संतान से ही संतोष करना होगा, वह बेटा हो या बेटी।

जवाब मिला-'मुझे हर उस बात में खुशी होगी, जो आपको खुशी देगी।' प्रमुदित होते हुए शास्त्री जी ने कहा, हमारे गाँव का एक बाभन प्राइमरी स्कूल में मास्टर है। एक दिन सूर्यास्त के समय गाँव के लोगों ने उसको बरम बाबा के थान पर दहाड़ मारकर रोते सुना। सारा गाँव जुट आया। लोगों ने उसे चुप कराया और पूछा बात क्या है? क्यों इस तरह जान दे रहे हो? मास्टर ने जवाब दिया- 'बरम बाबा के थान पर सिर पटक कर जान दे दूँगा।' लोगों ने पूछा, 'क्या किया है बरम बाबा ने?' उसने कहा, 'एक बेटे का मुँह देखेन के लिए ग्यारह बेटियों का बाप बन गया। इस बार बरम बाबा ने सपना दिया था कि बेटा होगा। वे भी झूठे निकल गये। अभी एक घंटा पहले ग्यारहवीं बेटी जनमी है।'

'मास्टर को तो उसकी जहालत के लिए जेल भेज देना चाहिए।' पत्नी की बात सुनकर शास्त्री जी ने अपना भाग्य सराहा।

कुछ समय बाद सुंदर बेटी जनमी। पति पत्नी निहाल हो गये। उसकी चंचलता पर मुग्ध होते हुए शास्त्री जी ने नाम रखा चंचला। पाँच वर्ष की हुई। पढ़ाई लिखाई में उसकी गहरी रूचि देखकर उन्होंने पत्नी से कहा, अब यह उतनी चंचल नहीं रही। विद्या में इसकी अद्‌भुत रूचि है। इसका नाम रखते हैं, विद्या।

विद्या पढ़ने लगी। प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल पास हुई। इस बीच शास्त्री जी उनके स्वभाव में आश्चर्यजनक सरलता और विरक्ति का भाव देख कर चकित होते रहे। हाई स्कूल का रिजल्ट देखकर पिता ने पूछा, बोल बेटी, इनाम में क्या लोगी? विद्या ने कहा, 'जो चाहे दे दीजिए।' बहुत आग्रह करने के बाद उसने कहा, 'पचास रूपए दे दीजिए'। विस्मित पिता ने पचास रूपए दे दिए। विद्या एक सहेली के साथ गयी और एक तौलिया खरीद लाई। देखकर माँ-बाप चौंक गये। पूछा 'यह क्या उठा लाई?' विद्या ने भोलेपन से कहा, 'पिता जी का गमछा तार तार हो गया है'।

शास्त्री जी मुग्ध हो गये। उनके मुँह से औचक निकल गया, 'इसका नाम तो सरला होना चाहिए।'

उसकी माँ ने कहा, 'अब आप रोज नया नाम रखते रहिये, स्कूल में तो पक्का नाम हो गया है विद्या'।

विद्या अपना नाम सार्थक करती गयी। प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ विद्या ने दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया। शास्त्री परिवारी मानो सब कुछ पाकर निहाल हो उठा। शास्त्री जी की तो नहीं किंतु उनकी पत्नी की चिन्ता सक्रिय हो उठी। वे जब तब उसके विवाह की चर्चा करने

लगी। शास्त्री जी कह देते, बेकार दिमाग खराब करती हो विद्या जैसे अनमोल रतन का पारखी स्वयं इसको खोजता हुआ आ पहुँचेगा।' एक दिन अखबार पढ़ते हुए शास्त्री जी खुशी से उछल कर खड़े हो गये। अखबार में छपे हुए वैवाहिक विज्ञापन के चारो ओर स्केचपेन से निशान लगाकर उन्होंने पत्नी के सामने रख दिया। उन्होंने पूछा, 'क्या है?' शास्त्री जी ने कहा, 'पढ़ कर देखो। मैं कहता था न कि विद्या रतन का पारखी इसे खोज लेगा।' पत्नी ने विज्ञापन पढ़ा। कई बार पढ़ा। लिखा था–'स्वस्थ सुंदर युवा प्रथम श्रेणी सरकारी अधिकारी के लिए सुशीला, सुशिक्षिता सम्पूर्ण कुमारी कन्या चाहिए। जाति, धर्म, दहेज की बाधा नहीं। निम्नलिखित पते पर बायोडाटा और फोटो भेजें।' उसके बाद फोन नम्बर और पोस्ट बाक्स नम्बर दिया हुआ था।

श्रीमती शास्त्री बहुत देर तक उस विज्ञापन को पढ़ती रही। जितनी बार पढ़ती उतनी बार उनके मुख पर गम्भीरता की एक पर्त चढ़ती जाती। शास्त्री जी का ध्यान उस ओर गया। उन्होंने लपक कर पूछा, 'क्या बात है? तुम बार बार इसको क्यों पढ़ रही हो? और गम्भीर क्यों हो गयी?'

श्रीमती शास्त्री ने अखबार पति की गोद मे डालकर विज्ञापन के एक शब्द पर उंगली रख दी। शास्त्री जी ने पत्नी को उँगली हटाकर पढ़ा 'सम्पूर्ण कुमारी'। पत्नी ने पूछा, 'इसका मतलब? शास्त्री जी पल भर सोचते रहे। अर्थ समझ लेने वाले संतोष के साथ उन्होंने कहा, 'कई बार बाल विवाह के बाद विधवा हो जाने वाली लड़कियों की असलियत लोग छिपा लेते हैं। वैसी किसी बात से बचने के लिए यह शब्द डाल दिया गया है। श्रीमती शास्त्री बात समझ गयी। गहरी मुस्कान के साथ उन्होंने कहा, 'ठीक कह रहे हैं। जब हमारा विवाह हुआ था तो मैं कुमारी होकर भी सम्पूर्ण कुमारी कहाँ थी? तथा कथित विवाहिता ही तो थी।'

फोटो बॉयोडाटा भेजा गया। उधर से फोन आ गया कि लड़की देखने का समय निश्चित कीजिए। समय निश्चित किया गया। लड़की देखी गयी। पसंद कर ली गयी। विवाह के सारे कार्यक्रम की तिथियाँ पक्की कर ली गयी। वर पक्ष की ओर से बराबर यही कहा जाता रहा–'बारात का स्वागत हमारे स्तर के अनुरूप होना चाहिए। रूपए पैसे की कोई बात नहीं'।

विद्या अपने चुन लिए जाने पर प्रसन्न थी। लड़का रोबदार था। बातचीत में हल्की ऐंठ झलकी। उसे सरकारी अधिकारी और पौरूष के दर्प के रूप में उसने स्वीकार किया। अपने सौन्दर्य, शील एवं सौन्दर्यबोध के बल पर विद्या आश्वस्त थी कि अच्छा जीवन साथी बनने की पूरी सम्भावना है।

शास्त्री जी और श्रीमती शास्त्री ने औकात से बाहर जाकर तैयारी की। निश्चित समय पर बरात आ गयी। सबके काम आने वाले शास्त्री जी के घर पहला उत्सव था। लोग श्रद्धा और उत्साह के साथ जुट गये थे। बरात शानदार थी। उतना ही शानदार स्वागत हुआ। जयमाल का समय हुआ। ठीक जिस वक्त विद्या को जयमाल मंच की ओर चलना था, बरातियों में से एक सजीधजी आधुनिक महिला विद्या के पास पहुँची। मोहक मुस्कान के साथ उन्होनें विद्या की आँखों में देखा। अपनी बाँहों के घेरे में विद्या को लेकर उन्होंने अपना परिचय दिया– 'मैं डॉ० वर्षा हूँ। तुम्हारे होने वाले पति की बहन। दो मिनट के लिए तुम्हें मेरे साथ अपने कमरे में अकेले चलना होगा।' उनके साथ कमरे की ओर लौटती हुई विद्या ने पूछा 'क्या बात है?' 'कुछ खास नहीं। बस जरा सा तुम्हें ठीक से देखना है'। डॉ० वर्षा ने सहजभाव से कहा। विद्या और डॉक्टर वर्षा कमरे में घुसी। डॉक्टर

ने विद्या को आगे करके दरवाजे की ओर बढ़ रही लड़कियों को रोक कर दरवाजा अंदर से बन्द कर लिया। विद्या चौंक गयी। उसके मुँह से निकला- 'साफ-साफ बताइए बात क्या है?' डाक्टर वर्षा ने हँसकर कहा, 'कुछ नहीं। मेरे भाई का एक छोटा सा वहम है। उसकी संतुष्टि के लिए तुम्हारे कौमार्य की परीक्षा करनी है। तुम निश्चिंत रहो।'

विद्या की देह का सारा रक्त जैसे सूख गया। 'कौमार्य परीक्षा' के आगे कोई शब्द वह नहीं सुन सकी। उस क्षण कोई उसकी आँखों में देखता तो यही समझता कि वह निष्प्राण हो चुकी है, किंतु अगले ही क्षण विद्या की आँखों में बिजली लहक उठी। डाक्टर वर्षा ने उसे विस्तर पर लिटाया। उसकी देह का परीक्षण किया। उसे बधाई दी। विद्या को लेकर जयमाल-मंच तक आई। अपने भाई की उत्सुक आँखों को अपनी संतुष्ट निगाह से आश्वस्त किया। विद्या की सहमी हुई सहेलियों की ओर मधुर मुस्कान फेंक कर डाक्टर वर्षा ने कहा, 'चलो भई, दुल्हन के हाथ में जयमाल दो'। अब तक कठपुतली की तरह दिख रही विद्या की आँखों की बिजली उसकी देह में उतर आई। विद्या बिजली की ही गति से आगे बढ़कर शहनाई बजाने वालों के सामने रखा माइक्रोफोन उठा चुकी थी। हल्कें खिंचे घूँघट को उसने पीछे सरकाया और पूरे मंडप में उसकी आवाज गूँज उठी- 'इस विवाह समारोह में उपस्थित सभी लोगों को विद्या का प्रणाम। आप सबको पता है कि जयमाल की रस्म कुछ देर पहले हो गयी होती किंतु मेरे होने वाले पतिदेव को संतुष्ट करने के लिए उनकी बहन डाक्टर वर्षा को जयमाल से पहले मेरे कौमार्य की परीक्षा अनिवार्य लगी।' सन्नाटे की भन्नाहट को विद्या की आवाज ने ही भंग किया 'परीक्षा उन्होंने की। मुझे उन्होंने सम्पूर्ण कुमारी घोषित कर दिया। अब उनके भाई मुझे पत्नी रूप में स्वीकार करने को तैयार हैं। विद्या पल भर रूकी। सन्नाटा खिंचा रहा। चारों ओर निगाह डालकर विद्या ने कहा, 'लेकिन उन्हें पति रूप में स्वीकार करने से पहले मैं भी उनके लिए वही प्रमाण पत्र चाहती हूँ कि उन्होंने अभी तक अपना कौमार्य अक्षत रखा है। प्रमाण-पत्र वे ले आए होंगे'। चुप होकर विद्या मुस्कुराई। सन्नाटे से भरी सभा में धिक्कार की आवाजें वाह वाही की ध्वनियों के साथ गुत्थमगुत्था हो रही थीं।

माइक्रोफोन विद्या के हाथ में था। वरपक्ष के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। कुछ के सिर झुक गये थे। विद्या की आवाज फिर सुनाई पड़ी लगता है होने वाले वर महोदय के पास अपने अक्षत कौमार्य का प्रमाण-पत्र नहीं है। अपना पति होने की योग्यता मैं उनमें नहीं देख रही। लेकिन ....विद्या के 'लेकिन' पर सभा नये सिरे से स्तब्ध हो गयी। उसने कहा, 'लेकिन मेरा विवाह अभी इसी मंडप में होगा। है कोई योग्य युवक, जो मेरा जीवन साथी बनना चाहता है।' विद्या ने माइक्रोफोन रख दिया। अनेक युवक आगे बढ़े.....

शास्त्री जी के उल्लसित कंठ से एक नया नाम निकला 'तेजस्विनी'।

रामदेव शुक्ल, शीतलसुयश, राप्तीचौक, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर–273003 (उ.प्र.)

कबीर की काव्यभाषा

डॉ. संगीता वर्मा

साहित्य समाज के अनेक रूपों से जुड़ा होता है जिस कारण समाज का प्रभाव साहित्य पर अवश्य ही पड़ता है, वही साहित्य के सहारे समाज भी अपनी अस्मिता को पहचान सकता है। साहित्य समाज को हर युग में प्रभावित करता रहा है और हमेशा करता रहेगा। भक्तिकाल की भाषा, सांस्कृतिक चेतना, धर्म एवं अध्यात्म की आस्था से बहुत निकट से जुड़ी हुई थी। भक्तिकाल की विराट सामाजिक चेतना का प्रतिफलन विराट सांस्कृतिक चेतना के रूप में दिखाई देता है। भक्तिकाल का साहित्य संस्कृति के उस शालीन और मानवीय पक्ष को उजागर करता है जो कट्टरपंथी सामाजिक मान्यताओं का डटकर विरोध करते हैं और नए समाज की नींव रखने का भरसक प्रयास करते हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल सामाजिक, धार्मिक सुधार आन्दोलनों को लेकर काफी प्रसिद्ध रहा है। मध्यकाल के सामंतवादी अंधेरे में भक्तिकाव्य ने मानवतावाद की जो अलख जगाई वह सदियों तक जलती रहेगी। इसी कारण इस युग को स्वर्णयुग की महिमा से भी मंडित किया गया। मध्यकाल का विशेषकर भक्ति काव्य की भाषा, जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक कारणों की दृष्टि से अपना महत्त्व है और इसी कारण इस दृष्टि से भी इसका महत्व बढ़ जाता है। भक्ति आन्दोलन महज एक आन्दोलन नहीं अपितु वर्तमान में अतीत का मूल्यांकन भी है। गहन मानवीय सरोकारों से युक्त यह काव्य सामाजिक सरोकारों पर बल देता है और कट्टर धार्मिक परंपरा को जीवित रखने वाली प्रणाली का भी विरोध करता है। वर्तमान समय में भी भक्तिकाल की अमूल्य देन को अनदेखा नहीं किया जा सकता। लोक जागरण की इस सकारात्मक देन को शैक्षणिक माध्यम बनाकर आधुनिक युग की मानवीय एकता और स्वस्थ जीवन प्रणाली पर बल दिया जा सकता है। यह भी सच है की भाषा एक दिन में जन्म नहीं लेती और न ही किसी निश्चित दिन में उसकी समाप्ति की घोषणा की जा सकती है। यह तो एक जीवंत और ऐतिहासिक प्रक्रिया है, साथ ही भाषा समाज की सहभागिता पर आधारित है। परस्पर आपसी सम्बन्ध और विशेष समुदाय की भाषा दोनों आपस में मिलकर ऐतिहासिक कालक्रम को पार करके एक जीवंत सभ्यता प्रदान करते हैं। भक्तिकाल की भाषा समृद्धि को व्यक्तिगत तौर पर नहीं देखा जाना चाहिए।

जैसे समाज साहित्य की हर विधा को प्रभावित करता है वैसे ही साहित्य भी समाज के हर वर्ग को प्रभावित करता है। साहित्य का अस्तित्व समाज से अलग नहीं हो सकता। उसकी हर विधा सामाजिक व्यवहार से निर्मित होती है। साहित्य समाज के अनेक रूपों से जुड़ा होता है जिस कारण समाज का प्रभाव साहित्य पर अवश्य ही पड़ता है, वही साहित्य के सहारे समाज भी अपनी अस्मिता को पहचान सकता है। साहित्य समाज को हर युग में प्रभावित करता रहा है और हमेशा करता रहेगा। भक्तिकाल की भाषा, सांस्कृतिक चेतना, धर्म एवं अध्यात्म की आस्था से बहुत निकट से जुड़ी हुई थी। भक्तिकाल की विराट सामाजिक चेतना का प्रतिफलन विराट सांस्कृतिक चेतना के रूप में दिखाई देता है। भक्तिकाल का साहित्य संस्कृति के उस शालीन और मानवीय पक्ष को उजागर करता है जो कट्टरपंथी सामाजिक मान्यताओं का डटकर विरोध करते हैं और नए समाज की नींव रखने का भरसक प्रयास करते हैं। भक्तिकाल की सांस्कृतिक चेतना आपसी भेदभाव को भुलाकर समन्वय की प्रवृत्ति पर बल देती है । कबीर काव्य और भाषा के सन्दर्भ में कई आलोचकों ने अपने मत प्रस्तुत किये हैं । श्याम सुन्दरदास कबीर के गंभीर आलोचकों में से एक हैं । श्याम सुंदर दास ने 'कबीर ग्रंथावली' का संपादन किया । उन्होंने कबीर काव्य का सकारात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन किया और उसकी भूमिका में लिखा- कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है क्योंकि वह खिचड़ी है । कबीर की रचनाओं में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं, परंतु भाषा का निर्णय अधिकतर शब्दों पर निर्भर नहीं हैं । भाषा के आधार क्रियापद, संयोजन शब्द तथा कारक चिन्ह है जो वाक्य विन्यास के विशेषताओं के लिए उत्तरदायी होते हैं । कबीर में केवल शब्द ही नहीं, क्रियापद, कारक चिन्ह आदि भी कई भाषाओं के मिलते हैं, क्रियापदों के रूप अधिकतर ब्रजभाषा और खड़ी बोली के हैं । कारक चिन्हों में कै, सन, सा अवधी के हैं, को ब्रज का और थैं राजस्थानी का । उन्होंने स्वयं कहा है- मेरी बोली 'पूरबी' तथापि खड़ी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी-फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट उनकी पंक्तियों पर चढ़ा हुआ है।1 जबकि डॉ. उदय नारायण तिवारी इस कथन की मीमांसा करते हुए कहा- कबीर की मूल भोजपुरी में लिखी वाणी बुद्ध वचनों की तरह कई भाषाओं में अनूदित हो गई थी। इसलिए उसमें कितने प्रकार की विविधता पाई जाती है।2 डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने कबीर की भाषा का विश्लेषण करते हुए अपना मत इस प्रकार प्रस्तुत किया- कबीर यद्यपि भोजपुरी इलाके के निवासी थे, किंतु तत्कालीन हिंदुस्तानी कवियों की तरह उन्होंने प्राय: ब्रजभाषा का प्रयोग किया, कभी-कभी अवधी का भी। उनकी ब्रजभाषा में भी कभी-कभी पूर्वी रूप भी झलक आता है, किंतु जब वे अपनी बोली भोजपुरी में लिखते हैं तो ब्रजभाषा के तथा अन्य पश्चिमी भाषिक तत्व प्राय: दिखाई पड़ते हैं।3 डॉ. रामकुमार वर्मा के मत से कबीर के काव्य का व्याकरण पूर्वी हिंदी रूपी लिए हुए है।4 उक्त विचारों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि वह सारे मत कबीर की भाषा से संबंधित हैं।

उक्त परिभाषाओं से यह तो सिद्ध है कि कबीर काव्य को और उनकी भाषा को अनदेखा नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें ऐसे तत्व समाहित हैं जो कबीर को अन्य कवियों से अलग दृष्टि प्रदान करते हैं। कोई भी साहित्य तभी सही मायनों में पूर्ण माना जाता है जब वह हर पक्ष से युग को प्रभावित करता है। भक्तिकाल के निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवि कबीर ने एक ओर तत्कालीन समाज की कुरीतियों का डटकर विरोध किया तो भाषिक संचेतना के माध्यम से समाज सुधार की चेतना के उपाय भी सामने रखे। हिंदी का भक्ति आन्दोलन केवल भक्ति में ही सिमटकर

नहीं चला है बल्कि भक्ति भावना के माध्यम से सांस्कृतिक चेतना को विराट जन-आन्दोलन में परिवर्तित कर देता है । भक्तिकाल में सगुण और निर्गुण दो काव्यधाराओं का उद्‌भव हुआ । कबीर अपने समय के मानवतावादी मूल्यों को प्रश्रय देने में सर्वप्रमुख है । कबीर नवजागरण चेतना के अग्रदूत थे । रामविलास शर्मा ने भक्ति युग को प्रथम नवजागरण-युग की संज्ञा से भी अभिहीत किया है । कबीर की दृष्टि में मानव ही सर्वश्रेष्ठ है । उन्होंने ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा आदि के भेद को नकारा और समानता के सिद्धांत के आधार पर समाज की परिकल्पना की-

अवधू, बेगम देश हमारा
राजा रंक फकीर-बादसा, सबसे कहाँ पुकारा
जो तुम चाहो परम पद को, बसिहों देस हमारा ।।

भाषा मनुष्य के भावों और विचारों की संवाहक होती है। जब किसी व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति तक पूर्ण रूप से पहुंच जाएं तो वह स्थिति भाषिक संप्रेषण की होती है । अपने विचारों को प्रकट करने के लिए मानव भाषा का सहारा लेता है और किसी भी समाज के संप्रेषण में भाषा अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में जानी जाती है कि चुनौतियां जितनी कम होंगी संप्रेषण उतना ही सहज और सरल होगा । साहित्यिक संप्रेषण भावों और विचारों के सौंदर्य को अधिक उत्तम बनाने के लिए शब्दों का विशेष रूप से प्रयोग करता है । यह भाषा की ही शक्ति थी जो कबीर की वाणी को जन -जन तक पहुंचा सकी । कबीर का भाषा पर जबरदस्त अधिकार था । भाषिक दृष्टि से नवीन आयाम कबीर ने गढ़ें हैं और मील का पत्थर स्थापित किया है । कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है । असीम अनंत ब्रह्मानंद में आत्मा का अंतर्भूत होना और उसे सर्वजन शब्दावली में प्रस्तुत करने का काम केवल कबीर ही कर सकते थे । उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को अपनी वाणी से साकार रूप प्रदान किया है । उनके व्यंग्य का आज भी कोई सानी नहीं है । उनकी सरल शब्दावली में कही गई साखियां आज भी प्रासंगिक हैं । शताब्दियों के गुजर जाने के बाद भी कबीर इसलिए अपनी प्रासंगिकता रखते हैं क्योंकि वे शास्त्रीय भाषा से मुक्त हैं और उनकी भाषा में परंपरा से चली आ रही विशेषताएं आज भी प्रासंगिक हैं । साहित्य का केवल रसिक आस्वादन करने वाले यदि कबीर को ना जाने तो इसमें कबीर का कोई दोष नहीं क्योंकि कबीर किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं लिखते बल्कि उस व्यक्ति के लिए लिखते हैं जो जन सामान्य से सरोकार रखता है कोई भी कभी कवि तभी युगों तक पहचान बनाए रखता है जब वह किसी की फरमाइश पर नहीं बल्कि अपने हृदय के कहे पर चलता है और वह कर दिखाता है जो उसका मन चाहता है। साहित्य समाज का दर्पण है, कहने से ही केवल साहित्य की पूर्ति नहीं हो जाती बल्कि साहित्य तब पूर्ण होता है जब उसमें लोकमंगल की भावना के साथ साथ सर्वहित कल्याण की भावना भी हो। कबीर अक्खड़ व्यक्तित्व के स्वामी थे । हिंदू और मुस्लिम दोनों को रूप से ललकारना तलवार पर पैर रखने के चलने के समान था । हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है- 'कबीर ने कविता करने की प्रतिज्ञा करके कविता नहीं लिखी थी। उनकी छंद-योजना, उक्ति-वैचित्रय और अलंकार विधान पूर्ण रूप से स्वाभाविक और अयत्नसाधित है।'5 कहने का तात्पर्य यह है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी एक पूर्ण कवि व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करते हैं । विद्वानों ने समय-समय पर कबीर के बारे में अपनी राय प्रस्तुत की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर के कविता के संदर्भ में कहा है वह उनका उपदेशात्मक रूप अधिक दिखाता है, शुक्ल के अनुसार 'यद्यपि वे पढ़े-लिखे ना थे पर उनकी प्रतिभा प्रखर थी जिससे उनके मुंह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थी

अनेक प्रकार के रूप को अन्योक्तियों के द्वारा ही इन्होंने जो ज्ञान की बातें कहीं हैं जो नयी ना होने पर भी वाग्वैचित्रय के कारण अनपढ़ लोगों को चकित किया करती थी।'6

कबीर की कविता पर विचार करते हैं तो उनकी कविता के अनेक रूप हमारे सामने आते हैं उनकी कविता जैसी कही गई है उसकी अपनी शैली भी है । कबीर के कविता की प्रासंगिकता इसे दृष्टि से जाने जा सकती है कि उन्होंने अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। अवधी, ब्रज, देशज, अरबी, फारसी, राजस्थानी, पंजाबी इत्यादि भाषा का मिश्रण भी हमें दिखाई देता है इसीलिए कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भी कहा जाता है। उनकी भाषा उनकी कविता को बुद्धि से समझना उनकी कविता देश और काल की सीमा से परे है। कहने का तात्पर्य यह है कि कबीर ने भाव के अनुसार शब्दों का चयन किया है । उपदेश और सद्गुरु महिमा को अंग जैसे पदों में इस तरह की शब्द नियोजना विशेष रूप से देखी जा सकती है। शैली के तत्वों की दृष्टि से कबीर में आवृत्ति, अलंकृति आदि का जो रूप देखने को मिलता है वह कबीर के काव्य के बिल्कुल अनुकूल है। बिम्ब और चित्रत्मकता, प्रतीकात्मकता की दृष्टि से विशेष रूप से अवलोकनीय है और इसके मूल में लोकजीवन का प्राणतत्व है। भाषा की स्पष्टता कबीर के वाणी की खासियत है। कोई भी काव्य जब तक महान नहीं बन सकता जब तक कि उसमें मानवता को वहन करने की क्षमता न हो । साहित्य में वैसे भी लोकमंगल पक्ष को सबसे अग्रणी स्थान दिया गया है। लगभग सभी संत कवियों ने अपनी वाणी में इसी चिंतन को सामने रखा कि किसी के विरोध की परवाह किये बिना लोकहित को सबसे ऊपर रखा जाए । इन संत कवियों में कबीर का स्वर ही सबसे ऊँचा रहा । कबीर की साखियाँ और दोहे सबसे मुखर हैं ।

हिंदी साहित्य में अलंकारों का विशेष महत्व है अलंकार यद्यपि शास्त्र के अनुसार प्रयोग नहीं हुए हैं फिर भी उनके काव्य में शब्दगत और अर्थगत अलंकार अनायास रूप से प्रवेश पा गए हैं। कबीर की कविताओं में अनुप्रास, यमक, विरोधाभास, रूपक, अतिशयोक्ति जैसे अनेक अलंकारों की योजना देखने को मिलती है। कबीर ने अपनी विशिष्ट शैली में रूपकों का खूब प्रयोग किया है। यह उनकी काव्यात्मकता की अनायास योजना को ही दर्शाता है जैसे-

संतो भाई आई ज्ञान की आंधी रे,
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहे न बांधी रे ।
अन्योक्ति का सहारा लेकर समाज को रास्ता दिखाने का काम भी कबीर करते हैं ।
माली आवत देखकर कलियन करे पुकार,
फूल्हि-फूल्हि चुनि लिए काल्हि हमारी बार ।

कबीर अलंकारों के मात्र के विद्वान नहीं थे फिर भी अपने कथन की शैली से अलंकारों का जो सहज प्रयोग उन्होंने किया है इससे रहस्यमयी बातों को सहज रुप से कबीर वर्णित कर देते हैं। कबीर के काव्य में श्रृंगार एवं शांत रस की प्रधानता है । आत्मा एवं परमात्मा से संबंधित प्रसंगों में संयोग श्रृंगार एवं वियोग प्रसंगों में श्रृंगार की अभिव्यंजना हुई है। कबीर ने प्रतीकों का प्रयोग भी प्रचुरता से किया है। प्रतीक शैली उन्हें विशेष रूप से प्रिय है। उनके प्रतीक आध्यात्मिकता से जुड़े हुए हैं जिनके अर्थ को जाने बिना कबीर की कविता के मर्म को नहीं जाना जा सकता है। कबीर का एक उदाहरण इस सन्दर्भ में अवलोकनीय है -

आकासे मुखि औंधा कुआँ पाताले पनिहारि ।
ताका पाणी को हंसा पीवै विरला आदि विचारि।।

यहाँ आकाश सहस्रार चक्र का, औंधा कुआं ब्रह्मरंध्रा का, पाताल मूलाधार चक्र का, पाणी अमृत का तथा हंस जीवन्मुक्त आत्मा का प्रतीक है। कबीर के काव्य में प्रयुक्त प्रतीक नाथपंथी योगियों, प्रकृति तथा जीवन से लिए गए हैं । इसी प्रकार कबीर की कविता में दीपक ज्ञान का, हाट संसार का, पतंगा विषय वासना का और हंस आदि प्रतीक जीवात्मा के वाहक रूप में प्रयोग किये हैं। उलटबांसियों के प्रति कबीर का विशेष मोह दिखाई देता है। छंद, अलंकार आदि भाषा के उपकरण कबीर के लिए केवल साधन हैं, साध्य नहीं हैं। कबीर की कविता में चलती भाषा के मुहावरे व लोकोक्तियों का भी प्रयोग दिखाई देता है। कबीर कहते हैं... जाके पैर न पड़ी बिवाई वो क्या जाने पीर पराई । कबीर के सभी पद अपनी प्रासंगिकता में स्वतंत्र दिखाई देते हैं । बोया पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से होई... या फिर पाँव कुल्हारी मारिया मूरख अपने हाथ आदि मुहावरे आज भी हम बहुतायत से प्रयोग में लाते हैं ।

आवृत्ति कबीर की काव्यभाषा का प्रमुख गुण है । कबीर ने अर्थगाम्भीर्य को व्यक्त करने के लिए इसका सहारा लिया है। उनके एक पद में माया की व्यापकता का बोध करने के लिए माया शब्द की पुनरावृत्ति की है – माया तजूं तभी नहीं जाई,

फिर फिर माय मोहि लपटाई।
माया आदर माया मान, माया नहीं तहां ब्रह्म गियान,
माया मार कै ब्यौहार, कहैं कबीर मेरे राम अधार।

कबीर का काव्य प्रयोजन व्यक्ति और समाज की हितकारिणी केवल भक्ति ही है। भक्ति ही वह साधन है जिससे समाज के भेदक तत्वों को दूर किया जा सकता है। उनका काव्य न तो कोरे उपदेश का उद्‌बोधक है और न ही आर उपदेश कुशल बहुतेरे जैसी भावना उसमें समाई हुई है वरन उसका प्राणतत्व केवल सत्य का प्रकटीकरण मात्र है। उनका काव्य प्रयोजन चतुर्वर्ग की कसौटी से बिल्कुल परे है। कबीर भक्ति मात्र भक्ति ही है और कुछ नहीं। बिम्बात्मकता की दृष्टि से भी कबीर का काव्य चित्रात्मकता, प्रभावोत्पादकता और एन्द्रिकता से युक्त है। कबीर ने अपनी रहस्यानुभूति, प्रेमानुभूति तथा साधनानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए स्वाभाविक बिम्ब योजना की है। कबीर ने काल की शक्ति और मनुष्य के जीवन की नश्वरता के बिम्ब को स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है–

कबीर कहा गरबियो, काल गहै कर देस।
न जाणे कहां मारिसी कै घर कै परदेस।।

यहां बिंब योजना लाने में कबीर सफल है। कबीर ने माया आत्मा और जगत से संबंधित विचारों को भी रोचक बना दिया है। आत्मा परमात्मा के भी कबीर ने उदाहरण लेकर प्रस्तुत किए हैं जो मार्मिक अनुभूतियों को वर्णित करने में सफल रहे हैं।

कबीर के काव्य रूपों में अपने ढंग के काव्यात्मकता है जो सरलता, सहजता, स्पष्टता और विशिष्ट शब्दों के प्रयोग द्वारा कम से कम शब्दों में एक से अधिक अर्थ को व्यक्त करने की

क्षमता में देखी जा सकती है। यह काव्य रूप रुढ़िवादी तो नहीं है किंतु सहजता का गुण अवश्य लिए हुए हैं। कबीर द्वारा प्रयुक्त मुक्तक और काव्य रूप की खोज पारंपरिक और शास्त्रीय न होकर सरल व स्पष्ट है। कबीर ने साखी, पद और रमैनी काव्य रूप में अधिकाधिक भाव अभिव्यक्ति की है। ये साखियां उस समय की राजनीतिक, साहित्यिक परिस्थिति के अनुकूल पड़ती थी। दो पंक्तियों अथवा चार चरणों की रचना को कबीर ने साखी कहा । साखी केवल काव्य रूप का नाम नहीं है। कबीर के आंतरिक और आध्यात्मिक काव्य सृजन प्रक्रिया की सृष्टि भी की है। साखी का संबंध मानव को निश्चित सत्य पर पहुंचाने वाला भी है। आज भी साखियोंकी महत्ता व प्रासंगिकता बनी हुई है। किसी भी नैतिक, आध्यात्मिक विवाद को यह साखियां सुलझाने में सहायक होती हैं।

रस की दृष्टि से यदि कबीर का काव्य देखें तो अन्य संत कवियों में भी रस की चर्चा समीचीन दिखाई पड़ती है। सभी संत कवि भक्ति को सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हैं अत: कबीर समेत सभी संतों की रचनाओं में रस को स्थान प्राप्त हुआ है। संतों ने इसे राम रसायन, हरि रस और प्रेम रस आदि भी कहा है। कबीर ने ईश्वर को निराकार और अनिर्वचनीय माना है जो गुणों से रहित है। कबीर ने माया का वर्णन निम्न प्रकार से किया है–

कबीर माया मोहिनी जैसी मीठी खांड,
सतगुरु की कृपा भई न, हीं तो करती मांड।

इसमें कबीर ने माया को माया के विनाशकारी रूप का परिचय दिया है और ईश्वर से जुड़ने की बात कही है जो कि भक्ति रस की सृष्टि करता है। इसी प्रकार कबीर ने ईश्वर के निर्गुण सगुण रूप हीन और आकार से हीन माना है। कबीर ने ईश्वर के अनेक प्रकार के अद्‌भुत गुणों का समावेश किया है जो निर्गुण और सगुण से परे है। इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए कबीर साहित्य के भक्ति रस पर विचार करते समय कतिपय विद्वानों ने उद्दीपन के स्वरूप और उसके भेदों पर भी विचार किया है। कबीर काव्य का आलंबन अलौकिक राम हैं जिसमें उनके आने की खुशी मिश्रित दीनता का भाव है। इसमें संचारी भाव भी व्यक्त हुआ है और कबीर ने भक्ति के माध्यम से रस की सृष्टि की है। साहित्य में रस को ब्रह्मानंद सहोदर अथवा आनंदस्वरूप बताया गया है और उसकी आवश्यकता को भी स्वीकार किया है । साहित्य में रस का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया गया है जो कि सर्वत्र अलौकिकता और आध्यात्मिकता में विद्यमान है। भक्ति के जितने भी विविध रूप व्यक्त हुए हैं उससे यह स्पष्ट होता है कि कबीर साहित्य में भाव विविधता का जो वैविध्य दिखाई देता है उसमें गंभीरता सरसता और मार्मिकता के साथ साथ स्वाभाविकता भी है।

कबीर की भाषा जनसामान्य की वह चली हुई भाषा है जिसमें किसी प्रकार का बंधन नहीं है । एक कारण यह भी कहा जा सकता है कि अन्य संत व कबीर अल्पशिक्षित और अपढ़ थे जिससे वे काव्यशास्त्रीय विधानों को जान ही नहीं सके कि भाषिक बंधनों से वे अपनी भाषा को बांध सके। कभी उन्हें स्वयं ही घोषणा की थी 'संस्कृत कूप जल भाषा बहता नीर' कबीर की दृष्टि से भाषा उस समय की प्रचलित भाषा की ओर संकेत करता है जिसे व्याकरण के नियमों से बांधकर खत्म नहीं कर दिया गया था। उसमें संस्कृत के मूल शब्दों या तत्सम शब्दों के प्रति आग्रह की भावना नहीं थी क्योंकि वे तत्सम शब्द तो प्रचलित होकर केवल ग्रंथों में ही सिमट कर रह गए थे जबकि उस समय समाज की मांग थी कि उनकी भावना को सरल शब्दों में व्यक्त किया जाए

इसलिए कबीर व अन्य संत कवियों ने तद्भव या देशज शब्दों को ग्रहण किया। उन्होंने जनता के जनता की ही भाषा में और जनता के बीच अपनी भाषा के कारण लोकप्रिय भी हुए। निर्गुण राम जैसी संकल्पना को आसान शब्दों में व्यक्त कर देना कबीर जैसा व्यक्तित्व ही कर सकता है। कबीर की भाषा पर अनेक प्रकार के और भाषा या सधुक्कड़ी भाषा कहकर कमजोर सिद्ध करने का प्रयास भी किया गया है किंतु कबीर की भाषा आंतरिक अनुभूतियों को भाषा के माध्यम से पाठक के हृदय तक प्रेषित करता है जो उनके काव्य की बहुमूल्यता का जीवंत चित्रण है।

भाषा वही अच्छी होती है जिसमें कर्णप्रियता व अर्थ की सहजता हो। कबीर में भाषा के शब्द चयन, वाक्य, रचना शैली को सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। भाषा का भावों के अनुकूल होना, जीवन की क्षणभंगुरता, भयानकता, मृत्यु, सांसारिक विपत्तियां सभी कुछ सरल भाषा में कबीर ने सामने रखा है इसी से कबीर का काव्य चिरस्थाई हो सका है। कबीर ने प्रचलित काव्य रूढ़ियों एवं पाखंडों का विरोध किया ।

मध्यकालीन मानवतावादी दृष्टि मानव मात्र के कल्याण पर आधारित थी । 'प्रेम' इसका मूलाधार है और प्रेम ही भक्ति का आधार तत्त्व भी है । मानव की दुष्प्रवृत्तियों को विनष्ट करके सृजनकारी मार्ग पर बढ़ाना ही इसका मूल उद्देश्य है । प्रेममार्ग ही सामाजिक प्रतिकूलता को अनुकूल कर सकता है । मध्यकालीन लगभग सभी कवियों ने इस प्रेम तत्त्व को अपने काव्य का मुख्य विषय बनाया था । ज्ञातव्य है कि मध्यकाल राजनीतिक दृष्टि से उथल-पुथल का समय था और दो भिन्न संस्कृतियों को भी व्यक्त करता था जिसमें कबीर, तुलसी, जायसी, सूर ने एकात्म भाव में लाने का प्रयास किया । इन सभी कवियों ने 'प्रेम' के माध्यम से साहित्य को सिंचित किया। कबीर कहते हैं-

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

भक्तिकालीन कवियों की प्रमुख देन यह रही कि वे सभी सामंजस्य की प्रवृत्ति पर बल देते थे । उनकी मौलिक सृजनात्मक अभिव्यक्ति 'राम' को 'भगवान राम' बनाती है तो 'कृष्ण' के जन्म से मृत्यु तक के जीवन क्रम को आदर्श और आलौकिक रूप में प्रस्तुत करती है । यह सत्य है कि इन कवियों ने कहीं भी चमत्कार को आम जीवन में प्रश्रय नहीं दिया किन्तु इनकी रचनाएं चमत्कार से कम भी नहीं है । आम जन-सामान्य को इहलौकिक और पारलौकिक दोनों यात्राओं का बोध कराने वाले ये कवि सच्चे मानवतावादी कवि है। कबीर की दृष्टि में 'राम' का कोई रूप नहीं हैं और राम केवल अंतर्बोध का विषय है-

जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप।।

कबीर धार्मिक सामंजस्य के अग्रणी कवि हैं । वे राम और रहीम तथा काशी और काबा

की एकता कायम करने के प्रबल पक्षधार रहे और धार्मिक एकता को मानवतावादी रूप देने का भरसक प्रयास आजीवन करते रहे । हिन्दू एवं मुस्लिम समुदाय के बीच एकता की विराट चेष्टा कबीर को आज भी प्रासंगिक ठहराती है । कबीर ने जो देखा, अनुभव किया वही कहा भी है । उन्होंने समाज के बदलते परिदृश्य को समाज सुधारक नजरिये से देखा । कबीर की रचनाधर्मिता उनकी व्यंग्यात्मकता में दिखाई देती है। व्यंग्यात्मकता कबीर की कविता का एक प्रमुख गुण है। हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- 'हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यंग्यकार पैदा नहीं हुआ। अत्यंतसीधी भाषा में ऐसी चोट करते हैं कि चोट खाने वालों के लिए केवल धूल झाड़ कर चलने के सिवाय कोई रास्ता ही नहीं रहता।'7 कबीर का कोई सानी नहीं है उन्होंने योगियों, जैनियों, हिंदू धर्म में प्रचलित अंधविश्वास रूढ़ियों कर्मकांडों की कमजोरी पर प्रहार किए हैं। उन्होंने सभी ऐसे विरोधी तत्वों का विरोध किया है जो दिलों के बीच दूरियां बढ़ाता है। व्यंग्यात्मकता कबीर की कविताओं का एक मील का पत्थर है जो सोचने पर विवश कर देती है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भी कबीर के बारे में लिखा है- 'समाज सुधार की भावना या हिंदू मुस्लिम एकता एक प्रमुख वस्तु थी जिसे उन्होंने अपनी संवेदना में ढाला।'8 व्यंग्यात्मकता के धरातल पर यदि कबीर को खोजा जाए तो उनका व्यंग्य इस प्रकार का नहीं है कि समाज में किसी पर प्रकार का विरोध उत्पन्न हो जाए बल्कि उनकी आक्रामकता का स्वर सीधे ऐसी चोट करता है कि अन्याय करने वाला और अन्याय सहने वाला दोनों ही अपने को टटोलने पर मजबूर हो जाते हैं। उनकी भाषा इतनी सभ्य है कि वर्ग वैषम्य से दूर केवल समानता में विश्वास करती है।

सन्दर्भ सूची -

(1) कबीर ग्रंथावली, (भूमिका) संपाक्त बाबू श्याम सुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी -14 संस्करण, 2034 विक्रम संवत, पृष्ठ-48

(2) भोजपुरी भाषा और साहित्य का हिंदी अनुशीलन, वर्ष 2, अंक 2, 'कबीर की भाषा' निबंध

(3) ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ द बंगाली लैंग्वेज, एस.के.चटर्जी, पृष्ठ-99

(4) संत कबीर प्रस्तावना, डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद 4, 1957, पृष्ठ -22

(5) कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-65

(6) वही, पृष्ठ-170

(7) हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-65

(8) रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 211001, पृष्ठ-40

डॉ. संगीता वर्मा असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी विभाग), कमला नेहरू कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. :– 9811917248, ई मेलः– sangeetavermaknc@gmail.com

मीन पीन पाठीन पुराने.....

डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय

संयोग से जब मल्लाहों ने उसे निकाला तो उसके गर्भ का दसवाँ महीना था। मछेरों ने जब उसका पेट फाड़ा तो उसमें से एक कन्या और एक पुरुष निकला। मछेरों ने जब यह घटना राजा उपरिचर को बतायी तो उन्होंने उस बालक को ग्रहण कर लिया, बाद में वाही मत्स्य नामक धार्मात्मा राजा हुआ। (संभव है इसी राजा के नाम पर बाद में मत्स्यदेश पड़ा हो)। उन जुड़वी संतानों में जो कन्या थी, मछली की पुत्री होने से उसके शरीर से मछली की गंध आती थी।

भारतीय साहित्य और संस्कृति में मछली का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। मछली का दर्शन अत्यंत शुभ माना जाता है, यही कारण है कि मानस में भी तुलसी ने लिखा कि- सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना।। 1 प्रश्न यह है कि मछली इतनी महत्वपूर्ण क्यों है? उसकी इतनी चर्चा क्यों हुई है? दरअसल मछली से ही सृष्टि की शुरुआत मानी जाती है। मत्स्यपुराण के सृष्टि उत्पत्ति प्रसंग में वर्णन आया है कि 'एक समय की बात है, आश्रम में पितृ - तर्पण करते हुए महाराज मनु की हथेली पर जल के साथ ही एक मछली आ गिरी। उस मछली के रूप को देखकर वे नरेश दयार्द हो गए तथा उसे कमण्डलु में डालकर उसकी रक्षा का प्रयत्न करने लगे। वह मत्स्य रात भर में ही कई हाथ बढ़ गया। उसके पश्चात तो वह मत्स्य सैकड़ों योजन का हो गया। दरअसल वह मत्स्यावतार स्वयं भगवान विष्णु थे और उन्होंने मनु से कहा कि प्रलय काल में जब धरती जल मग्न हो जायेगी, तब समस्त जीवों की रक्षा के लिए समस्त देव गणों द्वारा इस नौका का निर्माण किया गया है। सुव्रत, जितने स्वेदज, अंडज, और उद्भिज जीव हैं तथा जितने जरायुज जीव हैं, उन सभी अनाथों की इस नौका में चढ़ाकर तुम सबकी रक्षा करना और जब नौका डगमगाने लगेगी, उस समय राजेन्द्र, तुम उसे मेरे इस सींग में बाँध देना। .....

तदनन्तर भगवान वासुदेव के मुख से कहे गए पूर्वोक्त प्रलय काल के उपस्थित होने पर भगवान जनार्दन एक सींग वाले मत्स्य के

रूप में प्रादुर्भूत हुए। उसी समय एक सर्प भी रज्जु - रूप से बहता हुआ मनु के पार्श्वभाग में आ पहुँचा। तब धर्मज्ञ मनु ने अपने योगबल से समस्त जीवों को खींचकर नौका पर लाद लिया और उसे सर्प रुपी रस्सी से मत्स्य के सींग में बाँध दिया।' 2 इस प्रकार मत्स्यवतार विष्णु का प्रारम्भिक अवतार है और मत्स्य सृष्टि का आदि जीव। महाभारत में मत्स्य कन्याओं का प्रसंग वर्णित हुआ है। कृष्णद्वैपायन व्यास की मां सत्यवती एक मत्स्यकन्या ही थीं जिनकी उत्पत्ति का बड़ा ही रोचक प्रसंग महाभारत में वर्णित है। जिसके अनुसार राजा उपरिचर के वीर्य को अद्रिका नाम की एक अप्सरा जो ब्रह्मा जी के शाप से मछली बन गयी थी, उसने खा लिया था। संयोग से जब मल्लाहों ने उसे निकाला तो उसके गर्भ का दसवाँ महीना था। मछेरों ने जब उसका पेट फाड़ा तो उसमें से एक कन्या और एक पुरुष निकला। मछेरों ने जब यह घटना राजा उपरिचर को बतायी तो उन्होंने उस बालक को ग्रहण कर लिया। बाद में वही मत्स्य नामक धर्मात्मा राजा हुआ, (संभव है इसी राजा के नाम पर बाद में मत्स्यदेश पड़ा हो)। उन जुड़वी संतानों में जो कन्या थी, मछली की पुत्री होने से उसके शरीर से मछली की गंध आती थी। अत: राजा ने उसे मल्लाह को सौंप दिया और कहा यह तेरी पुत्री होकर रहे। बाद में इसी मत्स्यगंधा से पराशर मुनि ने संसर्ग किया था और वरदान स्वरुप इसकी दुर्गंध को सुगंध में बदल दिया था। जिसके बाद इसका नाम योजनगंधा हो गया। इसी संसर्ग से कृष्णद्वैपायन व्यास का जन्म हुआ। सत्यवती अथवा योजनगंधा ही व्यास की माँ हैं। इनकी मनमोहक सुगंध से मन्त्र मुग्ध होकर महाराज शांतनु ने इनसे विवाह प्रस्ताव रखा, जिसके लिए भीष्म को आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लेना पड़ा। 3 मत्स्यकन्यायें मनुष्य और मीन के साहचर्य का परिणाम रही हैं यानी इन दोनों संस्कृतियों में परस्पर संसर्ग और समागम की स्थितियाँ रही हैं, वैसे ही जैसे नाग और मनुष्य संस्कृति में सम्बन्ध रहा है। प्राचीन साहित्य से लेकर अर्वाचीन साहित्य तक कदाचित ही कोई श्रेष्ठ ग्रंथ हो जिसमें मछली का उल्लेख न हुआ हो, मानस में तो तुलसी ने कई जगह मीन की उपमा दी है। जल के प्रति मीन की प्रतिबद्धता उसे बार-बार दृष्टांत के लिए आमंत्रित करती है मसलन पंक्ति देखें-मिले सकल अति भये सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बार।। 4 जल के बिना मछली की विकलता जग जाहिर है इसी विकलता की तुलना चित्रकूट सभा की विकलता से करते हुए तुलसी लिखते हैं- सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुं मीन गन नव जल जोगा।। 5 दसरथ तो राम के वियोग में यहाँ तक कहते हैं कि-

जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना।।
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं।।6

वहीँ मानस के ही अयोध्याकांड में चित्रकूट यात्रा के दौरान निषादराज भरत के लिए भोजन आदि का प्रबंध करते हैं जिसमें मीन की प्रधानता देखी जा सकती है। कहार बड़ी मोटी मोटी मछलियाँ भरत के लिए लादकर लाए हुए हैं, यह अलग बात है कि भरत इनमें से किसी भी सामग्री का उपयोग नहीं करते हैं, पंक्ति देखें-

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने।।7 अवध की संस्कृति में मछली का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। राम के समय से लेकर अवध के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह तक के काल में मछली को अत्यंत गौरव पूर्ण स्थान मिला है। अयोध्या के प्रत्येक भवन में मछली की खूबशूरत चित्रकारी और खुदाई मिलती है। मुख्य द्वार पर मछली का चित्र उकेरा गया है।

मछली देखकर निकलना शुभ माना जाता है। चंद्रवंशी राजा नल पर जब विपत्ति पड़ी थी और वे भुनी मछली खाने को अभिशप्त हुए थे, किन्तु दुर्भाग्य देखिये कि वह भी उन्हें नसीब नहीं हुई, जैसे ही खाने चले, मछलियाँ जिंदा होकर तालाब में कूद पड़ीं, इसे कहते हैं दुर्दिन। यह प्रसंग लोक जन जीवन में आज भी याद किया जाता है कि-

राजा नल पै बिपति परी, भूँजी मछरी जल मां परी।।

दास्ताने अवध में योगेश प्रवीन जी लिखते हैं कि तवारीखे अवध के तमाम नक्शो निशानात में मछली ने जो दर्जा हासिल किया है वो दुनिया के किसी मुल्क की किसी सल्तनत में किसी जानवर को शायद अब तक नहीं मिला है और फिर क्यों न हो, मछली की जात तो वो है कि भगवान तक ने पहला अवतार लेने के लिए इसी रूप स्वरुप को पसंद किया था।8 लखनऊ में मच्छी भवन तो अवध दरबार की शोभा ही रहा है। कहते हैं इसमें पूरी बावन मछलियाँ बनी हुई हैं 'इस किले को 'मछली बावन' कहा जाता था जो बाद में कहते कहते 'मच्छी भवन' हो गया। तो जनाब, अगर जौनपुर एक मछली वाला शहर है तो लखनऊ बावन मछलियों वाला शहर हुआ करता था यानी कि यहाँ साल के हर हफ्ते पर एक-एक मछली का दावा हुआ करता था।' 9 यही नहीं अवध की संस्कृति में मछली का दबदबा आज भी मौजूद है, उत्तर प्रदेश की शाही शील पर तीर कमान के नीचे मछली विद्यमान है। उसे शाही गौरव प्राप्त हुआ है या यों कहें कि आज भी उसे वही प्रतिष्ठा प्राप्त है जो राज्याश्रय में प्राप्त थी। अयोध्या के सभी भवनों में मछली का चित्र उकेरा हुआ मिलता है। अवध ही नहीं भारत के अन्य प्रदेशों में भी मछली का महत्व कुछ कम नहीं है। मिथिला में मछली वहाँ की संस्कृति का अनिवार्य हिस्सा है। वहाँ शुभ अशुभ सभी कार्य मछली के बिना पूर्ण नहीं होते हैं। वहाँ विवाह में सगुन के रूप में चाँदी की मछली भेजी जाती है। दामाद को मछली की मूड़ी परोसी जाती है और इसे बहुत ही सम्मान का विषय माना जाता है। यही नहीं प्रेतात्मा को तृप्त करने के लिए पिण्डदान में भी मछली बनाकर अर्पित की जाती है। मिथिला में मछली को अत्यंत शुभ माना जाता है यही कारण है कि युद्ध में प्रस्थान करते समय मछली की पूँछ पर तिलक लगाया जाता था, इस प्रसंग का उल्लेख ग्रिएर्सन ने कनरपी घाट के युद्ध वर्णन में किया है जिसके अनुसार राजा ने मछली की पूछ में तिलक लगाकर, फूलों की माला पहनकर, गणेश जी को प्रणाम करके युद्ध के लिए प्रस्थान किया-

मच्छ पुच्छ के तिलक करि पैन्ह कुसुम के माल।

कै प्रणाम बिघ्नेस कें बहराने भूपाल।। (sri Naraayan singh – The battle of kanarpi Ghat - by Griersan] journal of Asiatic society – 1885)

मछली की ही एक अन्य कथा मिथिला के दरभंगा से जुड़ी हुई है जिसके अनुसार 'राजा शिवसिंह के काल में एक मलाहिन (मछुआरिन) अपनी बहू के साथ टोकरी भर मछली लेकर बाजार जा रही थी कि रास्ते में अचानक पेड़ से एक चील टोकरी पर झपटा मारते हुए एक मछली को लेकर उड़ गयी। यह देखकर उसकी बहू, सास को सांत्वना देने के बजाय हँसने लगी। उसका यह व्यवहार देखकर उसकी सास उससे लड़ पड़ी और झगड़ा काफी बढ़ता गया। संयोग से यह सारा वाकया राजा अपने महल से देख रहे थे और बिना किसी विलम्ब के उन्होंने लड़की को

आदेश भिजवाया कि वह अपने इस दुर्व्यवहार के कारण को स्पष्ट करे अन्यथा उसे मृत्यु दण्ड दिया जाएगा। लड़की ने उत्तर दिया कि दरअसल महाराज युधिष्ठिर के राज में मैं एक चील थी। महाभारत युद्ध के दौरान मैंने एक स्त्री की बाँह जिस पर 80 मन का बाजूबंद भी था, उसे इसी जगह पर लाकर मैंने खाया था। मुझे उस चील की इस तुच्छ लालच पर हँसी आ गयी कि उसने एक नगण्य (एक मात्र) मछली के ऊपर झपटा मारा। यह सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसी जगह एक साथ सैकड़ों गढ्ढे़ खुदवाए और अंत में उसी जगह पर उस बाँह की हड्डी मिली और वह सोने का बाजूबंद भी मिला। इसीलिए उस तालाब को 'हड़हा' अथवा हड्डी का तालाब कहा जाता है।' (नार्थ इंडियन नोट्स एंड क्वेरीज, वॉल्यूम-5, अगस्त-1895, पृष्ठ- 90)

बिहार और बंगाल में मछली के बिना कोई शुभ कार्य संपन्न नहीं होता है। विवाह में सगुन के रूप में दही और मछली भेजी जाती है, भोजपुरी का एक लोकगीत देखें-

पहीला सगुन दही माछर रे,
उपरा दंटाइल पान सगुनवा।
भल पावल लगनीया अकुताइल,

ताही सगुने अईहे रामचंदर दुलहा।। (भोजपुरी ग्राम्य गीत -डब्लू. जी. आर्चर)

यही नहीं वहाँ का मुख्य व्यंजन भी मछली रही है, उसके बिना जैसे सब निरर्थक है। मसलन एक गीत का सन्दर्भ देखें जिसमें सीता से राम पूछते हैं कि तुम्हें क्या चाहिए, क्या खाना है, मुझे बताइये। सीता कहती हैं कि राजा वैसे तो सब कुछ है अयोध्या में किन्तु यदि आप मेरे लिए चिल्ह्वा मछली मंगा दें तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा, गीत देखें-

बोलिया तए धनी बोलेलु हमें जुड़ावेले हो,
धनीया कवन बरन केरा साधा तो मोही समझावहु हो,
सारा पदारथ मोरा घरे एकहु ना भावेउ हो,
राजा चिल्हवा मछरिया के साधा त मोहीं के अनावहु हो।।

इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है कि अवध में मछली की संस्कृति सीता के साथ मिथिला से ही आयी हो, वैसे भी बिहार और बंगाल में मछली बहुतायत मात्र में उपलब्ध है इसलिए वहाँ के गीतों में, कथाओं में, कहावतों में मछली का सन्दर्भ अनिवार्य रूप से आता है। मसलन बांग्ला की एक लोककथा में एक नि:संतान राजा की दम्पति को मछली आश्वासन देती है कि राजा उदास मत हो, तुम्हारे घर एक सुन्दर लड़की का जन्म होगां (बंगाल, लोक साहित्य और संस्कृति- आशुतोष भटाचार्य) बंगाल की ही एक कहावत देखें - माछ आर अतिथि दुइ दिन परे बिष।। यानी मछली और अतिथि दो दिन बाद खराब हो जाते हैं, अच्छे नहीं लगते। (वही, बंगाल, लोक साहित्य और संस्कृति-आशुतोष भटाचार्य)

पंजाब में भी भी मछली का चिन्ह अत्यंत शुभ माना जाता है। ख्वाजा खिज्र-शिया मुसलमान एक जोड़ा मछली अपने दरवाजे पर लगवाते हैं। ये मछलियाँ एक दूसरे को देखती रहती हैं, हिन्दू भी इसी शुभ मानते हैं मछली को ख्वाजा खिज्र का वाहन भी माना जाता है।10 लोक ने

मछली के सौन्दर्य को अमरता प्रदान करते हुए उसे कामिनी की टिकुली तथा उसके कंत की पगड़ी की चमक से एक मेक कर दिया और बहुत ही सुन्दर पंक्तियों में गाया कि–

ताल में जे चमकेला ताल के मछरिया,
रन में जे चमके तरुआर।
दस पाँच बीच में सइयां के पगड़िया,
सेज पर टिकुली हमार।।

भारत ही नहीं बल्कि एशिया के कई देशों में मछली का बोलबाला रहा है। 'एशियाई यहूदियों में नव दम्पति धर्म- संस्कार के अनन्तर तुरंत ही मछलियों से भरी हुई एक बड़ी तश्तरी के ऊपर से तीन बार कूदते हैं। बहुत-सी मछलियाँ न हों तो एक जीवित मछली के ऊपर तीन छलाँगे मारी जाती हैं अथवा मछली के ऊपर सात बार आगे और पीछे कूदा जाता है। और यह प्रथा सन्तान- प्राप्ति के लिए प्रार्थना समझी जाती है।' (सरस्वती, भाग- 36, पृष्ठ- 438-439) भोजन में मछली का रिवाज मुगल काल में अधिक हुआ। पद्मावत में जायसी ने दिखाया है कि रत्नसेन ने अलाउद्दीन खिलजी के स्वागत में विविध व्यंजनों की व्यवस्था की है जिसमें मछली पर विशेष बल है। विविध प्रकार की मछलियाँ परोसी गयी हैं और यही नहीं उनके बनाए जाने की विधि की भी जायसी ने विधिवत चर्चा की है, पंक्ति देखें–

धरे मंछ पढ़िना औ रोहू। धीमर मारत करै न छोहू।।
संघ सुगंध धरे जल बाढ़े। टेंगनि मोइ टोइ सब काढ़े।।
सिंगी मंगुरी बीनि सब धरे। नरिया भोथ बाँब बंगरे।।

मारे चरक चाल्ह परहांसी। जल तजि कहाँ जाइ जल बासी।। 11 यहीं जायसी ने प्रतीकात्मक अर्थ में एक बड़ी ही सुन्दर बात भी कही है कि माटी खाने वाली मछरी जब मार दी जाती है तो भला भोगों में आकंठ डूबे हुए लोग कैसे बच सकते हैं। ये मछलियाँ मारने के लिए ही पाली गयी थीं। इस सरोवर में पड़कर कौन बच सका है?

अब इन मछलियों को विविध प्रकार से तैयार किया गया जिसकी बड़ी ही व्यवस्थित चर्चा जायसी ने की है मसलन वे लिखते हैं कि सबसे पहले मछली को काटा गया, फिर उसे दही से धोया गया, उसे निचोड़ा गया, मेथी डालकर सरसों के तेल में छौंका गया। तरह तरह से उन्हें भूना गया, आम की खटाई की फाँक उस पर डाली गयी, उस पर लौंग, मिर्च आदि छिड़का गया। उनके अण्डों को तल तल कर अलग रखा गया। अनेक भांति का भरता बनाया गया। उसमें इतना घी तैर रहा था कि हाथ ही डूब जाता था। बूढ़ा यदि उसे खा ले तो उसमें नया यौवन आ जाए। फिर वह सौ स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है–

घिरित परेह रहा तस हाथ पहुँच लहि बूड़।
बूढ़ खाइ तौ होइ नवजोबन सौ मेहरी लै ऊड़।।12

कबीर ने भी मछली की चर्चा की है किन्तु बड़ी ही हिकारत भरी दृष्टि से। दरअसल उन्हें बाह्य शुद्धता को न्यून बताना था इस चक्कर में बेचारी मछली उनकी दृष्टि का कोपभाजन बन गयी, पंक्ति देखें–

गंगा नहाए से कहौ को नर तरिगे,
मछरी न तरी जाको पानी में घर है।।

बहरहाल मध्यकाल के लगभग सभी कवियों ने नेत्र की सुन्दरता के लिए मछली का दृष्टांत प्रस्तुत किया है। रीतिकाल में यह प्रयोग सर्वाधिक हुआ है और इन्हीं उपमानों की अतिरेकता से खीझकर उसी रीतिकाल के ही रीतिमुक्त कवि ठाकुर ने लिखा कि–

सीख लीन्हो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीख लीन्हों यश औ प्रताप को कहानो है,
सीख लीन्हों कामधेनु कल्पतरु चिंतामणि,
.....
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।।

प्राचीन साहित्य में मछली का प्रयोग कई जगह काथारूढ़ि और काव्य रूढ़ि के रूप में हुआ है। उदाहरण के रूप में अभिज्ञानशाकुंतलम को देखें तो उसमें दुष्यंत द्वारा प्रदत्त अँगूठी को मछली निगल जाती है, और शाप के वशीभूत हो राजा शकुन्तला को भूल जाते हैं और बाद में उसी अँगूठी को देखकर उन्हें सब कुछ याद आ जाता है जो उस मछली के पेट से निकलती है। इस कथा में मछली की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है, यह देखा जा सकता है। यही नहीं, नाथ साहित्य के प्रमुख आचार्य मत्स्येन्द्रनाथ अथवा मछन्दरनाथ के जन्म से जुड़ी कई कहानियाँ मछली से ही सम्बंधित हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक नाथ – सम्प्रदाय में इनसे जुड़ी कई कथाओं का उल्लेख किया है मसलन शिव और पार्वती दोनों क्षीर सागर में टंग (डोंगी) पर बैठे थे, शिव जी पार्वती को गुप्त रहस्य बता रहे थे उसी समय मीन नाथ मछली बनकर टंग के नीचे बैठ गए। देवी को सुनते सुनते जब नींद आ गई तब भी मीन नाथ हुँकारी भरते रहे। इस आवाज से जब देवी की निद्रा टूटी तो वे कह उठी कि मैंने तो महाज्ञान सूना ही नहीं। शिव विचारने लगे कि यह हुँकारी किसने भरी। देखते हैं तो टंग के नीचे मीन नाथ हैं। उन्होंने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि तुम एक समय महाज्ञान भूल जाओगे।' (नाथ-सम्प्रदाय, पृष्ठ-45) इसी कथा का एक अन्य पाठ इस प्रकार है कि उधर शिव जब पार्वती को अमरकथा सुना रहे थे तो इधर कविनारायण मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में भृगुवंशीय ब्राह्मण के घर अवतरित हुए थे पर गड़ंत योग में पैदा होने के कारण उस ब्राह्मण ने उन्हें समुद्र में फेंक दिया था। एक मछली उन्हें बारह वर्ष तक निगले रही और वे उसके पेट में बढ़ते रहे। पार्वती को सुनाई जाने वाली अमरकथा को मछली के पेट से इस बालक ने सुना और बाद में शिव जी द्वारा अनुगृहीत और उद्धृत होकर महासिद्ध हुआ।' (वही, नाथ-सम्प्रदाय, पृष्ठ-49) मछली से जुड़ी एक अन्य रोचक और देखें – कथासरित्सागर की एक कथा में मछली के हँसने का प्रसंग आया है जिसके अनुसार 'राजा योगनंद के अन्तःपुर से उसकी महारानी किसी ब्राह्मण अतिथि को झरोखे से देख रही थी। राजा ने ब्राह्मण को दुराचारी जानकर उसके वध की आज्ञा दे दी। ब्राह्मण को जब वद्ध्य भूमि में ले जाया जा रहा था तो उसे देखकर बाजार में रखा हुआ मृत मत्स्य हँसने लगा। जब राजा को यह मालूम हुआ तो उन्होंने ब्राह्मण का वध रोक दिया

और मछली के हँसने का कारण जानने को उद्धत हुआ। राजा ने वररुचि से पूछा कि मछली के हँसने का क्या कारण है तो वररुचि ने कहा 'सोचकर कहूँगा'। सरस्वती के आदेश से वे रात भर एक ताल वृक्ष पर बैठे और देखा कि वहाँ एक राक्षसी आयी। बच्चों के भोजन मांगने पर वह राक्षसी बोली कि अभी प्रतीक्षा करो, प्रातः काल तुम्हें ब्राह्मण का मांस दूँगी। आज वह मारा नहीं गया। बच्चों ने पूछा कि आज वह क्यों नहीं मारा गया? तब राक्षसी ने कहा कि उसे देखकर मरा हुआ मत्स्य भी हंसने लगा। बालकों के यह पूछने पर कि वह मृत मत्स्य क्यों हंसा? राक्षसी बोली कि राजा की सभी रानियाँ भ्रष्ट हो गयी हैं। राजा के रनिवास में अनेक पुरुष स्त्रियों के रूप में भरे हैं किन्तु यह बेचारा ब्राह्मण बिना अपराध ही मारा जा रहा है, ऐसा सोचकर मत्स्य हँसा था।' 12

आनंद रामायण में प्रसंग आया है कि जब ब्रह्मा जी से रावण ने यह सुना कि दशरथ की स्त्री कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न बालक राम के हाथों उसकी मृत्यु सुनिश्चित है तो उसने दशरथ को पराजित कर, उनकी नौका को पैर के प्रहार से तोड़कर सरयू में डुबो दिया तथा कोसलनगर में जाकर राजा को जीत लिया साथ ही कौसल्या का हरण करके वह लंका को चला। रास्ते में क्षार समुद्र में रहने वाली तिमिंगल मछली को देखकर उसने कौसल्या को पिटारी में बंद करके उसे सौंप दिया जिससे कोई देवता उसे खोज न सकें। वह मछली उस पिटारी को मुख में लेकर सुखपूर्वक समुद्र में घूमने लगी।.....

संयोग से दशरथ और सुमंत भी उसी टापू के पास पहुँच गए और पिटारी पर उनकी दृष्टि पड़ी और वहीं उन्होंने समस्त घटनाक्रम जानकार कौसल्या से गान्धर्व विवाह कर लिया।13

आधुनिक साहित्य में भी मछली का उल्लेख कई कवियों ने किया है। जयशंकर प्रसाद ने कामायनी के चिंता सर्ग में लिखा है कि देव संस्कृति के जलमग्न हो जाने के बाद चिंतित मनु विचार करते हैं कि जिन भवनों और प्रासादों से सुगंधि झर रही थी वहाँ अब तिमिंगलों की भीड़ तैर रही होगी–

रत्न सौंध के वातायन, जिनमें आता मधु मदिर समीर,
टकराती होगी अब उनमें, तिमिंगलों की भारी भीड़।।14

प्रयोगवादी कवि अज्ञेय की एक कविता की पंक्ति देखें–

तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ लहरों से करती हैं,
जिनमें वे फँसने नहीं आती हैं।।

अज्ञेय ने सोन – मछली कविता भी लिखी जिसमें मछली को जिजीविषा का प्रतीक बताया और लिखा कि–

हम निहारते
रूप काँच के पीछे
हाफ रही है, मछली।
रूप तृषा भी

(और काँच के पीछे)
है जिजीविषा।।

इस तरह से मछली की यात्रा मत्स्यपुराण से लेकर आधुनिक साहित्य तक अबाध गति से चलती रही। जहाँ उसे सृष्टि का आदि जीव होने का गौरव प्राप्त है वहीं दूसरी तरफ जल के प्रति अपनी एकनिष्ठता और अपने नेत्रों के सौन्दर्य के कारण वह काव्य उपमानों में सिरमौर रही है। रीतिकालीन कवि घनानंद ने अपनी तड़प को मछली की तड़प से तादात्म्य करते हुए यों ही नहीं लिखा था कि-

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कों लाय कलंक निरास हवै कायर त्यागत प्रानै।।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़ मीत के पानि परें को प्रमानै।।
या मन की जु दसा घनआनंद जीव कि जीवनि जान ही जानै।।

जल से विलग होकर मछली कायरों की तरह अपने प्राण त्याग देती है और जल को कलंकित कर जाती है। दरअसल जल जो कि स्वयं जड़ तत्त्व है वह सजीव मछली की पीड़ा को क्या समझेगा किन्तु घनानंद को इस बात का तोष है कि उनकी प्रेमिका सुजान जड़ नहीं है, चेतन है, वह उनकी पीड़ा अवश्य समझेगी। यानी मछली को जड़ जल से प्रीति करनी ही नहीं चाहिए थी, किन्तु प्रीति यह सब देखती कहाँ है, वह तो बस हो जाती है इसीलिए मछली की प्रीति अजर अमर है।

सन्दर्भ :

1. रामचरितमानस, बालकाण्ड 302/8, 2. मत्स्यपुराण , अध्याय – 1/18– 35, अध्याय - 2/17–21, 3. महाभारत, प्रथम खंड, आदिपर्व, तिरसठवाँ अध्याय, श्लोक संख्या– 50–82, पृष्ठ, 175–177, 4. रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, 5. रामचरितमानस, अयोध्याकांड, 6. वही, अयोध्याकांड, 7. वही, 8 . दास्ताने अवध– पृष्ठ–107 योगेश प्रवीन, 9 . वही, पृष्ठ– 108, 10 . पंजाब नोट्स एंड क्वेरीज, 11. पद्मावत, बादशाह भोज खंड पृष्ठ–582, 589–590, संजीवनी टीका, वासुदेवशरण अग्रवाल, 12. कथासरित्सागर, प्रथम खंड, प्रथम लम्बक, प्रथम तरंग, पृष्ठ–57–59, 13. आनंदरामायणं, सर्ग –1, श्लोक - 38–59, पृष्ठ– 3–5, 14. कामायनी, चिंता सर्ग, जयशंकर प्रसाद

डा. सत्य प्रिय पाण्डेय, लोक साहित्य विमर्शकार, पता – 13/258, ग्राउंड फ्लोर, वसुंधरा, गाजियाबाद, (उ.प्र.), पिन– 201012, मोबाइल नंबर– 8750483224

✧ ✧ ✧

खोखा
(राजस्थानी कहानी)

मूल : हनुमान दीक्षित
अनुवाद : डॉ. नीरज दइया

आंधी कुछ कम हुई। पर अभी भी आस-पास गर्द होने से धूप मंद प्रतीत होती थी। गाड़ी में उमस थी। साहब के सिर पर पसीने की धाराएं बह रही थी। उन्हें परेशान जान कर अंगरक्षक हरजीराम ने ठंडे पानी का गिलास पकड़ाया। पानी पीते ही कजेले में कुछ ठंडक पहुंची। अब साहब गाड़ी की पिछली सीट पर सिर टिकाए, आंखें बंद किए चालीस वर्षों पहले की दुनिया में पहुंच गए। धीरे-धीरे बाल्यकाल की बातें किसी फिल्म की मानिंद घूमने लगी।

मा णकसर पंचायत में अकाल राहत कार्य का निरीक्षण करने कलेक्टर डी.सी. शर्मा अपने पूरे दल-बल के साथ तहसील हैड क्वाटर से सुबह ही रवाना हो गए। एम्बेसडर गाड़ी की पीछली सीट पर बाईं तरफ वे खुद और दाईं तरफ उपखंड अधिकारी एस.एल. मीणा बैठे थे। ड्राइवर के पास वाली सीट पर साहब के अंगरक्षक स्टेनगन लिए बैठे थे। उनकी गाड़ी के पीछे क्षेत्र के तहसीलदार और अन्य कर्मचारियों से लदी गाड़ी धुआं छोड़ते हुए भाग रही थी। काफी देर तक तो कलेक्टर साहब एस.डी.एम. साहब से प्रदेश की समस्याओं के बारे में बातचीत करते रहे पर थोड़ी देर बात पता ही नहीं चला कि वे कब देश-दुनिया की समस्याओं में उलझ गए। पर बातों से ना तो समस्याओं का समाधान हुआ और ना ही राजनीति का सार निकला। दोनों अधिकारी गाड़ी में अपनी अपनी सीट पर बैठे खड़की से दाएं-बाएं देखने लगे।

सड़क पर जगह-जगह खढ़े होने से गाड़ी ऊपर-नीचे हो रही थी। जहां तक नजर जाती चारों तरफ रेत का समंदर फैला था। हरियाली का नामो-निशान नहीं था। कहीं-कहीं ठूंठ हुई खेजड़ी नहर आती। बूई-बांठ, कैर-बोझां तो कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे। ऐसा लगता था कि उन्हें तो भूखे पशु-जानवार खा गए। जगह-जगह मृत पशुओं की हड्डियां बदबू मारती और उन पर चील-कौए घूमते।

भादवा जाने को था पर गर्मी जेठ मास जैसी थी। आकाश में सूरज ऊपर आ गया था। धूप तीखी हो चुकी थी। अचानक उत्तर दिशा की तरफ काली-पीली घटाओं सी आंधी छा गई। देखते ही देखते अंधकार हो गया। चारों तरफ रेत का साम्राज्य स्थापित हो गया।

सिर से लेकर पैरों तक रेत-ही-रेत थी। जो रेत आदमियों के पैरों तले रौंदी जाती थी वही हवा का सहारा लेकर सिर पर चढ़ गई थी।

कलेक्टर साहब ने घड़ी की तरफ देखा। दिन के साढ़े दस बजने को थे। आंधी के कारण ड्राइवर को गाड़ी चलाने में परेशानी होने लगी। गाड़ी धीमी गति से चल रही थी। एस.डी.एम. मीणा ने निवेदन किया- क्यों सर, गाड़ी थोड़ी देर रोक ली जाए? मौसम खराब हो गया है।

'गाड़ी रोकने की आवश्यकता नहीं है। रेत और मेरे बीच बहुत गहरा संबंध रहा है। मैं रेत में ही जन्मा, रेत से ही खेला और रेत में ही पला-बढ़ा। यह रेत तो मेरी सांस-सांस में रची-बसी है। शायद आपको पता नहीं होगा कि मेरे पिताजी माणकसर पंचायत से जुड़ी सांवतसर पंचायत हलके के पटवारी रहे हैं। कलेक्टर शर्मा ने एक सांस में प्रत्युत्तर दिया।

आंधी कुछ कम हुई। पर अभी भी आस-पास गर्द होने से धूप मंद प्रतीत होती थी। गाड़ी में उमस थी। साहब के सिर पर पसीने की धाराएं बह रही थी। उन्हें परेशान जान कर अंगरक्षक हरजीराम ने ठंडे पानी का गिलास पकड़ाया। पानी पीते ही कजेले में कुछ ठंडक पहुंची। अब साहब गाड़ी की पिछली सीट पर सिर टिकाए, आंखें बंद किए चालीस वर्षों पहले की दुनिया में पहुंच गए। धीरे-धीरे बाल्यकाल की बातें किसी फिल्म की मानिंद घूमने लगी।

सांवतसर गांव तब छोटा ही था। कच्चे कमरों का स्कूल। चारों तरफ मिट्टी की बनी दीवार। पंडित मोतीलालजी मास्टर होते थे। घुटनों तक ऊंची धोती और ऊपर अंगरखी पहने। सिर पर एकदम सफेद साफा। ललाट पर चंदन की टीकी। इस पहनावे में वे बहुत जचते थे। पूरा गांव उनको 'पंडजी' कहता था। गांव के बहुत माने हुए व्यक्ति थे।

स्कूल और गांव के बीच मोटी जांटी हुआ करती थी। उसकी सांगरी की सब्बजी मेरे दादीमां को बहुत स्वादिष्ट लगता था। उसके 'खोखे' (सूखी पकी फलियां) हम स्कूली बच्चों को बहुत पसंद थी। खोखो की स्मृति में उलझी बाल्यकाल की सखी चांदकंवर का स्मरण हो आया। मेरे साथ घर और स्कूल में दिन भर खेला करती थी। छोटा-सा कुर्ता और ऊंचा-सा घाघरा पहने वह गणगौर जैसी रूपवती लगती। मुझ से जांटी पर चढ़ा नहीं जाता था। पर वह दौड़ती हुई गिलहरी की भांति चढ़ जाती थी। मैं हमेशा से ही गोल-मटोल शरीर का था। वह मुझे लड्डू-लड्डू कह कर छेड़ती थी। जब शाम ढले गुरुजी स्कूल में पहाड़े बुलवाते थे तब पीछे से मेरे चिकोटी काटती और पूछती थी- लड्डूड़े, खोखा खाने चलेगा क्या?

मैं गुरुजी के डर से बिना पीछे देखे ही हां कह देता था।

उन दिनों पटवारी गांव में बड़ा अधिकारी समझा जाता था। पटवारी का लाडला होने से पूरा गांव मुझे आंखों पर बैठाए रखता था। मैं चांदकंवर के साथ जब उसके घर जाता था तो ठकरानी

जी मुझे बहुत प्यार करती। कांसी के कटोरे में मलाई और दूधा डाल कर पिलाती थीं। खेत में पहुंचता तो ठाकर साहब अपने हाथों से मतीरे फोड़कर खिलाते। उसकी दादीमां गर्मागर्म सिटों से दाने निकाल कर देती। पर मुझे तो सबसे स्वादिष्ट उस जांटी के खोखे लगते थे। पर वह खोखो आसानी से नहीं खिलाती थी। वह जांटी पर चढ़कर खोखे तोड़ती थी। जब मैं उसे खोखे नीचे जमीन पर गिराने को कहता तब वह कहती- हाथों को आगे कर ले।

मैं भिखारी जैसे हाथ पसार देता तो वह खोखो को खाकर उनके बीज नीचे गिराती और मुझे ढेंगा दिखाकर हंसती थी। मैं रूठ कर रवाना हो जाता। फिर वह जोर से आवाज लगती- ले रे लढूड़े! खोखा खा ले! इसके साथ ही बहुत सारे खोखे नीचे गिरा देती थी। इसके साथ ही चेतावनी देती- खा खोखा, पी पानी, डकार करे तो तू जाने!

मुझे खोखा खाने के बाद जोर की प्यास लगती। थोड़ी देर बाद खूब उलटी होती। तब उसकी मां उसे डांटती। वह जब मुझे अधिक छेड़ती तो मैं उसकी पिटाई कर देता था। पर उसने कभी जबाब में हाथ नहीं उठाया।

अचानक गाड़ी धचके के साथ रुकी। कलेक्टर साहब ने आंखें खोल कर देखा। माणकसर पंचायत घर के आगे गांव के लोगों का हजूम था। गांव के मौजीज लोग हाथों में मालाएं लिए स्वागत को खड़े थे। स्वागत के बाद कलेक्टर साहब ने लोगों की समस्याएं सुनी। अकाल राहत कामों को देखा। लोगों को चारे-पानी की समस्याओं का जल्द निराकरण का भरोसा दिया।

शाम ढले कलेक्टर साहब की वापसी होने लगी तब श्रीमती चांदकंवर राठौड़ उपसरपंच ग्राम पंचायत माणकासर खोखों का पैकेट देते हुए बोली- 'मुझे पहचना क्या?'

समय का पहिया अपनी गति से गतिमान था। मैं पांचवी पास कर माणकसर मिडिल स्कूल में पढने जाने लगा। मैं सुबह लड़कों के संग स्कूल जाता और शाम ढले लौटता तब वह अपने घर के आगे खोखे लिए इंतजार करती मिलती। मैं खोखे खाते हुए जब घर पहुंचता तो मेरी मां कहा करती थी- 'इतने खोखे मत खाया कर। यह कोई खोखे खाने का समय है? पर ठाकुर साहब की छोरी मानती नहीं।

मेरे पिताजी का प्रमोशन होने से हमें दूसरी जगह जाना पड़ा। मेरी रवानगी के समय चांदकंवर मेरे पास आकर रुंआसी होकर बोली- 'धर्मा, अब फिर हमारा मिलना इस जन्म में नहीं होगा। तुम तो पढ़-लिख कर अफसर बनोगे। तुम्हारे पीछे पढ़ी-लिखी सुंदर-सी औरत आ जाएगी। तुम मुझको क्यों याद करोगे?'

मैंने जवाब दिया- 'शहर में बदली हो गई तो क्या, हमारे मन तो पास-पास रहेंगे। मैं तुम्हें कैसे भूल सकूंगा।'

उसकी आंखों में आंसू थे। उन दिनों मैं समझ नहीं सका कि वे प्रेम के आंसू थे या कि विदाई की वेला के। वह जल्दी से पीछे मुड़ती हुई बोली- 'मेरी गलती माफ करना। मुझे याद करते रहना।'

वह दिन और आज का दिन। पूरे चालीस वर्ष बीत गए। फिर मिलना नहीं हुआ। वह कहां शादी होकर गई, कुछ मालूम नहीं।

अचानक गाड़ी धचके के साथ रुकी। कलेक्टर साहब ने आंखें खोल कर देखा। माणकसर पंचायत घर के आगे गांव के लोगों का हजूम था। गांव के मौजीज लोग हाथों में मालाएं लिए स्वागत को खड़े थे। स्वागत के बाद कलेक्टर साहब ने लोगों की समस्याएं सुनी। अकाल राहत कामों को देखा। लोगों को चारे-पानी की समस्याओं का जल्द निराकरण का भरोसा दिया।

शाम ढले कलेक्टर साहब की वापसी होने लगी तब श्रीमती चांदकंवर राठौड़ उपसरपंच ग्राम पंचायत माणकासर खोखों का पैकेट देते हुए बोली- 'मुझे पहचना क्या?'

यह सुनकर और खोखो का पैकेट देख साहब का हृदय खिल उठा। उन्होंने कहा- 'आपसे मिलने की उम्मीद नहीं थी। मैं गाड़ी में पूरे रास्ते हमारी पुरानी बातों का स्मरण करता रहा। अब इतने समय बाद क्या कुछ हुआ बताओ।'

श्रीमती चांदकंवर राठौड़ ने जवाब दिया- 'मेरी शादी माणकासर के ठाकुर खानदान में हुई। विवाह के दस साल बाद मेरे पति का स्वर्गवास सर्प-दंश से हो गया। पुराने विचारों के ससुराल वालों ने मुझे सती करने के लिए बहुत जोर लगाया। लेकिन मैं सती नहीं हुई। मेरे दो लड़के और एक लड़की है। बड़ा लड़का फौज में मेजर है। छोटा वकालत करता है। अच्छा वर देख लड़की के हाथ पीले कर दिए हैं। मैं दूसरी बार ग्राम पंचायत की उपसरपंच बनी हूं।'

कलेक्टर साहब ने खोखों को सिर से लगाते हुए कहा- 'वे खोखे बचपन के प्रेम की प्रसादी थे पर यह खोखे जीवन के कुरुक्षेत्र में खड़ी, नए युग का सूत्रपात करती देवी का प्रसाद है।'

(खोखा = खेजड़ी की सूखी पकी फलियां खोखा कहलाती है।)

डॉ. नीरज दइया

रघुवीर सहाय का काव्य-संघर्ष

डॉ. सुभाष चौधरी

यह कविता पहले पहल 'सीढ़ियों पर धूप में' काव्य-संग्रह में प्रकाशित हुई है, जिसमें कवि अपने पिता से आशीर्वाद और शक्ति की कामना करता है। 'मेरा एक जीवन है' कविता में रघुवीर सहाय पारिवारिक और सामाजिक जीवन संबंधों के अलावा एक दूसरे निजी जीवन पर भी जोर देते हैं। नई कविता का कवि जीवन व्यथा और अनुभव की प्रामाणिकता पर जोर देता रहा है। 'एको अहम बहुस्याम' कविता में रघुवीर सहाय व्यक्ति-सीमाओं को तोड़कर मानवीय संवेदना में डूब जाना चाहते हैं, तो दूसरी ओर 'पीड़ित पिता की छवि' शीर्षक रचना में अंत:यथार्थ को सजीव बना देते हैं।

रघुवीर सहाय 'दूसरा सप्तक' के मुख्य कवि हैं। उनके रचनात्मक जीवन में सदा एक पत्रकार और राजनीतिक विचारक भी अंतर्भुक्त रहा है। अपने जीवन में वे 'आकाशवाणी' के साथ ही कल्पना, कौमुदी, नवजीवन, नवभारत टाइम्स, दिनमान, प्रतीक, वाक-आदि पत्र-पत्रिकाओं से जुड़कर अपनी रचनाशीलता को बढ़ावा देते रहे और विचार स्वातंत्र्य के लिए संघर्ष करते रहे। सीढ़ियों पर धूप में, आत्महत्या के विरुद्ध, हँसो हँसो जल्दी हँसो, लोग भूल गए हैं, कुछ पते कुछ चिठ्ठियां, एक समय था-आदि उनके मुख्य काव्य संग्रह है, जो उनके वैचारिक संघर्ष और राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ को रेखांकित करते हैं। 'लिखने का कारण' उनका एक मुख्य निबंध संग्रह है, जिसमें रघुबीर सहाय ने रचना प्रक्रिया, मानसिक दबावों और भौतिक संघर्ष के बारे में बताया है। 'कुछ पते कुछ चिठ्ठियां' की भूमिका मे रघुवीर सहाय लिखते हैं कि 'जिस तरह रचनात्मकता और आजादी एक ही मानवीय आकांक्षा के पर्याय हैं, उसी तरह समता की लड़ाई और कविता भी एक ही मानवीय उत्कर्ष के पर्याय हैं। बहुत सी बहसे इनकी तदर्थ व्याख्या करने से पैदा होती हैं परंतु रचनात्मकता की लड़ाई में कवि के लिए आज के संघर्ष की रणनीति नहीं बताती।' भारत भूषण अग्रवाल ने रघुवीर सहाय की कविताओं में सभी मानवीय कार्य-व्यापारों की अर्थ-छवियों को विस्तृत भूमि पर देखा है और पाया है कि 'कवि का संबंध ठोस वस्तुगत

संसार से प्रगाढ़तर होता गया है। अपनी रचना प्रक्रिया के प्रति सजग और आत्मचेता रघुवीर सहाय ने नागर मन की भाव प्रवणता, सूक्ष्मदर्शिता और तटस्थ निर्ममता अब किसी नए परिचय की मोहताज नहीं है। रघुवीर सहाय का काव्य संसार जितना निजी है उतना ही हम सबका है-एक गहरे और अराजनैतिक अर्थ में जनवादी। भीड़ से घिरा एक व्यक्ति जो भीड़ बनने से इनकार करता है और उससे भाग जाने को गलत समझता है। रघुवीर सहाय का साहित्यिक व्यक्तित्व यही है। 'कुछ पते कुछ चिठ्ठियां' काव्य- संग्रह कवि ने अपने पिता को समर्पित किया है। पिता के प्रति कवि का श्रद्धा-भाव, अनाहत जिजीविषा, पारिवारिक - सामाजिक संबंध और प्रार्थना-भाव सभी एक साथ अभिव्यंजित है।

शक्ति दो, बल दो, हे पिता
जब दुख के भार से मन थकने आय
पैरों में कुली की सी लपकती चाल छटपटाय
इतना सौजन्य दो कि दूसरों के बक्स बिस्तर घर तक पहुँचा आएं
कोट की पीठ मैंली न हो ऐसी दो व्यथा
शक्ति दो।

यह कविता पहले पहल 'सीढ़ियों पर धूप में' काव्य-संग्रह में प्रकाशित हुई है, जिसमें कवि अपने पिता से आशीर्वाद और शक्ति की कामना करता है। 'मेरा एक जीवन है' कविता में रघुवीर सहाय पारिवारिक और सामाजिक जीवन संबंधों के अलावा एक दूसरे निजी जीवन पर भी जोर देते हैं। नई कविता का कवि जीवन व्यथा और अनुभव की प्रामाणिकता पर जोर देता रहा है। 'एको अहम बहुस्याम' कविता में रघुवीर सहाय व्यक्ति-सीमाओं को तोड़कर मानवीय संवेदना में डूब जाना चाहते हैं तो दूसरी ओर 'पीड़ित पिता की छवि' शीर्षक रचना में अंत:यथार्थ को सजीव बना देते हैं। पिता की छवि में अपने दुख को देखना एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। यह पिता की अनुकृति है।

यही मैं हूँ
और जब मैं यही होता हूँ
थका, या उन्हीं के से वस्त्र पहने, जो मुझे प्रिय हैं-
दुखी मन में उतर आती है पिता की छवि
अभी तक जिन्हें कष्टों से नहीं निष्कृति
उन्हीं अपने पिता की मैं अनुकृति हूँ
यही मैं हूँ।

फायड की 'लिबिडो' अर्थात 'जीवनेच्छा' की पिता से अचेतन संपृक्ति डॉक्टर में पिता को रूपांतरित कर देती है। आत्म की अनुभूति और यथार्थ को पीड़ित पिता की मन: प्रतिमा में देखना इसी तरह की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा है। लोक जीवन में पैतृक

संपत्ति का अधिकारी उसका पुत्र होता है। पितृ ऋण से मुक्ति और श्राद्ध भाव भी इससे संपृक्त है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बच्चा मनुष्य का पिता होता है। पिता जैसी आदतें, संस्कार, मनोभाव, वस्त्र आदि का प्रिय लगना, किसी अन्य व्यक्ति में ऐसे गुणों को देखना, अपने मनोभावों को विस्थापित कर देना मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। मुक्तिबोध के शब्दों में इसे बाह्य अनुभवों का आभ्यंत्रीकृत रूप कह सकते हैं। रघुवीर सहाय की 'बसंत', 'प्रभाती', 'पानी के संस्मरण', 'बौर' आदि कविताएँ अचेतन प्रेरणाओं की सहज अभिव्यक्ति है। कवि का भावाकुल हृदय अभिव्यक्ति के लिए तड़प रहा है।

सिनेमा की रीलों सा कस के लिपटा है सभी कुछ
मेरे अंदर
कमानी खुलने को भरती है हुमास।

नया कवि वैचारिक संघर्ष, अनुभव की प्रामाणिकता और यथार्थ के अन्वेषण पर जोर

'आत्म हत्या के विरूद्ध' रघुवीर सहाय कि लम्बी कविता है, जिसमें कवि ने यथार्थ संवेदना और राजनैतिक विसंगतियों को भाषा और शिल्प के आधार पर साधने का प्रयास किया है। कवि आत्म-हत्या के विरूद्ध अर्थात अपने क्षत-विक्षत आत्म को- दूसरे शब्दों में, अपने आत्म होने की अवशिष्ट संभावना को- नितांत अनात्म और आत्मरोधी यथार्थ की सबसे तेज भंवर में डाल कर ही उसके अस्तित्व को स्थापित करने का जोखिम भरा प्रयास करते हैं। कवि निरंतर आस्था-विश्वास के साथ संघर्षरत है। चेतना के एक केंद्र के विचलित हो जाने पर, कवि दूसरे केंद्र की ओर अपनी चेतना को एकाग्र करने की कोशिश करता है, जहाँ यथार्थ का दबाव, संघर्ष और चुनौतियां सबसे प्रखर और प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। राजनैतिक-सामाजिक यथार्थ, संघर्ष, विसंगति और विषमताओं को कवि ने अंतः प्रेक्षित किया है।

देता रहा है। रघुवीर सहाय 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में लिखते हैं कि 'विचार वस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है और यह तभी संभव है जब हमारी कविता की जड़े यथार्थ में हों।'

रघुबीर सहाय एक ऐसे कवि है जो अपनी कविता को बोलचाल की भाषा, सपाटबयानी और गद्य की रचनाशीलता से अभिव्यंजक बनाते हैं। मध्यवर्गीय जीवन का संघर्ष, बिखराव, विसंगति, विद्रूपता, शोषण तंत्र, राजनैतिक विषमताएँ, अवसरवादिता, नैतिक बोध, मानवीयता से जुड़े सवाल, पैदल आदमी, सड़क, पहाड़, हवा, पानी, प्रेम, प्रकृति, धूप, योरोप और सारी दुनिया

उनके काव्य-विषय बन जाते हैं। डॉ. नामवर सिंह उनके कलात्मक शिल्प को 'असाधारण, साधारणता का शिल्प' मानते हैं। मनुष्य परिस्थितियों का दास है। परिस्थितियों से ही सभ्यता, संस्कृति और समाज का निर्माण होता है। कवि लोकतंत्र में समाजवाद का सपना देखता है। मानवीय मूल्यों के प्रति वह सदैव आस्थावान बना रहता है। 'अभी जीना है' कविता मानवीय जिजीविषा और संघर्ष-क्षमता की ही अभिव्यंजना है। 'दुनिया' शीर्षक कविता में कवि संघर्ष को आमने-सामने समझने की कोशिश करता हैं। सड़क पर रपट, पैदल आदमी, अधिनायक, आपकी हँसी, चेहरा, दो अर्थ का भय, नेता क्षमा करे, हमारी हिंदी, मांग रहे हैं जीवन, समाधि लेख, यथार्थ आदि कवितायें लोकतंत्र और जीवन के छोटे-छोटे किन्तु महत्वपूर्ण अनुभव-समुच्चयों को रेखांकित करने वाली हैं। 'रामदास' कविता प्रजातंत्र में कुशासन और अपराधीकरण की प्रवृति का अतियथार्थवादी चित्रण है। 'चेहरा' कविता राजनैतिक अवसरवादिता का कच्चा चिटठा और क्रूर व्यंग्य है। 'स्वाधीन व्यक्ति' शीर्षक कविता आस्था, विशवास, मौलिक अधिकार, शासन और शक्ति से संघर्ष को रेखांकित करती हैं। प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार इस कविता में कवि की आत्मीयता और खीज के मनोभाव एकसाथ विद्यमान हैं। इस द्वैत मनोभाव का अधिक सांकेतिक और प्रभावशाली वर्णन तथा 'क्रोध' व 'न्योछावर' की भंगिमा मिलकर जनता के प्रति रघुवीर सहाय की दृष्टि को परिभाषित करते हैं। एक मेरी मुश्किल है जनता जिससे मुझे नफरत है सच्ची और निस्संग जिस पर कि मेरा क्रोध बार-बार न्योछावर होता है।

'आत्म हत्या के विरूद्ध' रघुवीर सहाय कि लम्बी कविता है, जिसमें कवि ने यथार्थ संवेदना और राजनैतिक विसंगतियों को भाषा और शिल्प के आधार पर साधने का प्रयास किया है। कवि आत्म-हत्या के विरूद्ध अर्थात अपने क्षत-विक्षत आत्म को-दूसरे शब्दों में, अपने आत्म होने की अवशिष्ट संभावना को- नितांत अनात्म और आत्मरोधी यथार्थ की सबसे तेज भंवर में डाल कर ही उसके अस्तित्व को स्थापित करने का जोखिम भरा प्रयास करते हैं। कवि निरंतर आस्था-विशवास के साथ संघर्षरत है। चेतना के एक केंद्र के विचलित हो जाने पर, कवि दूसरे केंद्र की ओर अपनी चेतना को एकाग्र करने की कोशिश करता है, जहाँ यथार्थ का दबाव, संघर्ष और चुनौतियां सबसे प्रखर और प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। राजनैतिक-सामाजिक यथार्थ, संघर्ष, विसंगति और विषमताओं को कवि ने अंत: प्रेक्षित किया है। जहाँ रघुवीर सहाय का काव्य-संघर्ष साधारण से असाधारण बनने और गहराने लगता है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में साधारण से साधारण जन समस्याओं और संवेदनाओं को काव्य विषय बनाने के कारण रघुवीर सहाय की कविताएँ आज भी प्रासंगिक जान पड़ती है।

डॉ. सुभाष चौधरी, एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, राम लाल आनंद महाविद्यालय, नई दिल्ली
मो. : 9911219109, ई–मेल : dr.subhash22@yahoo.com

मोबाइल नम्बर

जितेन्द्र शिवहरे

घड़ी की सुईयां आज बड़ी ही सुस्त चल रही थी। प्रगति एक-एक मिनट की गिनती कर समय निकाल रही थी। मोबाइल पर खेल खेलना भी उसे आज अरूचिपूर्ण लग रहा था। घर के कामकाज वह दो-दो बार कर चूकी थी। आज घर में उसके लिए कोई कार्य नहीं शेष था जिसे कर वह शाम तक समय निकाल सके। दोपहर की नींद लेने का विचार कर जैसे ही लेटना चाहा, करण का स्मरण आते ही आंखे खुल गई। घर के बाकी सदस्य थे जो कुलर की ठण्डी-ठण्डी हवा में घोड़े बेचकर सो रहे थे। प्रगति ने आज का अखबार उठा लिया जिसे वह सुबह ही पूरा पढ़ चूकी थी।

प्रगति को उसकी भाभी दिव्या ने करण का मोबाइल नंबर लाकर दिया। दिव्या चाहती थी कि प्रगति स्वयं करण से बात करे। बाहर जाकर मिले-जुले ताकी दोनों के परस्पर विचार साझा हो सके। वे दोनों एक-दूसरे के विषय में अधिक से अधिक जाने, जिससे विवाह उपरांत कोई परेशानी न हो। प्रगति और करण दोनों के परिवारों ने मिलकर इन दोनों के परिणय सूत्र बंधन का विचार आपसी सहमती से तैयार किया है। भावी वर वधू को देखने-दिखाने की घड़ी नजदीक आ रही थी। इससे पूर्व की दोनों एक-दूसरे को प्रत्यक्ष देख पाते, करण के वयोवृद्ध दादाजी स्वर्गवासी हो गये। फलस्वरूप प्रगति के घर जाकर उसे देखने का विचार निरस्त कर दिया गया। करण के पिता दिलीप सिंह ने दोनों की सगाई पर ही देखने-समझने की रस्म आयोजित करने का प्रस्ताव प्रगति के परिवार के सम्मुख रख दिया। करण को प्रगति के पारिवारिक सदस्य समाज के परिचय सम्मेलन में देख चुके थे। सो दिलीप सिंह के प्रस्ताव को प्रगति के पिता मिश्रीलाल राय ने सहमती प्रदान कर दी। प्रगति अपने हाथों में मोबाइल लेकर बैठी थी। घर वालों के सामने करण से बात कैसे करे? दिव्या ने प्रगति की विवशता जान ली। उसने प्रगति को उपाय सुझाया की रात के भोजन के उपरांत टेरिस पर जाकर वह करण से बात कर सकती है। प्रगति प्रसन्न हो उठी। करण से बात करने के विषय में सोचकर ही उसके हृदय की गति बढ़ जाया करती। दिन था की ढलने का नाम ही नहीं ले

रहा था। टीवी सीरियल देख-देखकर प्रगति बोर चुकी थी। कई बार तो उसका मन किया की बाहर जाकर करण से फोन पर बात कर लें। मगर इस कड़ी धूप में कौन सा बहाना बनाकर घर से बाहर निकला जाये? प्रगति ने अपनी भाभी दिव्या को मस्का लगाया।

''चलो न भाभी! बाहर चौराहे पर जाकर जूस पीकर आते है?''

''पागल है क्या? इस कड़ी धूप में बाहर जाना! न बाबा। मां जी गुस्सा करेंगी।''

''चलो न भाभी! जल्दी लौट के आ जायेगें।''

''और मां जी से क्या कहेंगे? हमारे लिए वो यहीं जूस मँगवा देगीं, समझी।'' दिव्या ने कहा।

प्रगति की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। दिव्या ने उसे धीरज रखने की सलाह दी। दिव्या चार माह की प्रेग्नेंट थी इसलिए प्रगति ने उसे ज्यादा जोर नहीं दिया बाहर चलने के लिए।

घड़ी की सुईयां आज बड़ी ही सुस्त चल रही थी। प्रगति एक-एक मिनट की गिनती कर समय निकाल रही थी। मोबाइल पर खेल खेलना भी उसे आज अरूचिपूर्ण लग रहा था। घर के कामकाज वह दो-दो बार कर चुकी थी। आज घर में उसके लिए कोई कार्य नहीं शेष था जिसे कर वह शाम तक समय निकाल सके। दोपहर की नींद लेने का विचार कर जैसे ही लेटना चाहा, करण का स्मरण आते ही आंखे खुल गई। घर के बाकी सदस्य थे जो कुलर की ठण्डी-ठण्डी हवा में घोड़े बेचकर सो रहे थे। प्रगति ने आज का अखबार उठा लिया जिसे वह सुबह ही पूरा पढ़ चुकी थी। अखबार की किसी भी खबर पर उसकी आंखे क्षण भर के लिए भी टीक नहीं पा रही थी। पन्ने उलट-पलट के सारा अखबार छान मारा लेकिन प्रगति के लिए उसमें भी कोई काम की खबर नहीं थी। उसे करण पर गुस्सा आ रहा था। वह तो एक लड़का है। उसे तो फोन कर लेना चाहिए था। उसका फोन आता तो घर में कोई सवाल खड़े नहीं करता। लेकिन प्रगति द्वारा करण को फोन करते हुए यदि उसे किसी ने पकड़ लिया तो बखेड़ा खड़ा हो सकता था। प्रगति के बड़े भैया बहुत क्रोधित स्वभाव के थे। उनसे पूरा घर भर भय खाता था। यहां तक कि प्रगति के पिता भी विजय का हर मामले में सपोर्ट किया करते थे। अप्रत्यक्ष रूप से घर के मुखिया का दायित्व विजय राय पर आ चुका था। उन तक यह खबर न पहुँचे इसलिए आज रात की प्रतिक्षा करने का निर्णय दिव्या के कहने पर प्रगति ने ले ही लिया।

प्रगति को जब से करण का मोबाइल नंबर दिव्या ने उपलब्ध कराया था, तब से माह के उन दिनों की शारीरिक पीड़ा सह रही प्रगति सबकुछ भूल चुकी थी। दिव्या, प्रगति की इस अवस्था में भी आश्चर्यचकित कर देने वाली चुस्ती-फुर्ती देख रही थी। शाम चार बजे घर के सामने से सब्जी वाला गुजरा। सब्जी वाले की सब्जी विक्रय की गुहार को सबसे पहले प्रगति ने श्रवण किया। उसने अपनी मां को जगाया यह बोलकर की शाम के भोजन हेतु कौनसी सब्जी बनानी जानी है? ताकी वह घर के बाहर खड़े सब्जी वाले से सब्जियां खरीद लाये। मां ने प्रगति को मना कर अपनी बहु दिव्या को सब्जियां लेने हेतु कहा। मां पुराने विचारों की थी यह सोचकर प्रगति ने उनकी मनाही हृदय पर नहीं लगाई। प्रगति चाहती थी कि जल्दी से जल्दी भोजन बनाने का कार्य आरंभ कर दिया जाये जिससे पारिवारिक सदस्य भोजन से निवृत्त होकर सोने चले जाये। तदुपरांत वह करण से फोन

पर वार्ता कर सके। लेकिन भोजन से पूर्व अभी शाम की चाय बननी थी। दिव्या चाय बनाने किचन में चली गई। मगर यह क्या? भीषण गर्मी का प्रकोप दूध पर कहर बनकर गिर पड़ा था। तपेली में रखा दुध फट चूका था। दिव्या ने अनुभव किया कि परिवार के किसी सदस्य ने फ्रीज से दुध की तपेली निकाल कर फ्रीज के उपर ही रख दी थी। अपनी पसंद की वस्तु फ्रीज से निकालने के बाद वह दुध की तपेली पुन: फ्रीज में रखना भूल गया, जिससे दुध अत्यधिक गर्मी से समाहित होकर फट गया। प्रगति की मां पूरे ढेड़ लीटर दुध के फटने से अप्रसन्न हो गई। उन्होंने दिव्या को लापरवाही के चलते कड़वे वचन सुना दिये। प्रगति दुर खड़े होकर अपने कान पकड़कर दिव्या से संकेतों में क्षमा मांग रही थी। दिव्या को विश्वास हो गया कि दुध की तपेली फ्रीज के बाहर रखकर भुलने वाला कोई और नहीं प्रगति ही है। जो सुबह से मतवाली बनकर पूरे घर में विचरण कर रही थी। अनंत: रात हुई। प्रगति परिवार संग भोजन करने बैठ गयी। सभी सदस्य आनंद से भोजन ग्रहण

''संयोग से वहां भी प्रगति नाम की एक शिक्षिका अध्यापन कार्य करती थी। मुझे अनुभव ही नहीं हुआ की कब वह मेरे प्रति आकर्षित हो गई थी। एक समय स्वतंत्रता दिवस पर एक विधार्थी को संस्कृत भाषा में भाषण तैयार कर दिया। अपरिहार्य कारणों से मैं उस दिन विद्यालय नहीं जा सका। विद्यार्थी के भाषण को सुनकर अतिथि गण बहुत प्रसन्न हुये। विद्यार्थी को पुरस्कार स्वरूप नकद राशी भेंट की गई। मेरे विषय में भी अथियों के समक्ष प्रशंसनीय वक्तव्य सहकर्मी शिक्षकों द्वारा व्यक्त किये गये।''

दिव्या प्रगति और अपने लिए गिलास में दुध ले आई। दुध पीते-पीते दोनों मिलकर करण की बातें सुन रही थी।

कर रहे थे। प्रगति समय पूर्व ही भोजन से निवृत्त हो गई। उसने माता-पिता का शयन हेतु बिस्तर व्यवस्थित किया। दिव्या भाभी के कमरे में जाकर वहां भी शयन की सभी आवश्यकता पूरी कर बाहर आ गई। भोजन उपरांत सदस्य शयन कक्ष को ओर बढ़े ही थे कि बिजली गुल हो गई। अब बिना पंखे के रात निकालना दुभर हो रहा था। पिताजी ने आज की रात छत पर सोने का विचार कह सुनाया। सभी सहमत थे सिवाये प्रगति के। मगर दिव्या ने उसे समझाया कि जब सभी उपर सो रहे होंगे तब वह नीचे आकर करण से बात कर ले। प्रगति राजी हों गई। छत के उपर बिस्तर लगाये गये। मच्छरदानी की व्यवस्था करते-करते रात के दस बज चुके थे। प्रगति व्याकुल हुये जा रही थी। दिव्या के सहयोग से वह छत से नीचे आ गई। सभी सो चुके थे। दिव्या ने करण को फोन मिलाया।

''यह नम्बर गलत है।'' की ध्वनी सुनकर प्रगति निराश हो गयी। दिव्या ने नम्बर का निरीक्षण किया तो उसने पाया कि हड़बड़ी में प्रगति ने एक अंक गलत डायल कर दिया था। दिव्या

को प्रगति के व्यवहार पर महान आश्चर्य हो रहा था। दिव्या को देखने पहले भी दो लड़के आ चुके थे। किन्तु उनके प्रति अन्य लड़कीयों की तरह प्रगति सामान्य ही थी। किन्तु करण से मात्र फोन पर बात करने के कारण सुबह से संपूर्ण घर को अपने सीर पर उठाने वाली प्रगति का दीवानापन दिव्या की समझ से परे थे।

''हॅलो! मैं प्रगति बोल रही हूं।''

''ओह! बोलीये प्रगति।'' अगली आवाज में करण उत्साहित लग रहा था। जान-पहचान के कुछेक प्रश्न दोनों ओर से पूछे जा रहे थे। जिनके समुचित उत्तर भी आदान-प्रदान हुये।

''करण! क्या आपने पूर्व में कभी प्रेम किया है?'' प्रगति ने करण से पुछा।

करण कुछ क्षण चुपचाप हो गया। जैसे उसकी दुखती नस को प्रगति ने पकड़ ली हो। उन दोनों का भावी संबंध और भी प्रगाढ़ता को प्राप्त करे इसीलिए सबकुछ सत्य बताना करण ने उचित समझा। क्योंकि अधिक समय तक झूठ को छिपाया नहीं जा सकता। एक न एक दिन सच सबके सामने आकर ही रहता है। उस पल भारी शर्मिंदगी न सहनी पड़े सो करण ने हृदय में दबी अपनी भूतपूर्व प्रेम कहानी प्रगति को बता दी।

''पांच वर्ष पूर्व कॉलेज की पढ़ाई के समय जॉब और पढ़ाई दोनों के प्रति समर्पित होकर मैं संघर्षरत था। तब मेरे पास विद्यालयीन वाद-विवाद के प्रथम पुरस्कार के रूप में मिली सायकिल ही थी। जो आवागमन हेतु मेरा सुविधाजनक और नि:शुल्क संसाधन था। मैं सुबह दस से दोपहर दो बजे तक कॉलेज जाया करता था। उसके बाद एक हायर सेकेण्ड्री स्कूल में दोपहर ढाई से शाम पांच बजे तक बच्चों को पढ़ाने का काम किया करता था। अपनी पॉकेटमनी और कॉलेज के खर्च के लिए यह पार्ट टाइम जॉब मेरे लिए बहुत ही मददगार साबित हो रहा था।''

प्रगति फोन पर ध्यान लगाकर करण की बातें सुन रही थी।

''संयोग से वहां भी प्रगति नाम की एक शिक्षिका अध्यापन कार्य करती थी। मुझे अनुभव ही नहीं हुआ की कब वह मेरे प्रति आकर्षित हो गई थी। एक समय स्वतंत्रता दिवस पर एक विद्यार्थी को संस्कृत भाषा में भाषण तैयार कर दिया। अपरिहार्य कारणों से मैं उस दिन विद्यालय नहीं जा सका। विद्यार्थी के भाषण को सुनकर अतिथि गण बहुत प्रसन्न हुये। विद्यार्थी को पुरस्कार स्वरूप नकद राशी भेंट की गई। मेरे विषय में भी अथियों के समक्ष प्रशंसनीय वक्तव्य सहकर्मी शिक्षकों द्वारा व्यक्त किये गये।''

दिव्या प्रगति और अपने लिए गिलास में दुध ले आई। दुध पीते-पीते दोनों मिलकर करण की बातें सुन रही थी।

''अगले दिन विद्यालय पहुंचा तो प्रगति ने मुझसे बात नहीं की। प्रगति प्रति दिन घर से कुछ न कुछ खाने का मेरे लिए टीफीन में लेकर आती थी। वह व्यंजन मुझे चखाना कभी नहीं भुलती थी। मगर आज उसने मुझे कुछ नहीं खिलाया था। उसकी नाराजगी मुझसे इस बात पर थी

की स्वतंत्रता दिवस पर मैं विद्यालय क्यों नहीं आया। दरअसल विद्यालयीन कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद बच्चों को प्राणी संग्रहालय ले जाने की योजना थी। जिसमें मैने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराने की सहमती दी थी। मेरे वहां नहीं जा सकने के कारण पूरे तीन दिनों तक प्रगति ने मुझसे बात नहीं की।''

''फिर क्या हुआ।'' बीच में दिव्या बोल पढ़ी।

करण को आशंका हुई की प्रगति के साथ अन्य कोई और है जो उन दोनो की बातचीत सुन रहा है।

''बताइए न फिर क्या हुआ?'' प्रगति ने दिव्या को संकेतों में डांटते हुये बात को किसी तरह संभाला।

''कुछ ही दिनों में प्रगति सामान्य हो गयी। स्टाफ रूम में लंच के समय अक्सर वो अपने पैर से मेरे पैरों को सहलाया करती थी। इस संबंध में मैं उसे समझा चूका था कि वह ऐसा न करे। मगर वह नहीं मानी। विद्यालय प्रांगण में बच्चों को खेल खिलाने के बहाने प्रगति मुझे ताड़ा करती। मेरे अध्यापन कक्ष से प्रगति नीचे प्रांगण में मुझे अक्सर नजर आ जाती। मैं सदैव उसे उपेक्षित करता रहा। टीचर स्टाफ और स्कूल के बड़े बच्चों तक को आभास हो चूका था कि प्रगति और करण सर के बीच कोई चक्कर चल रहा है। उसने फोन पर मुझे कई बार आई लव यु कहा। मैं इसे आनंद का विषय समझ कर कभी गंभीर नहीं हुआ। उसने मुझे बाहर मिलने भी बुलाया लेकिन मैं कॅरियर बनाने के पीछे इस तरह पागल था कि उसे बाहर कभी मिला ही नहीं। एक बार थक-हारकर मैंने सिद्धीविनायक मंदिर में मिलने की रजामंदी दे दी। सुबह से शाम तक वह मेरा वहां मंदिर में इंतजार करती रही मगर मैं नहीं गया।''

करण की प्रेम कहानी में दिव्या और प्रगति अधिक रूचि ले रहे थे।

रात के दो बज चुके थे। प्रगति के पिता मिश्रीलाल राय लघुशंका हेतु छत से नीचे उतर आये। उन्होंने बहू दिव्या और प्रगति को फोन पर बातचीत करते हुये देखकर कहा- ''इतनी रात हो गई है अब जाकर सो भी जाओ। इस मोबाइल फोन को अब नींद आ रही होगी। उसे भी सोने दो।''

''जी बाबूजी!'' दिव्या बोली।

''बाबूजी! बिजली आ गई है। आप कहे तो आपका बिस्तर नीचे लगा दूं।'' दिव्या ने पुछा।

''अरे नहीं बहु! उपर बड़ी अच्छी ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है। आज की रात तो उपर ही सोऊंगा।'' कहते हुये बाबूजी पुनः उपर छत पर चले गए।

''भाभी आप सो जाओ। आपके लिए ज्यादा समय तक जागना ठीक नहीं है।'' प्रगति ने दिव्या से आग्रह किया।

दिव्या समझ गई कि अब वह कबाब में हड्डी सिद्ध हो रही थी। सो वह सोने चली गयी। प्रगति एक अन्य कमरे में जाकर बिस्तर पर लेट गई।

''फिर क्या हुआ करण?'' प्रगति ने पुछा।

''होना क्या था। वह मुझ पर फिर से नाराज हो गयी। अबकी बार वह कुछ ज्यादा नाराज थी। चार-पांच दिनों तक प्रगति विद्यालय नहीं आई। पता नहीं मैं इतना कठोर कैसे हो गया था कि उसके विषय में मैंने कुछ जानकारी लेना भी उचित नहीं समझा।

एक शाम उसकी सहेली पूनम का मेरे पास कॉल आया। उसने बताया कि प्रगति की तबीयत खराब है इसलिए वह स्कूल नहीं आ पा रही है। उसने यह भी पूछा की मैं क्या वाकई में उससे प्रेम करता हूं अगर करता हूं तो अपने माता-पिता को प्रगति से रिश्ता जोड़ने हेतु प्रगति के यहां तुरंत भेजूं। अगर प्रगति से प्रेम नहीं है तो उसे साफ कह दूं ताकी वह मेरे पिछा छोड़ दे।'' करण बोला।

''आपने क्या जवाब दिया पूनम को?'' प्रगति ने पूछा।

''मैं समझ नहीं पा रहा था। वैवाहिक संबंध में बंधना उस समय मुझे गंवारा नहीं था। साथ ही प्रगति के साथ इस अनोखे रिश्ते का असीम आनंद प्राप्त करने का अनुभव भी खोना नहीं चाहता था। सो सीधे-सीधे पूनम कोने कोई उत्तर नहीं दिया। पूनम मुझसे नाराज हो उठी। उसने मेरे सम्मुख ही फोन पर प्रगति को बहुत डाट पिलाई और कहा की जो व्यक्ति अपने प्रेम और कॅरियर को लेकर इतना अनिश्चित और असमंजस्य में है उससे प्रगति को दुरी बना लेना चाहिए। और करण से सभी प्रकार के रिश्ते तत्काल तोड़ देना चाहिए।'' करण ने आगे बताया।

''आपने क्या किया फिर?'' प्रगति ने अगला प्रश्न किया।

''धीरे-धीरे प्रगति ने मुझसे संपर्क समाप्त कर लिये। मैं अपनी महाविद्यालयीन परिक्षाओं में व्यस्त हो गया। अपने कर्तव्य स्थल पर जब पुन: लौटा तो पता चला की प्रगति ने टीचिंग जॉब छोड़ दी थी। प्रगति के प्रति दुविधा जन्य परिस्थिति से उबरकर जब उसे स्वीकार्य स्थिति में आया तब तक बहुत विलंब हो चुका था। प्रगति को मिलने की प्रबल इच्छा की सत्यता जांचकर उसकी सहेली पूनम ने मुझे बताया की प्रगति के पिता का अन्यत्र स्थानांतरण हो गया है। प्रगति के माता-पिता प्रगति के विवाह को लेकर चिंतित थे। उन्होंने प्रगति के लिए योग्य वर की खोज शुरू कर दी थी। मन को विश्वास नहीं हो रहा था कि प्रगति शहर छोड़कर जा चूकी थी। मेरे लिए यही उचित दण्ड है सोचकर विरह की वेदना सहने स्वयं को तैयार कर लिया।'' करण की भावनात्मक बातें प्रगति की आंखे नम कर गयी।

''क्या आप आज भी अपनी प्रगति से प्रेम करते है?'' प्रगति ने पुछा।

''हां मैं आज भी अपनी उस मेन्टल प्रिय प्रगति को प्रेम करता हूं। वो पगली मुझे अपना सबकुछ देने को तैयार थी और मैं फोन पर ही उससे आभासी चुंबन की मांग करता रह गया।''

करण भावुक हो गया था।

''इसका अर्थ यह है कि आपको अपनी प्रगति पुन: मिल जाये तब क्या आप मुझे छोड़ देंगे।'' प्रगति ने चिंता व्यक्त की।

''नहीं। वह प्रगति मेरा भूतकाल थी। तुम मेरा आज हो। मुझे पता नहीं की मेरी वह प्रगति कहां है? किस हाल में है? न ही मुझे ये पता करना है। क्योंकि मैंने उसके साथ जो किया है उसके बाद मैं उससे नजर मिलाने के लायक नहीं हूं। मैं तुम्हें दुसरी प्रगति नहीं बनने दूंगा, इसका वचन देता हूं। किन्तु वह प्रगति मेरा प्रथम प्रेम था और हमेशा रहेगा।'' करण ने आगे कहा।

''करण मैं तुम्हें एक सत्य बताना चाहती हूं।'' प्रगति बोली।

''बोलो।'' करण ने कहा।

''मैं तुम्हारी वही प्रगति हूं जो तुमसे कभी पागलों की तरह प्रेम करती थी।'' प्रगति ने बताया।

''क्या? मुझे विश्वास नहीं हो रहा।'' करण ने उत्तर दिया।

''वीडियों कॉल करके देख लो।'' प्रगति ने कहा।

करण ने तुरंत वॉइस कॉल डिस्कनेक्ट कर वीडियों कॉल किया।

अपनी प्रिय प्रगति को देखकर करण की आंखे भीग गई। प्रगति भी अपने आंसू रोक न सकी।

''करण! मैं जानती थी कि तुम अपने कॅरियर के प्रति बहुत चिंतित थे। नौकरी की तलाश में हर पल अपने हृदय में एक जुनून को पाले बैठे थे। इस संघर्ष की ज्वाला में अकेले ही सुलग रहे थे। मगर पानी कितना भी गर्म क्यों न हो, आग तो बुझा ही देता है। एक बार कह देते की मुझे तुम्हारे लिए कुछ समय तक रूकना पड़ेगा। मैं जीवन भर तुम्हारी प्रतिक्षा करने को सहर्ष तैयार हो जाती।'' प्रगति ने कहा।

दोनों के हृदय एक बार पुन: मिल चुके थे। करण अपने पुर्ववर्ती व्यवहार पर आत्मग्लानि लिये प्रगति से क्षमा मांग चुका था। प्रगति ने करण को क्षमा कर दिया था। एक बार पुन: सिद्धीविनायक मंदिर में दोनों ने मिलना तय किया। अबकी बार करण निर्धारित समय से पूर्व ही मंदिर पहुंच गया था। प्रगति विनायक प्रतिमा के आगे नतमस्तक थी। उसकी वर्षों पुरानी करण को पाने की अभिलाषा ईश्वर ने पूरी कर दी थी। दोनों के शिश एक साथ सिद्धीविनायक के सम्मुख श्रद्धा से झुक गये।

जितेन्द्र शिवहरे, सहायक अध्यापक शा. प्रा. वि. सुरतिपुरा चोरल, महू इन्दौर, मध्यप्रदेश
मो. : 8770870151, 7746842533, ई–मेल : jshivhare2015@gmail.com

✧ ✧ ✧

किताबें धोरां री.....

आबिद खान गुड्डू

पाठ्यक्रम में बदलाव का सिलसिला पुराना नही है क्योंकि ये तो अब राजस्थान में रिवाज बन गया है। 2003 में जब भाजपा सरकार ने पाठ्यक्रम में वीर-वीरांगनाओं को जोड़ा तो वहीं 2009 में कांग्रेस सरकार आते ही श्यामा प्रसाद मुखर्जी, वीर सावरकर और दीनदयाल उपाध्याय को पाठ्यक्रमों से हटा दिया गया, फिर जब 2013 में भाजपा आयी तो किताबों से नेहरू जैसे बड़े कांग्रेसी नेता धूमिल हुए, अकबर महान की जगह महाराणा प्रताप को महान सिद्ध करने पर पूर्व शिक्षा मंत्री वासुदेव देवनानी और कांग्रेस नेताओं के बीच बड़ी बहस हुई।

जब कभी बच्चों को हम स्वयं के बचपन की बातें बताएं तो बहुत सी बातें उन्हें आश्चर्यजनक लगती है क्योंकि वक्त के बदलाव के साथ बहुत सी स्तिथि बदल जाती है । अब अगर हम विद्यालय के आरंभिक चरण में 'आनंद पोथी' पढ़ते थे तो ये जरूरी नही कि वर्तमान में भी इसी नाम की किताबें चलती हो, लेकिन ये बात अहमियत रखती है कि भले ही किताबों के नाम बदले गए हो लेकिन आज भी पठनीय पदार्थ और सारांश वही है ।

बेहतर शिक्षा विकासशील भारत की नींव है और भारत के हर राज्य से मेधावी बच्चों का पढ़- लिखकर अंर्तराष्ट्रीय मंचो पर तिरंगे की आन-बान-शान को दर्शाना हर भारतवंशी के लिए गर्व की बात होती है। चलो रुख करते हैं सबसे बड़े क्षेत्रफल वाले राज्य रंगीले राजस्थान की ओर, भले ही यहां चमकीली तेज धूप हो या फिर उड़ती टीलों के रेत की अधिकता हो लेकिन इस सुनहरी मिट्टी में भी शिक्षा का बीज अंकुरण से लेकर पल्लवित और पुष्पित होता है, लेकिन 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान साक्षरता दर में राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में 33वें स्थान पर है।

वो स्तिथि दुखदायी होती है जब कोई खिलता चमन उजड़ने लगे या फिर बहती नदी सूखने लगे वगैरा-वगैरा, ठीक वैसी ही स्थित

तब होती है जब राजस्थान प्रदेश में शिक्षा का राजनीतिकरण किया जाता है। हाल ही आपने देखा होगा कि पूर्व विधायक दीया कुमारी और वर्तमान शिक्षा मंत्री गोविंद सिंह डोटासरा के बीच शब्दो की महाभारत छिड़ी हुई है। मुद्दा ये है कि कांग्रेस सरकार ने स्कूली पाठ्यक्रम में बदलाव करते हुए रानी पद्मावती के इतिहास की जानकारी में किताबों से जौहर का चित्र हटाया गया और दुर्ग का चित्र लगा दिया गया है, अब विपक्षी हमले में सवाल ये उठ रहे है कि कांग्रेस सरकार ने सतीत्व का अपमान किया है तो वहीं जवाब में वर्तमान शिक्षा मंत्री का कहना है कि हम हमारी बेटियों को जौहर नही बल्कि रानी लक्ष्मी बाई की तरह रणभूमि में आक्रमणकारियों या दुश्मनो से लड़ते हुए कुर्बान होना सिखाएंगे ।

''नए किरदार आते जा रहे है,

मगर नाटक पुराना चल रहा है'' राहत इंदौरी।

पाठ्यक्रम में बदलाव का सिलसिला पुराना नही है क्योंकि ये तो अब राजस्थान में रिवाज बन गया है। 2003 में जब भाजपा सरकार ने पाठ्यक्रम में वीर-वीरांगनाओं को जोड़ा तो वहीं 2009 में कांग्रेस सरकार आते ही श्यामा प्रसाद मुखर्जी, वीर सावरकर और दीनदयाल उपाध्याय को पाठ्यक्रमों से हटा दिया गया, फिर जब 2013 में भाजपा आयी तो किताबों से नेहरू जैसे बड़े

अगर एक तरफ बात दिल्ली सरकार की करें तो उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया जी के एक साक्षात्कार से पता चलता है कि केजरीवाल सरकार ने इस बार 26% बजट शिक्षा पर रखा है। इन्होंने बताया की हमने पिछले सालों में शिक्षा पर सुधार किया क्योंकि शिक्षा बच्चों का अधिकार है और कोई भी बच्चा शिक्षा से वंचित ना रहे, खासकर वो विद्यार्थी जो गरीब वर्ग से सम्बंध रखता हो और आर्थिक स्तिथि से कमजोर हो। दिल्ली सरकार ने स्कूल भवनों में सुधार कर इनकी उन्नति की, अध्ययनकक्षों को आधुनिक किया गया, विद्यालय में प्रयोगशालायें व कम्प्यूटर प्रयोगशालाएं, व्यायामशालायें खुलवाएं गए और चौवन मॉडल विद्यालयों का निर्माण किया जहां बच्चों के लिए स्विमिंग जैसी अन्य गतिविधियों भी हैं।

कांग्रेसी नेता धूमिल हुए, अकबर महान की जगह महाराणा प्रताप को महान सिद्ध करने पर पूर्व शिक्षा मंत्री वासुदेव देवनानी और कांग्रेस नेताओं के बीच बड़ी बहस हुई लेकिन हल किसी बात का नहीं निकला क्योंकि जिसकी लाठी उसकी भैंस, तो वसुधंरा सरकार अपनी करेगी उसका कोई तोड़ नही होगा तो वहीं गहलोत सरकार स्वयं का डंका बजाने में पीछे नहीं हटेगी।

यह सिद्ध हो चुका है कि राजस्थान में कांग्रेस सरकार में बच्चे कांग्रेस विचारधारा को पढ़ेंगे और भाजपा में संघ की विचारधारा को। बच्चों का भविष्य कैसा होगा या बच्चो को पाठ्यक्रम में बदलाव से फायदा होगा या नही? ये सवाल कोई मायने नही रखता जबकि अहमियत इस बात को दी जा रही है कि किताबो का भगवाकरण करना है या नही। पाठ्यक्रम में बदलाव की प्रक्रिया लम्बी और खर्चीली होती है। एक बार पाठ्यक्रम के बदलाव में लगभग करोड़ो रुपयों की लागत आती है तो वहीं सरकारी स्कूलों में निशुल्क बंटने वाली किताबों का खर्चा भी सरकारी खजाने से कम होता है तो दूसरी तरफ पाठ्यक्रम में बदलाव की वजह से करोड़ो की किताबी सम्पत्ति क्षण भर में राख बनकर रह जाती है। पाठ्यक्रम में बदलाव के बाद जो विवाद होते हैं उन्हें पूर्ण रूप से राजनैतिक फायदे के लिए उठाए जाते हैं जबकि सत्ता में आने के बाद वही होता है जो पिछली सरकार ने किया है, मतलब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे होते हुए दिखती है।

''इन से उम्मीद न रख है ये सियासत वाले, ये किसी से भी मोहब्बत नही करने वाले''- नादिम नदीम। देश में एक ओर जहां स्कूली शिक्षा में समान पाठ्यक्रम होने की जिद्द चली हुई है तो वहीं दूसरी ओर राजस्थान सरकार अपनी हरकतों को रिवाज बनाकर पाठ्यक्रम बदले जा रही है, बच्चों का ज्ञान कैसे बढ़ाना है? इसकी जगह सरकारों को अपनी मूछों की फिक्र ज्यादा लगी हुई है। एक से आठवीं कक्षा तक का पाठ्यक्रम शैक्षणिक अनुसंधान परिषद के अंतर्गत होता है तो वहीं कक्षा नौ से बारह तक का पाठ्यक्रम माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अंतर्गत होता है। ये राजस्थान के पाठ्यक्रम में बदलाव के रिवाज ने देश के सर्वाधिक प्रतिष्ठित और सर्वमान्य एनसीइआरटी के पाठ्यक्रम को भी नही बख्शा क्योंकि कक्षा एक से आठवीं तक का पाठ्यक्रम एनसीइआरटी ही तैयार करता है।

अगर एक तरफ बात दिल्ली सरकार की करें तो उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया जी के एक साक्षात्कार से पता चलता है कि केजरीवाल सरकार ने इस बार 26% बजट शिक्षा पर रखा है। इन्होंने बताया की हमने पिछले सालों में शिक्षा पर सुधार किया क्योंकि शिक्षा बच्चों का अधिकार है और कोई भी बच्चा शिक्षा से वंचित ना रहे खासकर की वो विद्यार्थी जो गरीब वर्ग से सम्बंध रखता हो और आर्थिक स्तिथि से कमजोर हो। दिल्ली सरकार ने स्कूल भवनों में सुधार कर इनकी उन्नति की, अध्ययनकक्षों को आधुनिक किया गया, विद्यालय में प्रयोगशालायें व कम्प्यूटर प्रयोगशालाएं, व्यायामशालायें खुलवाएं गए और चौवन मॉडल विद्यालयों का निर्माण किया जहां बच्चों के लिए स्विमिंग जैसी अन्य गतिविधियों भी हैं । पिछले सालों से दिल्ली सरकार का शिक्षा की ओर जागरूकता की वजह से सकारात्मकता परिणाम नजर आ रहे है, यहां तक कि विधायको के बेटे भी सरकारी विद्यालयों में शिक्षा अर्जित कर रहे हैं। वहीं दूसरी और राजस्थान सरकार को शिक्षा में राजनीतिकरण करने से ही फुर्सत नही है।

''समझने ही नहीं देती सियासत हम को सच्चाई, कभी चेहरा नहीं मिलता कभी दर्पण नहीं मिलता''– अज्ञात। अगर शिक्षा की राजनीतिकरण में बच्चें के सफेद कोमल मस्तिष्क पर जो दाग लगेंगे वो देश के लिए नुकसानदायक होगा। राजनीति की आड़ में छोटी– छोटी बातों को भी पहाड़ बनाकर पेश किया जाता है। मात्र जौहर के चित्र के स्थान पर दुर्ग का चित्र देने पर विपक्ष सरकार के नेता संस्कृति को लेकर सवाल उठा रहे है और भावनाओं को आहत पहुंचने की बात करते है, लेकिन इन्ही सत्ता के चाटुकारों की उस वक्त भावनाएं आहत नही होती जब राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी के हत्यारे गोडसे की बीच चौराहे पर पूजा की जाती है। रानी पद्मावती के सम्मान की बाते करने वालों की उस वक्त भावनाएं कुंठित नही होती जब फिल्म पद्मावत पर देश भर में आक्रोश फैला हुआ था, एक विशेष समाज के लोग चाहे उन्माद फैलाएं या उत्पात मचाये सरकार को आंखे बंद करना बखूबी आता है क्योंकि जातीय वर्चस्व के विरोध करने पर सरकार को वोटों की कमी का नुकसान उठाना पड़ सकता है लेकिन कमजोर जातियों के शक्ति प्रदर्शन पर सरकार राष्ट्रीय सुरक्षा कानून लगा देती है क्योंकि यहां भावनाएं आहत होने का झूठा चेहरा दिखाया जाता है। सत्ता में आने का भले ही राजनैतिक पार्टियों का अलग–अलग एजेंडा हो चाहे वह किसी विशेष समुदाय तुष्टिकरण का हो या जातिवाद का हो या फिर राष्ट्रवाद का लेकिन सत्ता में आने के बाद किताबों से क्या बैर है? कभी पाठ्यक्रमों में कांग्रेस के इतिहास का विस्तृत बखान होता है तो कहीं संघ शक्ति जैसे अल्फाजों को उपयोग में लिया जाता है तो कभी कबीर, निराला और बिस्मिल से जुड़ी रचनाएं हटाई जाती है तो कभी अकबर महान पर इतिहास को गलत ठहराया जाता है।

''झूठ के आगे पीछे दरिया चलते हैं, सच्च बोला तो प्यासा मारा जाएगा'' वसीम बरेलवी।

सरकार अपनी प्रसिद्धि को उजागर करने के लिए और भी तरीके अपना सकती है जिसमें सोशल मीडिया की अहम भूमिका हो सकती है लेकिन किताबो से छेड़खानी क्यों? करोड़ों रुपये ऐसे व्यर्थ में बहाकर कोई फायदा तो होने से रहा बल्कि ऐसी संकुचित सोच से मात्र समाज बीमार होगा और ये बीमारी संक्रमण की तरह फैलती जा रही है। अब जनता जनार्दन सरकार को विकास के लिए चुनती है या फिर अंधी होकर भेड़ों के झुंड की तरह नेताओं के इशारों पर चल रही है ये आत्मचिंतन करना होगा क्योंकि हम लोकतंत्र के मजबूत सिपाही है ना कि किसी राजनीतिक पार्टी के गुलाम कि जैसा हुआ वो होने दे लेकिन सवाल नही उठाना चाहे अन्याय ही क्यों ना हो?

जितेन्द्र शिवहरे, सहायक अध्यापक शा. प्रा. वि. सुरतिपुरा चोरल, महू इन्दौर, मध्यप्रदेश
मो. : 8770870151, 7746842533, ई–मेल : jshivhare2015@gmail.com

✧ ✧ ✧

हिन्दी लघु कथाओं में स्त्री

डॉ0 ध्रुव कुमार

साहित्य लेखन का जबसे उद्‌भव हुआ उस पर अपने समय का प्रभाव पूरी तरह पड़ा और अपने समय का सच क्रमशः प्रत्यक्ष होने लगा। उसी में स्त्री की स्थिति का भी चित्रण होता चला गया। स्वतंत्रता के पूर्व एवं बाद में भी क्रमशः स्त्री की काफी हद तक बिगड़ चुकी स्थिति में सुधार होने लगा। इसमें समाज सुधारको की भूमिका महत्वपूर्ण कही है। उनके प्रयासों से सती प्रथा, बाल विवाह, बेमेल विवाह जैसी कुरीतियों और रूढ़ियों से भी मुक्ति मिलने लगी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही महात्मा गांधी और अन्य नेताओं ने स्त्रियों के सशक्तीकरण पर जोर दिया। उनहें पर्दा प्रथा से मुक्ति दिलाने और उन्हें शिक्षित करने के तमाम प्रयास किये।

लघुकथा का जन्म विश्व-साहित्य में कहानी विधा के उद्‌भव और विकास से बहुत पहले हो चुका था। यह दीगर बात है कि एक अलग विधा के रूप में उसकी पहचान बाद में बनी। संसार की प्रायः सभी नीति कथाएं और बोध कथाएं इसी श्रेणी में आती हैं क्योंकि बहुत कम शब्दों में जीवनोपयोगी संदेश उन कथाओं में प्रस्तुत किये जाते रहे है। इसका सीधा प्रभाव जन-जीवन पर पड़ता है। कोई नीतिपरक बात किसी कथा-प्रसंग के द्वारा कही जाती है तो वह जन-मानस में तुरंत बैठ जाती है। यदि वही बात उपदेश के रूप में की जाए तो उसका असर नहीं होता। उपदेश अक्सर ऊब पैदा करता है और श्रोता या पाठक अन्यमनस्क हो जाता है। इसी पृष्ठभूमि में लघुकथा का महत्व स्वीकार किया गया है।

वरिष्ठ समालोचक प्रो0 रामवयन राय का कहना है कि पिछली शताब्दी के सावतें-आठवें दशक में इसे एक स्वतंत्र कथा रूप में स्वीकार किया गया। यह दौर लघुकथा के लिए बहुत महत्वपूर्ण काल माना जाता है। डा० सतीशराज पुष्करणा समेत अनेक शीर्ष लघुकथाकारों ने इस विधा को अलग पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसी दौर में कुछ लघुकथाकरों समीक्षकों ने इसे ''लघुकहानी'' नाम से रेखांकित करने की वकालत की थी। लेकिन अतत: इस विधा को आठवें दशक में स्वीकार किया गया और अब वह लघुकथा के रूप में सर्वमान्य है। चूंकि

''लघुकथा'' कविता की तरह ही कम शब्दों में बहुत कुछ कहने की कला है, इसलिए लघुकथकों के लिए चुनौती अधिक होती है। यह चुनौती लघुकथा में शीर्षक के चयन के दौरान और वढ़ जाती है।

साहित्य लेखन का जबसे उद्‌भव हुआ उस पर अपने समय का प्रभाव पूरी तरह पड़ा और अपने समय का सच क्रमशः प्रत्यक्ष होने लगा। उसी में स्त्री की स्थिति का भी चित्रण होता चला गया। स्वतंत्रता के पूर्व एवं बाद में भी क्रमशः स्त्री की काफी हद तक बिगड़ चुकी स्थिति में सुधार होने लगा। इसमें समाज सुधारको की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। उनके प्रयासे से सती प्रथा, बाल विवाह, बेमेल विवाह जैसी कुरीतियों और रूढ़ियों से भी मुक्ति मिलने लगी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही महात्मा गांधी और अन्य नेताओं ने स्त्रियों के सशक्तीकरण पर जोर दिया। उन्हें पर्दा प्रथा से मुक्ति दिलाने और उन्हें शिक्षित करने के तमाम प्रयास किये। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से लेकर अबतक देश की सोच में स्त्रियों के प्रति जबर्दस्त बदलाव आया है। स्त्रियां अपेक्षाकृत दृढ़ और सशक्त हुई है। आज प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियां अपनी भूमिका पूरी कुशलता से निर्वहन करते हुए अपने महत्व को पूरी तरह सिद्ध कर रही है।

इन्हीं सारी स्थितियों को प्रत्यक्ष करती कुछेक श्रेष्ठ हिन्दी लघुकथाओं के माध्यम से स्त्रियों के सशक्तीकरण का आकलन सभीचीन है।

आज सोशल मीडिया का क्रेज किस कदर बढ़ गया है कि लोगों को अपने बच्चे भी उसके सामने तुच्छ लगने लगे है। इस भाव को प्रत्यक्ष करती अनिता लक्षित की लघुकथा ''खास आप सबके लिए'' की चर्चा जरूरी है। नायिका गुझिया (पडुकिया) बनाती है, किंतु जैसे ही उसका बच्चा उन्हें खाने के लिए लेना चाहता है तो वह उसके गाल पर थाप्पड़ जड़ देती है। सास भी जब भगवान का भोग लगाने के लिए गुझिया मांगती है तो उसे बुरा लगता है, किंतु 'गुझिया की प्लेट' का फोटो जब फेसबुक पर डालती है।

चर्चित लघुकथाकार एवं संरचना के सम्पादक कमल चोपड़ा की लघुकथा 'प्लान' की नायिका श्रेया की चर्चा जरूरी है। यह रचना नारी के एक नये पहलू पर फोकस करती है कि नारी की सार्थकता वस्तुतः मां बनने से ही है। हांलाकि आज के भौतिकवादी युग में जहां पैसा ही सबकुछ हो गया है, पति अपनी अति उच्च महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए पत्नी की इच्छाओं पर तुषारपात करने से भी नहीं चूकते। 'प्लान' की नायिका श्रेया बहुत ही दृढ़ता से अपने साथी के सामने गर्भ निरोधक गोलिया निकालकर डस्टबीन में फेंकते हुए कहती है–

''अब बच्चे के सिवाय कोई प्लान नहीं।'' तात्पर्य यह कि आज की नारी पति की दासी नहीं, उसकी सहयोगिनी है और फैसले भी खुद लेती है। इसी क्रम में डा0 सतीशराज पुष्करणा की

''पिघलती वर्फ'' लघुकथा नारी के एक नये रूप का प्रत्यक्ष दर्शन कराती है। इस लघुकथा की नायिका क्रमशः सहज ढंग से अपने भीतर शक्ति का संचयन करते हुए दहेज-प्रथा की बहुत ही करीने से धज्जियां उड़ाती है। और अपने दृढ़ता को पूरे समाज के सामने रखती है।

आधुनिक दौर में जहां नारी को स्वतंत्रता के अधिकार प्राप्त है वही वह कहीं-कहीं अपने मातृत्व भाव से भी दूर होती दिख रही है। इस संदर्भ में निभा रश्मि की लघुकथा 'चाकी-खिलौना' की चर्चा आवश्यक है।

पति पत्नी अपने गृह प्रवेश में अतिथियों के मध्य अपनी बेटी तक को भूल जाते हे। जब उन्हें अतिथियों से फुर्सत मिलती है, तब उन्हें अपनी नन्ही बेटी का स्थान आता है जो पलंग के नीचे भूख के कारण रोते हुए मिलती है और कहती है ''अब तो कुछ दो, भूक लगी'' और हिचकियां लेकर रो पड़ती है। वस्तुतः आज का व्यक्ति भौतिकता का क्रमशः ग्रास बनता जा रहा है। इसके ठीक विपरीत उट वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज की लघुकथा ''प्यार'' की नायिका आज भी नहीं बदली। वह आज भी पत्नी के रूप में अपनी परम्परा का निर्वाह करती है। पति से नाराज होने के बाद भी पति को देवता का महत्व देती है। पुष्पा जमुआर की लघुकथा 'पड़ाव' में नारी के यौन मनोविज्ञान को बहुत ही सुशिक्षित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसकी नायिका रम्भा अपने पुत्र के उम्र के बराबर के लड़के से प्रेम करती है जबकि कथा-नायक आलोक उसे आंटी ही समझता है। इसकी प्रस्तुति इसे एक श्रेष्ठ रचना बना देती है वही यह लघुकथा नारी के सहज यौन मनोविज्ञान को प्रस्तुत करती है।

आज सोशल मीडिया का क्रेज किस कदर बढ़ गया है कि लोगों को अपने बच्चे भी उसके सामने तुच्छ लगने लगे है। इस भाव को प्रत्यक्ष करती अनिता लक्षित की लघुकथा ''खास आप सबके लिए'' की चर्चा जरूरी है। नायिका गुझिया (पडुकिया) बनाती है, किंतु जैसे ही उसका बच्चा उन्हें खाने के लिए लेना चाहता है तो वह उसके गाल पर थाप्पड़ जड़ देती है। सास भी जब भगवान का भोग लगाने के लिए गुझिया मांगती है तो उसे बुरा लगता है, किंतु 'गुझिया की प्लेट' का फोटो जब फेसबुक पर डालती है और उस पर आये 'लाइक्स'' और कमेंट से उसे जो ''खुशी मिलती है, वह खुशी उसे अपने बच्चे या भगवान का भोग लगाने से नहीं मिलती। वर्तमान की बदलती सोच पर व्यंग्य करती तथा आज की नारी के एक भिन्न रूप को प्रस्तुत कर पाने में यह लघुकथा पूर्ण रूप से सफल हुई है। मीना पाण्डेय की लघुकथा ''अगले महीने'' भारतीय पत्नी को वास्तविक रूप में पेश करती है कि यदि पति स्वस्थ है तो उसका जीवन भी सुरक्षित है। अतः वह चाहती है कि पति जैसे भी हो स्वस्थ रहे, जबकि पति कंजूस स्वभाव के कारण खर्च नहीं करना चाहता। हलांकि वर्तमान में इस सोच की नारियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है किंतु उनमें यह पारंपरिक संस्कार समाप्त नहीं हुआ है। पत्नी दबाव बनाते हुए कहती है- तो कल हम चल रहे है न डाक्टर के पास?

इसी क्रम में रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' की लघुकथा ''पिघलती हुई वर्फ'' भी काफी महत्वपूर्ण है। पति पत्नी के आत्मीय एवं घनिष्ठ संबंधों को अपने अनोखे ढंग से प्रस्तुत करती है।

दोनो श्रेष्ठ पति-पत्नी आपस में कितना भी लड़-झगड़ लें अथवा नोंक झोंक कर लें, फिर भी उनके हृदय एक दूसरे के प्रति प्रेम से भरे होते है। इनके भी संवाद इस रचना को ऊंचाई प्रदान करते है- ''ठीक है। मैं जा रही हूँ।'' वह भरे गले से बोली और पल्लू से आंखे पोछने लगी। ''इतनी आसानी से जाने दूगा तुम्हें? पति ने आगे बढ़कर अटैची उसके हाथ से छीन ली'' जाओ खाना बनाओ जल्दी! मुझे बहुत भूख लगी है।'' अपनी गीली आंखो से मुस्काई और रसोईघर में चली गई।

मधुकांत की लघुकथा 'बोध' अपने उद्देश्य के कारण श्रेष्ठ रचना है जिसकी नायिका माता-पिता के रोकने पर भी अपने साथ हुए बलात्कार के लिए पुलिस में रिपोर्ट तथा कानूनी कार्रवाई करने में पूरी ताकत से निकल पड़ती है। वह अपनी स्थिति से यह बोध कराती है कि अन्याय सहकर चुप बैठना भी अपराध है जो इसके माता-पिता भी कर रहे थे।

''साझा दर्द'' कमल कपूर की बहुत ही मार्मिक लघुकथा है जो यह बताती है कि मां तो मां होती है, वह चाहे किसी वर्ग या वर्ण की हो। इसके ये सवांद इस रचना एवं उसके उद्देश्य को बल देते हैं। ''मैं इतनी जालिम हूँ क्या? अरे मैं भी एक मां हूँ दूसरी माँ के दर्द नहीं समझूंगी क्या? मैंने भी बच्चा खोया था कभी बस फर्क इतना है कि वह अजन्मा था और मेरा संजू सात साल का। हम साझे दर्द की डोर से बंधे है पारो। अब नीरा रो रही थी और पारो उसके आंसू पोंछ रही थी। इस पल मन-भेद मतभेद और वर्ग-भेद से परे साझे दर्द की डोर में बंधी दो औरतें माँ थी वे दोनों।

नारी के भिन्न-भिन्न रूपों को लेकर प्राय: लघुकथाकारों ने बहुत सी रचनाएं लिखी है, इनमें प्रद्युन्न भल्ला, पृथ्वीराज अरोड़ा, इंदिरा खुराना, डा० मिथिलेश कुमारी मिश्र, राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी बंधु का अनीता राकेश, सुरेश साहनी, डा0 मुक्ता, कमला यमोक्षा, मंजू दुआ कमिनी श्याम अरवा ''श्यामा'' रूप के गुण, मधुदीप, श्याम सुंदर अग्रवाल, राजकुमार निजात, श्याम सुंदर 'दीप्ति' नरेन्द्र प्रसाद नवीन, कृष्णानंद कृष्ण, प्रदीप शर्मा, 'नेही' ओमप्रकाश करूणेश, डा0 स्वर्ण किरण, विक्रम सोनी, प्रताप सिंह मोदी, सतीश राठी, अमृत लाल मदन, अंजना अनिल, डा0 शकुंतला किरण, कमलेश चौधरी, आनंद, उषा लाल, घंमडी लाल अग्रवाल, रामदेच सुरेश, डा0 परमेश्वर गोयल, कान्ता राय, रामयतन यादव, डा0 नीरज शर्मा, नीलिमा शर्मा, निकेश विभावन, रामकुमार आजेय, पूरन मुदगल, प्रेम सिंह मखमली इत्यादि लघुकथाकार प्रमुख हैं।

सृष्टि में जितने भी जीव हुए है उन सबका स्वभाव अलग-अलग है। इसी तरह सभी स्त्रियां मन-मिजाज से एक नहीं होती, किंतु माँ तो प्राय: सब होती है किंतु समय के अनुसार माँ की भूमिका में भी पर्याप्त अंतर आया है। बहरहाल कुछ सटीक लघुकथाओं के माध्यम से स्त्री के विभिन्न रूपों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

डा0 ध्रुव कुमार, व्योम, पी.डी. लेन, महेन्द्रू, पटना 800006
फोन : 9304455515, इमेल : dhrub20@gmail.com

हिन्दी शब्द कैसे बना

डॉ. नवीन कुमार

भोलानाथ तिवारी ने 'भाषाविज्ञान' में लिखा है-''हिन्दी शब्द का सम्बन्ध प्रायः संस्कृत शब्द 'सिन्धु से माना जाता है। प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक मूलतः सिंधु शब्द को संस्कृत का न मानकर द्रविड या और किसी पूर्ववर्ती भाषा को मानता है जहाँ से यह संस्कृत में आया है। सिंधु, सिंधु नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आसपास की भूमि को सिन्धु कहने लगे। यह 'सिंधु' शब्द ईरानी में जाकर 'हिन्दु' और फिर 'हिन्द' हो गया और इसका अर्थ था 'सिंध प्रदेश'।

'हिन्दी' शब्द निर्माण के सम्बन्ध में विद्वानों के दो मत हैं। एक मत है कि ईरान के लोगों को 'स' का उच्चारण करने में कठिनाईयाँ होती थी इसलिए 'सिन्धु' को हिन्दू, हिन्दुई या हिन्दी कहने लगे। इसका कोई ठोस कारण का पता नहीं चला है। जबकि दूसरा मत है कि 'स' का 'ह' उच्चारण कश्मीरी, राजस्थानी आदि भारतीय भाषाओं में ही संभव है। इसका ठोस वैज्ञानिक कारण भाषा-वैज्ञानिकों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। फिर भी रुढ़िवादी विचार धाराओं के लोगों ने यही रट लगा रखा है कि ईरान के लोग 'सिन्ध' को 'हिन्द' कहते थे। अतः प्रश्न उठता है कि फारसी के साल, सादगी, सामान, सिपाही, सरकार आदि शब्दों के उच्चारण में कठिनाइयाँ नहीं होती थी। केवल सिन्ध के उच्चारण में ही कठिनाइयाँ क्यों? यह कैसा तर्क है?

हिन्दी भाषाविज्ञान की पुस्तकों से लेकर हिन्दी व्याकरण की अधिकांश पुस्तकों में यही लिखा हुआ मिलता है कि हिन्दी का नामकरण ईरानियों के द्वारा हुआ है और इस परम्परा का अंधनुकरण आज भी जारी है। जबकि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अलावा डॉ० रामविलास शर्मा, सुप्रसिद्ध भाषाविद् श्री सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, डॉ० बच्चन सिंह, डॉ० देवेन्द्र प्रसाद सिंह आदि आलोचकों ने इसका खण्डन किया है और यह सिद्ध किया है कि कश्मीरी और राजस्थानी आदि बोलियों में 'स' का 'ह' उच्चारण होता है।

सर्वप्रथम फारसी या ईरानी में 'स' का 'ह' बताने वाले भाषाविज्ञानियों को यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

भाषाविज्ञानी धीरेन्द्र वर्मा ने 'हिन्दी भाषा का इतिहास' की भूमिका में लिखा है कि-''संस्कृत की 'स' ध्वनि फारसी में 'ह' के रूप में पाई जाती है, अत: संस्कृत के सिंधु और सिंधी शब्दों में फारसी रूप हिन्द और हिन्दी हो जाते हैं। प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से 'हिन्दवी' या हिन्दी शब्द फारसी भाषा का ही है। संस्कृत, प्राकृत अथवा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के किसी भी प्राचीन ग्रंथ में इसका व्यवहार नहीं किया गया है। फारसी में हिन्दी का शब्दार्थ हिन्द से संबंध रखने वाला है, किन्तु इसका प्रयोग हिन्द का रहने वाला या हिन्द की भाषा के अर्थ में होता रहा है। हिन्दी शब्द के अतिरिक्त फारसी से ही हिन्दू शब्द भी आया है।''[1]

भोलानाथ तिवारी ने 'भाषाविज्ञान' में लिखा है-''हिन्दी शब्द का सम्बन्ध प्राय: संस्कृत शब्द 'सिन्धु से माना जाता है। प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक मूलत: सिंधु शब्द को संस्कृत का न मानकर द्रविड या और किसी पूर्ववर्ती भाषा को मानता है जहाँ से यह संस्कृत में आया है। सिंधु, सिंधु नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आसपास की भूमि को सिन्धु कहने लगे। यह 'सिंधु' शब्द ईरानी में जाकर 'हिन्दु' और फिर 'हिन्द' हो गया और इसका अर्थ था 'सिंध प्रदेश'। बाद में ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा यह 'हिन्द' शब्द धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया । इसी में ईरानी का ईक प्रत्यय लगने से 'हिन्दीक' बना जिसका अर्थ है 'हिन्दी का'। यूनानी 'इंदिका' या अंग्रेजी 'इंडिया' आदि इस 'हिन्दीक' के ही विकसित रूप हैं। हिन्दी भी 'हिन्दीक' का ही परिवर्तित रूप है और इसका अर्थ है 'हिन्दका'। इस प्रकार यह विशेषण है, किन्तु भाषा के अर्थ में संज्ञा हो गया है।[2]

उदयनारायण तिवारी ने 'हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास' में लिखा है-''हिन्दी शब्द किस प्रकार भाषावाची बन गया, इसका लम्बा इतिहास है।..... हमारे देश का 'हिन्द' नाम वस्तुत: 'सिन्ध' का प्रतिरूप है। ईरान अथवा फारस के निवासी सिन्धु नदी के तट के प्रदेश को 'हिन्द' तथा वहाँ के रहने वालों को 'हिन्दू' कहते थे। (फारसी में 'स', 'ह' में परिवर्तित हो जाता है)। ग्रीक-लोगों ने सिन्धु-नदी को 'इन्दोस', यहाँ के निवासियों को 'इन्दोई' तथा प्रदेश को 'इन्दिके' अथवा 'इन्दिका' नाम से सम्बोधित किया। यही आगे चलकर लैटिन रूप में 'इण्डिया' बना। आरम्भ में 'इन्दिका' अथवा 'इण्डिया' शब्द पश्चिमोत्तर- प्रदेश का ही वाचक था; किन्तु धीरे-धीरे इसके अर्थ का विस्तार हुआ और वह समग्र-देश के लिए प्रयुक्त होने लगा।

उधर देश के अर्थ में हिन्द शब्द 'फारस' से अरब पहुँचा। जब अरब के निवासियों ने 'सिन्ध' को जीता तो 'हिन्द' न कहकर 'सिन्द' ही कहा। इसका कारण यह था कि 'सिन्द' प्रदेश वस्तुत: हिन्द प्रदेश का एक भाग था। इस 'हिन्द' से हिन्दी शब्द बना। 'हिन्दी' का एक अर्थ है 'हिन्दुस्तान का निवासी'।''[3] आगे फिर लिखते हैं-''.....हमारी भाषा का हिन्दी नाम वस्तुत: मुसलमानों की ही देन है और यह भारतीय-हिन्दू और मुसलमानों का सम्मिलित रिक्थ है।''[4]

उपर्युक्त परम्पराओं का अनुकरण करते हुए डॉ0 वासुदेवनन्दन प्रसाद ने 'आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना' में लिखा है-''हिन्दी, हिन्दु और हिन्दुस्तान ये शब्द संस्कृत के नही, फारसी के हैं। हिन्दी भाषा का जन्म भारत में हुआ पर उसका नामकरण ईरानियों और भारत के मुसलमानों ने किया। यह बात ऐसी ही है कि बच्चा हमारे घर जनमे और उसका नामकरण हमारे पड़ोसी करें।... .....प्रारंभ में 'हिन्दी' शब्द देशबोधक था। कुछ लोग 'हिन्दी' का संबंध 'सिंधी' से जोड़ते हैं, क्योंकि ईरानीयों लोग 'स' का उच्चारण 'ह' की तरह करते थे। आठवीं सदी तक ईरानियों द्वारा 'हिन्दी' शब्द का ऐसा ही प्रयोग होता था।''[5]

अब मैं वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर अपने विचारों को प्रकट करने वाले विद्वानों को यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ। जिसने यह कहा कि 'ह' का 'स' कश्मीरी आदि भाषाओं में होता है। सबसे पहले इस सम्बन्ध में हिन्दी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक के माध्यम से बताने की कोशिश की है। तत्पश्चात् डॉ० रामविलास शर्मा ने इसकी विस्तृत व्याख्या की है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 1907 ई० में ही अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा की उत्पति' की भूमिका में लिखते हैं कि ''इस पुस्तक के लिखने में हमने 1901 ई० की मर्दुमशुमारी की रिपोर्टों से, भारत की भाषाओं की जांच की रिपोर्टो से, नये ''इम्पीरियल गजेटियर्स'' से, और दो एक और किताबों से मदद ली है। पर इसके लिए हम डॉ0 ग्रियर्सन के सबसे अधिक ऋणी हैं।''[6]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आगे लिखते हैं कि-''परवर्ती नवागत आर्य जो मध्यदेश में बस गये थे उनकी भाषा का नाम सुभीते के लिए अन्त: शाखा रखते हैं। और जो पूर्ववर्ती आर्य नवागतों के द्वारा बाहर निकाल दिये गए थे, अर्थात् दूर-दूर प्रांतों में जाकर जो रहने लगे थे, उनकी भाषा का नाम बहिशाखा रखते हैं।

इन दोनों शाखाओं की भाषाओं के उच्चारण में फर्क है। प्रत्येक में कुछ- न- कुछ विशेषता है। जिन वर्णों का उच्चारण सिसकार के साथ करना पड़ता है उनको अन्त: शाखा वाले बहुत कड़ी आवाज से बोलते हैं, यहां तक कि वह दन्त्य 'स' हो जाता है। पर बहिशाखा वाले वैसे नहीं करते। इसी से मध्यदेश वालों के 'कोस' शब्द को सिन्ध वालों ने 'कोहु' कर दिया है। पूर्व की तरफ बंगाल में यह 'स', 'श' हो गया है। महाराष्ट्र में भी उसका कड़ापन बहुत कुछ कम हो गया है। आसाम में 'स' की आवाज गिरते-गिरते कुछ-कुछ 'च' की सी हो गई है। काश्मीर में तो उसकी कड़ी आवाज बिलकुल ही जाती रही है। वहाँ अन्त:शाखा का 'स' बिगड़ कर 'ह' हो गया है।''[7]

डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं कि- 'हिन्दी' शब्द कैसे बना- इस बारे में प्रचलित मान्यता यह है कि ईरान के लोग सिन्धु (या सिन्ध) को हिन्द कहते थे ओर वहाँ के निवासियों को हिन्दु, हिन्दुई या हिन्दी कहने लगे। 'स्' का उच्चारण करने में उन्हें कुछ कठिनाई होती होगी, इसलिए उन्होंने 'स्' की जगह 'ह्' कहना शुरू किया। लेकिन फ़ारसी में साल, सादगी, साज, साग़र सामान, साया, सब्ज़ा, सिपारिश, सिपाही, सितार, सख्त, सखुन, सर, सर्दी, सिरिश्त (सृष्टि), सर्ग़ना, सरकार, सिरका, सुरमा, सुरूर आदि पचीसों शब्द हैं जिनमें ईरानियों को 'स्' का उच्चारण

करने में दिक्क़त नहीं होती। यही नहीं, उनके क्रिया-वाचक शब्द भी ऐसे बहुत से हैं जो 'स्' से शुरू होते हैं, जैसे साज़ीदन (बनाना), साईदन (पीसना), सबारीदन (हल जोतना), सिपारीदन (सिफारिश करना) .....इत्यादि। फ़ारसी में अरबी से बहुत से शब्द आये हैं जो 'स्' से शुरू होते हैं- जैसे साहिल, साअत (सायत), साकिन, सान, सहर, सराय, सतर, सफर, सिफर, इत्यादि। इनमें ईरानियों ने 'स्' के स्थान पर 'ह्' का उच्चारण करना आवश्यक नहीं समझा। इसके सिवा 'श्' से आरम्भ होने वाले या स-श युक्त सैकड़ों ऐसे शब्द फारसी में हैं जिनके समानान्तर भारतीय भाषाओं के शब्दों ने स-श का स्थान 'ह्' को दे दिया है। इससे सिन्ध का हिन्द ईरान में बना या भारत में - इस समस्या पर प्रकाश पड़ता है।''[8]

ध्यातव्य है कि डॉ0 ग्रियर्सन को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी उद्धृत करते हुए लिखा और आलोचक डॉ0 रामविलास शर्मा भी लिखते हैं कि-''सर जार्ज ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा में 'ह्' ध्वनि की अधिकता पर ध्यान दिया था। वहाँ शरद् हरुद् है, शाक हाख, श्वसुर हिहुर, मूसल मुहुलु, कृष्ण कृहन, शुश्क हूखु..... इत्यादि।

राजस्थानी के सम्बंध में हमने एक कहानी सुनी थी : किसी स्थान में शाम को सात बजे स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का भाषण होने वाला था (ऐलान करने वाला ज़ोर-ज़ोर से कहता था, आज हाम को हात बजे ह्वामी हत्यानन्द हरह्वती का भाहण होगा। यह कहानी अतिशयोक्तिपूर्ण लगे तो हम सुप्रसिद्ध भाषाविद् श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत उद्धृत करते हैं। ''राजस्थान भाषा'' नाम से संकलित अपने भाषणों में श्री चाटुर्ज्या ने कहा है कि राजस्थान की कुछ बोलियों में च्, छ्, ज्, झ्- इन तालव्य ध्वनियों का दन्त्य उच्चारण सुनाई देता है। ''जिन बोलियों में ऐसा दन्त्य उच्चारण आता है, उनमें साथ ही साथ 'स' की ध्वनि 'ह्' हो जाती है।'' राजस्थानी के समान अन्य भाषाओं में यही विशेषता देखकर आगे श्री चाटुर्ज्या ने कहा है कि '' च वर्गीय वर्णों का दन्त्य उच्चारण तथा 'स' का 'ह' में परिवर्तन राजस्थानी के लिए कुछ अनोखी या निराली बात नहीं है। ऐसा उच्चारण और 'स' का ह-भाव पूर्व बंग की बंगला भाषा में तथा आसामी में मिलते हैं। दन्त्य उच्चारण नेपाली (गोरखाली) तथा कुछ अन्य हिमाली बोलियों में भी पाया जाता है। राजस्थानी से सम्बंधित गुजराती की कुछ उपभाषा या प्रान्तिक रूप (जैसे सुरती गुजराती) में भी दन्त्य उच्चारण तथा 'स' -का 'ह'- भाव आता है। पुरानी मराठी में, ओड़िया में यह दन्त्य उच्चाररण दिखाई देता है। 'स' का 'ह' उच्चारण मराठी में, अंगला, पछाहीं हिन्दी आदि कुछ भाषाओं में कहीं-कहीं मिलता है-केवल प्राचीन प्राकृत से उपलब्ध कुछ शब्दों में (पर इन भाषाओं में यह विशिष्टिता भाषा की अपनी तखसीस या विशिष्टताओं में नहीं है- यह किसी बाहरी भाषा के प्रभाव से कुछ विशेष शब्द या प्रत्ययों में आया है, ऐसा ही मालूम पड़ता है। पर पूर्वी- पंजाबी और हिन्दकी या लहन्दी में और सिन्धी में 'स' का 'ह' हो जाना निहायत लक्षणीय है।''[9]

अद्यतन विचारों को समाहित करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह स्पष्टरूप से लिखते हैं-'' स्पष्ट है कि 'हिन्द' से 'हिन्दी' बना। पर हिन्द का इतिहास भी अधंकार के गर्त्त में छिपा हुआ है। यह प्रश्न

कि यह शब्द कब और कहाँ से आया, कैसे बना और किनके द्वारा प्रयुक्त हुआ- आज भी समाधान की अपेक्षा रखता है।

.....भाषा वैज्ञानिकों ने इस शब्द की ऐतिहासिकता का उल्लेख करते हुए बताया है कि 'हिन्दु' का प्राचीनतम उल्लेख ईरान सम्राट दारा के अभिलेखों, अवेस्ता, ग्रंथ, बेन्दिदाद आदि में हुआ है, अभिलेखों में 'हिन्दु' का अर्थ भारतवर्ष के अर्थ में है। बेन्दिदाद कें 'हत्त हिन्दु' (सप्त सिन्धु) अनेक पवित्र स्थानों में एक स्थान है। प्राचीन ईरानी साहित्य में हिन्दुश, हिन्दु, हिन्दुव, हिन्द, या भारत के अर्थ में प्रयुक्त है। हिन्दु का 'उ' लप्त होकर हिन्द रह गया। इसी से बना हिन्दी। भाषा वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि 'ईरानी' में 'स' ध्वनि नहीं होती और न महाप्राण ध्वनियाँ ही मिलती हैं। सिन्धु देश और सिन्धु नद के सम्पर्क में आने पर ईरानियों के यहाँ 'स' का 'ह' और 'धा' का 'द' हो गया।[10] प्रस्तुत सिद्धांतों के खण्डन हेतु डॉ0 बच्चन सिंह ने रामविलास शर्मा को उद्घृत करते हुए लिखते हैं-''हिन्दी शब्द कैसे बना इस बारे में प्रचलित मान्यता यह है कि ईरान के लोग सिन्धु (या सिन्धु) को हिन्द कहते थे और वहाँ के निवासियों को हिन्दु, हिन्दुई या हिन्दी कहने लगे। 'स' का उच्चारण करने में कुछ कठिनाई होती होगी, इसलिए उन्होंने 'स' की जगह 'ह' कहना शुरू किया। लेकिन फारसी में साल, सादगी, साज, सागर आदि पच्चीसों शब्द हैं जिनमें ईरानियों को 'स' का उच्चारण करने में दिक्कत नही होती। यही नहीं उनके क्रियात्मक शब्द भी ऐसे बहुत से हैं जो 'स' से शुरू होते हैं, जैसे साजीदन (बनाना) , सखन (तौलना) इत्यादि। इसमें ईरानियों ने 'स' के स्थान पर 'ह' का उच्चारण करना आवश्यक नही समझा। इसके सिवा 'श' से आरम्भ होने वाले या स-श युक्त सैकड़ों ऐसे शब्द फारसी में हैं जिनके समानान्तर भारतीय भाषाओं के शब्दों ने स-श का स्थान 'ह' को दे दिया है। इससे सिन्ध का हिन्द ईरान में बना या भारत में- इस समस्या पर प्रकाश पड़ता है।''[11] बच्चन सिंह आगे फिर लिखते हैं-'' उन्होंने विस्तार से बताया है कि 'स' का 'ह' में परिवर्तन कश्मीरी में मिलता है। हिन्दी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी आदि में 'स' भी है और उसके स्थान पर 'ह' भी उच्चारित होता है। इससे ध्वनित होता है कि 'ह' ध्वनि जो यहाँ की किसी प्राकृत में 'स' के लिए उच्चारित होती रही हो, यात्रा करते-करते ईरान पहुँच गयी। फिर तो ईरानियों ने 'सप्त' को 'हफ्त' और 'असुर' को 'अहुर' कहना आरम्भ किया। रामविलास जी ने 'स','ह' सम्बन्धी जिन मान्यताओं का खण्डन किया है वह सही है। उर्दू का कोई कोश इसे प्रमाणित करने में समर्थ है। पर यह अनुमान सही नहीं मालूम पड़ता है कि किसी प्राकृत की 'ह' ध्वनि जो 'स' के लिए उच्चारित होती रही हो, यात्रा करते-करते ईरान पहुँच गयी हो और सिन्धु देश में 'स' से उच्चारित होनेवाले शब्दों को 'ह' कर दे।

कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि सिन्ध में हड़प्पा-सभ्यता के पूर्व कोई सभ्यता थी। उसके सभ्य लोग सिन्धु को 'हिन्दु', 'सप्त सिन्धु' को 'हत्त हिन्दु' बोला करते थे। कुछ दिनों तक वह भाग ईरानियों के अधिकार में था। ईरानियो को ये शब्द यही से मिले। उन्होंने इन्हें ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। आर्यों ने 'हिन्दु' को 'सिन्धु' कर दिया हो तो आश्चर्य नहीं। कुछ लोग इस प्रवृत्ति को ब्राहुवी से जोड़ते हैं।''[12]

इस सम्बन्ध में सबसे अधिक मुखर हैं भाषावैज्ञानिक डॉ० देवेन्द्र प्रसाद सिंह। इन्होंने अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान और हिन्दी भाषा का स्वरूप-विकास' में लिखा है कि -''भला हो डॉ० रामविलास शर्मा का जिन्होंने विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया और विवक्षा का यह सरलीकरण तथा अंधानुकरण का जड़तर्क धराशायी हो गया। सिफत, सरकार, शिरफिरा, शरफरोसी, सफीना ,शाहिल, शौक, सितम, को बोलने में फारसवासियों को कभी कठिनाई नहीं हुई। फारसी के हजारों शब्द जिसका उच्चारण 'स' ही होता है, फिर सिन्ध में 'स' का 'ह' कैसे हो गया- यह जादू सहसा समझ में नहीं आता। हाँ, कश्मीरी भाषा में 'स' ध्वनि नहीं है, 'स' का 'ह' कश्मीरी में हो जाता है।''[13]

डॉ0 नगेन्द्र ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' की भूमिका में लिखा है कि-''.....पिछले दशकों में हुए निरंतर अनुसंधान के फलस्वरूप प्रचुर नवीन सामग्री प्रकाश में आयी है और अनेक स्वीकृत तथ्यों का संशोधन हुआ है, जिनसे परवर्ती निर्णय और निष्कर्ष अनिवार्यत: बदल गये हैं।[14]

यों तो डॉ0 नगेन्द्र ने उक्त बातें इतिहास के संबंध में कही है परन्तु यह 'हिन्दी' शब्द के बारे में भी सटीक बैठता है। अत: अब संशोधन आवश्यक है। इस तरह से पुस्तकों में उपलब्ध प्रयोगों को आधार मान कर जो तर्क दिया गया है कि ईरान में 'स' का उच्चारण 'ह' होता है। वह अब निराधार सिद्ध हो चुका है। अत: हम कह सकते हैं कि 'हिन्दी' का नामकरण हिन्दुस्तान में ही हुआ है न कि ईरान में। अधिक स्पष्टता के लिए भारतीय बोलियों का अध्ययन शोध हेतु आवश्यक है।

संदर्भ :

01. हिन्दी भाषा का इतिहास, धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पृष्ठ. 59, 02. भाषाविज्ञान, भोलानाथ तिवारी, किताब महल, पृ.206, 03. हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास, उदयनारायण तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, पृ.138, 04. वही- पृ.154, 05. आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना, डॉ0 वासुदेवनन्दन प्रसाद, भारती भवन, पृ.7, 06. हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अनंग प्रकाशन, पृ.8-9, 07. वही- पृ.32, 08. भाषा और समाज, डॉ0 रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, पृ.78, 09. वही-पृ.79, 10. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ0 बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ.18, 11. वही- पृ.18, 12. वही- पृ.18-19, 13. भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा का स्वरूप विकास, डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृ.256, 14. हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रधान संपादक-डॉ0 नगेन्द्र, संपादक-डॉ0 हरदयाल, मयूर बक्स प्रकाशन, पृ.1

डॉ0 नवीन कुमार, (+2 शिक्षक), द्वारा – कमलेश कुमार (दारोगा जी), विजय विहार कॉलोनी, खगौल रोड, दानापुर, पटना, मो0 –9534752048

नई शिक्षा नीति : विचारणीय बिंदु

डॉ. जसपाली चौहान

शिक्षा की लगातार गिरती जा रही गुणवत्ता को ऊपर उठाने के लिए नई सोच चाहिए। व्यवस्था में बदलाव के बाद बात आती है - विषय-वस्तु की तो इस समय शिक्षा पर संचार तकनीक का प्रभाव तेजी से पड़ रहा है। परंतु भारत की ज्ञानार्जन की अपनी सशक्त परंपरा रही हैं जिसका लोहा विश्व ने माना है। गाँधी, विवेकानंद, टैगोर, श्री अरविंद जैसे मनीषियों ने शिक्षा को भारतीय अवधारणा को आधुनिक संदर्भ में सशक्त करने के प्रयास किए हैं। आज हमारी शिक्षा नीति को यह निरूपित करना होगा कि राष्ट्र-प्रेम तथा राष्ट्र-गौरव के तत्त्वों को कहीं गौण स्थान तो नहीं दिया जा रहा है।

सन् 1986 में बनी भारतीय शिक्षा नीति पर सन् 1992 में पुनर्विचार हुआ था। अब फिर से विचार हो रहा है। नीति-निर्धारकों को सर्वप्रथम वर्तमान परिदृश्य का विश्लेषण कर यह अनुमान लगाना होगा कि आज स्कूल, कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों में पढ़ रही भावी पीढ़ी को किस प्रकार के सामाजिक - सांस्कृतिक - आर्थिक तथा औद्योगिक एवं तकनीकी संदर्भों में अपना कार्यकारी योगदान देना होगा। भारत की विश्व प्रशंसित आध्यात्मिक समझ पीछे न छूट जाए इसका भी ध्यान रखना होगा।

नई शिक्षा नीति को - भारत की विरासत, इतिहास, परंपरा, ज्ञान-विज्ञान, सद-आचरण जैसे तत्त्वों को नीति तत्त्वों में शामिल करना होगा। युवाओं की अपेक्षाओं तथा आकांक्षाओं को उचित ढंग से समझना होगा तथा उन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक रणनीति बनानी होगी। नई शिक्षा नीति के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि अभी तक सारी योजनाओं, घोषणाओं तथा प्रयासों के बावजूद 14 साल तक के प्रत्येक बच्चे को उचित तथा उपयुक्त स्तर की शिक्षा उपलब्ध नहीं हो पाई है। मात्र 30-35 प्रतिशत बच्चों को ही अपेक्षित स्तर की शिक्षा मिल रही है। वर्तमान शिक्षा नीति को उन नीतिगत कमियों को ढूँढ़ना होगा जिनके कारण अधिकांश सरकारी स्कूलों की साख अपने निम्नतर स्तर पर पहुँच गई है। कोई भी देश अपने आधे से अधिक बच्चों को उनकी प्रतिभा के पूर्ण विकसित होने का अवसर दिए बिना अपना बौद्धिक विकास नहीं कर सकता।

स्कूली शिक्षा में तेजी से उभरता हुआ प्रश्न है कि प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने में समानता का अवसर मिले परंतु हो ठीक इसका उल्टा रहा है। 1986 के नीतिगत दस्तावेज़ों में कहा गया था कि स्थान, जाति, लिंग आदि के अंतर को इसमें बाधा नहीं बनने दिया जाएगा। परंतु यह अंतर घटने की बजाय बढ़ा ही है। सरकारी स्कूल का बच्चा सीधे कक्षा एक से शिक्षा आरंभ करता है जबकि 'पब्लिक स्कूल' में मोटी फीस अदा करने वाले माँ-बाप का बच्चा प्ले स्कूल, नर्सरी, केजी इत्यादि में तीन साल रहकर कक्षा एक में आता है -दोनों में किस प्रकार की समानता संभव हो सकती हैं?यह असमानता उच्च शिक्षा तक बढ़ती जाती है और जो पिछड़े हैं वे और पिछड़ते जाते हैं। यह बहुत बड़ी चुनौती है। सरकारी स्कूलों को इस अंतर को समाप्त करना होगा।

शिक्षा की लगातार गिरती जा रही गुणवत्ता को ऊपर उठाने के लिए नई सोच चाहिए। व्यवस्था में बदलाव के बाद बात आती है - विषय-वस्तु की तो इस समय शिक्षा पर संचार तकनीक का प्रभाव तेजी से पड़ रहा है। परंतु भारत की ज्ञानार्जन की अपनी सशक्त परंपरा रही हैं जिसका लोहा विश्व ने माना है। गाँधी, विवेकानंद, टैगोर, श्री अरविंद जैसे मनीषियों ने शिक्षा को भारतीय अवधारणा को आधुनिक संदर्भ में सशक्त करने के प्रयास किए हैं। आज हमारी शिक्षा नीति को यह निरूपित करना होगा कि राष्ट्र-प्रेम तथा राष्ट्र-गौरव के तत्त्वों को कहीं गौण स्थान तो नहीं दिया जा रहा है।

नई शिक्षा नीति में, अध्यापक के ज्ञान का समय-समय पर वर्धन को विशेष महत्त्व दिया जाना चाहिए। छात्र-रेशों के हिसाब से अध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिए। आज स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक अध्यापकों तथा प्राध्याकों की कमी चिंता का विषय है, इससे हर स्तर पर गुणवत्ता प्रभावित होती है, इस स्थिति से देश को उबरना होगा। नई शिक्षा नीति से अपेक्षा की जाती है कि वह कुछ ऐसे रास्ते सुझाए जो अध्यापकों के प्रशिक्षण संस्थानों का माहौल बदल दे। अध्यापकों को बेहतर प्रशिक्षणा तथा काम करने की ऐसी स्थितियाँ मिले जहाँ वे बच्चों का सर्वांगीण विकास कर सकें तथा स्वयं भी अपनी समझ, कौशल तथा कर्मठता बढ़ा सकें। अध्यापक जब यह सुनिश्चित कर लेगा कि वह अपने विद्यार्थियों के लिए आदर्श-रोल मॉडल है तथा उसे केवल नई पीढ़ी के निर्माण ही नहीं बल्कि देश के विकास में अपनी भागीदारी देनी है तब शिक्षा अपेक्षित गतिशीलता अवश्य प्राप्त कर लेगी। नई शिक्षा नीति का सूत्रवाक्य होना चाहिए - चरित्र, राष्ट्र निर्माण एवं आर्थिक विकास में सहायक शिक्षा। शिक्षक ऐसी पीढ़ी तैयार करे जो विवेकानंद के 'मैन-मेकिंग-एजुकेशन' की अवधारणा को साकार करने में समर्थ हो।

शिक्षा वह प्रणाली है जो व्यक्ति एवं समाज का नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक तथा शारीरिक विकास को सुनिश्चित करती है। प्राचीन काल में हमारे देश में शिक्षा की इसी व्याख्या का अनुसरण होता रहा है, जिसके परिणामस्वरूप भारत को 'विश्वगुरु' का दर्जा प्राप्त हुआ था। आज भारत के पास यह उपाधि नहीं है जिसका मूल कारण, शिक्षा की उपरोक्त परिभाषा की उपेक्षा है। परंतु आज भी हम विश्व को एक आदर्श शिक्षा-पद्धति का मॉडल प्रस्तुत करके फिर से 'विश्वगुरु' की उपाधि को प्राप्त कर सकते हैं।

शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य चरित्र-निर्माण है, परंतु आज वह अर्थोपार्जन का साधन बनकर रह गई है यद्यपि अर्थोपार्जन भी उसका उद्देश्य है लेकिन वह यहीं तक सीमित न रहे। युवा पीढ़ी

पैसा तो कमाए परंतु उसे मनुष्य बनना भी उतना ही ज़रूरी है, उसका चरित्र निर्माण ज़रूरी है, अत: शिक्षा संस्कार-प्रदायिनी भी हो सदाचार का पाठ पढ़ाने वाली भी हो। अत: शाश्वत जीवन-मूल्यों की शिक्षा भी हमें अपने पाठ्यक्रम के माध्यम से देनी होगी, 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से ओत-प्रोत अपनी पुरानी परिवार व्यवस्था भी समझनी होगी, पौराणिक मान्यताओं एवं परंपराओं को भी समझाना होगा, जिसके लिए पौराणिक आदर्श चरित्रों को **पाठ्यक्रम में शामिल करना होगा।** स्कूली शिक्षा को **सेवा** और **संस्कार** की विषयवस्तु मानना होगा **'व्यवसाय'** की नहीं। निजीकरण के मुद्दे को स्कूली शिक्षा से हटा दिया जाए तो ज़्यादा अच्छा होगा।

साहित्यिक शिक्षा - सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की एकमात्र स्रोत है। अत: स्कूली एवं उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में हम साहित्य की अनदेखी न करें, व्यवसायीकरण के चक्कर में शिक्षा के मूलभूत आनंदमूलक पक्ष को नहीं नकारा जा सकता। जीवन की सौंदर्यपरक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति देने वाली साहित्यिक एवं कलात्मक शिक्षा को भी पाठ्यक्रम में शामिल करना होगा। साहित्यिक शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिए। स्कूलों की सीबीएससी से जुड़ने की शर्त (अंग्रेज़ी माध्यम से ही शिक्षा देना) के कारण देशभर के स्कूल मातृभाषा में पढ़ाई को नष्ट प्राय: कर रहे हैं, यह गलत कदम है, इसे रोका जाना चाहिए। इससे नई पीढ़ी का भाषा ज्ञान प्रभावित होता है, साहित्य से उनका नाता टूटता है। शिक्षा में चिंतन का बड़ा महत्त्व है और उत्कृष्ट चिंतन मातृभाषा, स्वभाषा में ही संभव है। अपनी, अपने देश की समस्याओं को हम अपनी भाषा में ही बेहतर समझ सकते हैं, अंग्रेज़ी में नहीं। वैज्ञानिक दृष्टि से भी मातृभाषा में शिक्षण, व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के लिए अति आवश्यक है। मातृभाषा में शिक्षित बालक दूसरी भाषाओं को भी सहज रूप से ग्रहण कर सकता है। प्रारंभिक शिक्षा किसी विदेशी भाषा में करने पर जहाँ व्यक्ति अपने परिवेश, परंपरा, संस्कृति और जीवन-मूल्यों से कटता है, वहीं पूर्वजों से प्राप्त होने वाले ज्ञान, शास्त्र, साहित्य आदि से अनभिज्ञ रहकर अपनी पहचान खो देता है। बच्चा पैदा होते ही कुछ न कुछ सीखने लगता है। स्कूल आने से पहले वह मातृभाषा का संस्कार ले चुका होता है और जब किसी भी मातृभाषा को उसके स्थान से हटा दिया जाता है तो वह चिंतन नहीं कर पाता है। हमारे चिंतन का स्तर उथला है, तो इसकी यही कारण है।

माध्यमिक एवं उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में भी अंग्रेज़ी की बाध्यता न हो, **स्वभाषा (हिंदी) का विकल्प भी रखा जाए।** भारत के नौजवान के पास बौद्धिक क्षमता की कमी नहीं है परंतु विदेशी भाषा होने के कारण उसकी अंग्रेज़ी अच्छी नहीं है, जिस कारण वह प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी (डॉक्टर, इंजीनियर ....) शिक्षा ग्रहण करने के क्षेत्र में पिछड़ जाता है और उसकी उत्कृष्ट बौद्धिक क्षमता का उपयोग देश के लिए नहीं हो पाता, बेरोजगार भी बढ़ती है।

अंग्रेज़ी पढ़ा नव-युवक समाज से अलग, एक नया वर्ग बन जाता है। वह अपने बुजुर्गों के विचार एवं सादा जीवन को नीची निगाह से देखता है उनके पेशे को भी छोटा समझकर अपना पुश्तैनी पेशा छोड़ देता है और सरकारी नौकरी की तलाश में भटकने लगता है जिसके लिए वह पूर्ण योग्य भी नहीं होता हैं इससे बेरोजगारी बढ़ती चली जाती है।

आज अंग्रेज़ी बच्चों में अपनी मातृभाषा के प्रति हीनता का संस्कार उत्पन्न कर रही है जो बच्चों के जीवन को विकृत करने का आसान तरीका है इससे समाज में विषमता बढ़ रही है, देश

की **चिंतन क्षमता** का ह्रास हो रहा है। अत: स्वभाषा (हिंदी) के साथ भेदभाव को ख़त्म किया जाए। संविधान में उसे जो दर्जा (राजभाषा) मिला है, वह व्यावहारिकता में भी आए जो तभी संभव है जब संविधान से अंग्रेज़ी का (सह-राजभाषा) का दर्जा समाप्त किया जाए जो 1950 से लेकर मात्र 15 वर्षों के लिए था, परंतु अभी तक कायम है।

अभी हमारा विद्यार्थी शिक्षा द्वारा बाह्य जगत की जानाकारी एवं समझ हासिल करता है जबकि शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो छात्र को 'स्वयं' की पहचान के लिए सही दिशा प्रदान करे, सृजनशील व्यक्तित्व को जन्म दे।

शिक्षा ऐसी हो जो समरसता का पाठ पढ़ाए अत: 'रामराज्य' का पाठ पढ़ाने वाले रामचरितमानस जैसे ग्रंथों को पाठ्यक्रम में रखना होगा तभी रामराज्य जैसे समरसतायुग्त समाज की पुनर्प्रतिष्ठा हो सकेगी।

पाठ्य सामग्री के चयन में भाषा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों को प्रमुख स्थान दे, उन्हें तैयार करने में सर्वोत्तम शिक्षकों की भूमिका हो यह तभी संभव होगा जब शिक्षकों के चयन में भी सही मानदंड अपनाया जाए। शिक्षा के स्तर को बनाए रखने के लिए गुणी एवं निष्ठावान शिक्षकों का होना ज़रूरी है। शिक्षा को मुनाफे का व्यवसाय समझना गलत है सरकार को इस पर कड़ी नज़र रखनी चाहिए। शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों, पाठ्यचर्या में सुधार ज़रूरी है। शिक्षकों को जो प्रशिक्षण मिले वह रचनात्मक हो। यद्यपि आज सभी विश्वविद्यालय, रोजगार मुहैया कराने वाले तकनीकी विषयों को ही बढ़ावा दे रहे हैं, देना भी चाहिए पर भाषा, समाज और चिंतन को नहीं भुलाना चाहिए। शिक्षक की नियुक्ति प्रक्रिया भी पारदर्शी हो। कई जगह तो शिक्षक नक्सली गतिविधियों में लिप्त पाए गए हैं। महत्त्व खो रही शिक्षा व्यवस्था से जुड़ी चिंताओं का तत्काल समाधान की ज़रूरत है।

उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा हो जो शिक्षा को रोजगार से जोड़े। उच्च शिक्षा में हमें अर्थव्यवस्था को मज़बूत करने वाली गुणात्मक शिक्षा पर बल देना होगा। हमारा पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो छात्रों की क्षमताओं के अनुकूल उनका अलग-अलग शैली में विकास करने में सहायक सिद्ध हो। पाठ्यक्रम में मात्र वे ही विषय रखें जाए जो केवल आईएएस, डॉक्टर, इंजीनियर बनाएं। हमें अच्छे किसान, सैनिक, लिपिक, ड्राइवर, रसोइए, लेखक, चिंतक आदि भी चाहिए। इन्हें शिक्षित करने का प्रावधान भी हमारी शिक्षा-पद्धति में होना चाहिए। देश में कुशल श्रमिकों की भारी माँग है। रोजगार मुहैय्या कराने वाली उच्च शिक्षा पर बल देना होगा।

- आई॰टी॰ प्रोफेशनलस की संख्या बढ़ानी होगी।
- ई-लर्निंग करे अधिक मज़बूत करना होगा।
- पाठ्यक्रम नई सोच, प्रश्न करने की प्रवृत्ति को जन्म देने वाला हो।
- सेल्फ-स्टडी की क्षमता बढ़ाता हो।
- शिक्षा उद्योग से जुड़ा हो।
- पाठ्यक्रम ऐसा हो जो छात्र के कौशल को विकसित करें, उसको कार्यकुशल एवं दक्ष बनाए।

- पाठ्यक्रम छात्र के व्यक्तित्व का विकास (personality development)करने वाला हो, अत: Seminar, Workshop, Presentation को ज़्यादा महत्त्व दिया जाए।
- पाठ्यक्रम में कार्यशालाओं, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं, प्रश्नोत्तरी (Quize) कला संगीत जैसे आयोजनों को महत्त्व मिले।
- Personality Development को शिक्षा के सभी स्तरों (Primary, Secondary and Higher) पर अभियान के रूप में लेना होगा।
- आज शिक्षा पढ़ने, जानने, सोचने की बजाय छात्रों को नम्बर लाने की तरकीब खोजने को प्रेरित करती है। छात्र पाठ्यपुस्तक को देखे बिना, कुंजी की सहायता से परीक्षा पास कर लेता है।
- हमें पाठ्यक्रम को subjective बनाना होगा (objective नहीं) ताकि छात्र अपने आपको अभिव्यक्त कर सके, अपनी भाषाई क्षमता दिखा सकें।
- Home-Assignment की जगह presentation को रखना होगा ताकि बच्चे matter copy न करें। उनकी presentation skill भी Develop होगी।
- Internal Assesment के नंबर Internal Teacher के हाथ में न हो।
- Infrastructure की भी बड़ी भूमिका होती है अत: शिक्षा नीति में व्यापक बदलाव की आवश्यकता है।
- शिक्षा इतनी सस्ती हो कि देश का प्रत्येक नागरिक उसका लाभ उठा सके।
- शिक्षा के सभी स्तरों पर (प्राइमरी, सैकेण्डरी, उच्च) खेल-कूद की संस्कृति को बढ़ावा देना होगा। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। अत: छात्र के मानसिक-बौद्धिक विकास की पहली सीढ़ी उसका स्वस्थ शरीर ही होगा अत: पाठ्यक्रम में स्वस्थ दिनचर्या, स्वास्थ्य ज्ञान देने वाली विषयवस्तु भी हो। परंपरागत (योग शिक्षा) को आज की शिक्षा-व्यवस्था के साथ जोड़ने की आवश्यकता है।
- पौराणिक साहित्य को पाठ्यक्रम में रखना होगा, जो नारी-सम्मान का पाठ-पढ़ाए क्योंकि **यत्र-नार्यन्तु पूज्यते तत्र रमन्ते देवता।**

अत: आर्थिक विकास में प्रबल रूप से सहायक तकनीकी, प्रौद्योगिक, वैज्ञानिक विषयों के साथ परंपरागत ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र, कला, साहित्य को भी पाठ्यक्रम में रखना होगा क्योंकि आर्थिक विकास के साथ सामाजिक सांस्कृतिक विकास भी आवश्यक है जिसके लिए छात्रों को अपनी संस्कृति, सामाजिक परंपराओं, रीति-रिवाजों की जानकारी हासिल करनी होगी जो साहित्यिक एवं कलात्मक शिक्षा से मिलेगी।

डॉ. जसपाली चौहान, एसोसिएट प्रोफेसर, दिल्ली, विश्वविद्यालय, मो. : 9810053059
ई-मेल : chauhanjaspali@yahoo.com, F-13, Mansarover Garden, New Delhi-110015

✧ ✧ ✧

नारी की बदलती अस्मिता : क्या खोया क्या पाया

डॉ0 अमिता तिवारी

समकालीन हिंदी उपन्यासों में नारी अस्मिता अनेक रूपो में बदलती हुई दिखाई देती है । आज की स्त्रियाँ अपने अनुसार अपना जीवन जीना चाहती हैं । अपने लक्ष्य को प्राप्त करने कि लिए वह सब सीमाओं और बंधनो को तोड़ती है, मूल्यो, परम्पराओं को नकारती है, धिक्कारती है, और आँखों पर पटी बाँधकर बिना इधर उधर देखे छलाँग लगाते हुए अंधी दौड़ में शामिल हो जाती हैं । कई बार वे उस पद प्रतिष्ठा को प्राप्त भी कर लेती हैं । परन्तु उसके बदले उन्हे जो कीमत चुकानी पड़ती है वह बहुमूल्य होती है ।

मनुष्य और समाज के बीच निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। कही व्यक्ति का संघर्ष व्यक्तित्व के विकास के लिए होता है, कही देश और समाज के लिए । साहित्य समाज में घट रहे इसी संघर्ष की अभिव्यक्ति है जो कि साहित्यकार अपने अनुभवो से चित्रित करता है। साहित्य में जीवन का संघर्ष ही प्रतिफलित होता है।

आधुनिक युग में समाज की संरचना बड़ी तीव्र गति से बदल रही है। समाज और परिवार की संरचना के बदलने के साथ ही मानवीय संबंधों में भी परिवर्तन आया है। स्त्री पुरूष, माता - पिता, भाई - बहन आदि रिश्तों के समीकरण आज बदल गए हैं। आधुनिक चेतना से युक्त होने के कारण स्त्री और पुरूष के संबंधों में गुणात्मक परिवर्तन आया है । और भावना स्थान बौद्धिकता ने निया है। यही कारण है कि परिवार के प्रत्येक सदस्य की अपनी सोच है अपनी राह है। स्त्री और पुरूष के संबंधों में भी बदलाव का कारण यही बौद्धिकता है ।

समकालीन उपन्यासकारों ने भारतीय समाज में आए इसी गुणात्मक परिवर्तन का चित्रण तो अपने उपन्यासों में किया है साथ ही नारी जीवन में जो बदलाव आया है वह भी बडी सूक्ष्मता से व्यक्त किया है। महिला उपन्यासकारों ने नारी चरित्रों के माध्यम से नए मूल्यो और पुराने मूल्यो की टकराहट से उत्पन्न स्थितियों विसंगतियों को भी अपने उपन्यासों में व्याख्यायित किया है ।

आज स्त्री पितृसत्तात्मक वचर्स्व को नकार रही है और अपनी अस्मिता स्थापित कर रही है। लेकिन उसकी अस्मिता क्या उसके लिए संभावनाओं के नए द्वार खोलती है या नए मूल्यो को स्वीकार करने चाह में अपनी सीमाओं का उल्लंघन कर वह एक ऐसी अंधी सुरंग में प्रवेश कर जाती है जहाँ कोई रोशनी की किरण नही दिखाई देती। मृदुला गर्ग, चित्रमुदगल, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, शरद सिंह आदि ऐसी महिला लेखिकाएँ हैं जिन्होंने ऐसे नारी चरित्रों की रचना की जो पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देते हुए समाज से टक्कर लेते हुए अपनी बनाई राह पर चल पड़ी हैं।

प्रश्न यह है कि जिन शाश्वत मूल्यो को छोड़कर आज की नारी आधुनिकता के नाम पर स्वतंत्रता, स्वछंदता के नाम पर नए मूल्यो को अपनाती जा रही है क्या वे मूल्य परिवार, समाज, और खुद उसके लिए कल्याणकारी हैं? नारी की यह बदलती अस्मिता उसे सुख प्रदान करती है या कही वह इसके लिए दुखी भी होती है।

समकालीन उपन्यास कारों ने जीवन को नई दृष्टि से देखा है। अधिकांश समकालीन उपन्यासों के केंद्र में वह नारी है जो चेतन है, व्यक्तिनिष्ठ है और अपनी अस्मिता के प्रति सचेत है। समकालीन युग की नारी और प्रेमचंद युगीन नारी में अंतर है। समकालीन हिंदी उपन्यास की नारी अपनी सोच, विचार, जीवन मूल्य और अपनी अस्मिता को महत्व देती है।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में नारी अस्मिता अनेक रूपो में बदलती हुई दिखाई देती है। आज की स्त्रियाँ अपने अनुसार अपना जीवन जीना चाहती हैं। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने कि लिए वह सब सीमाओं और बंधनो को तोड़ती है, मूल्यो, परम्पराओं को नकारती है, धिक्कारती है, और आँखो पर पटी बाँधकर बिना इधर उधर देखे छलाँग लगाते हुए अंधी दौड़ में शामिल हो जाती हैं। कई बार वे उस पद प्रतिष्ठा को प्राप्त भी कर लेती हैं। परन्तु उसके बदले उन्हे जो कीमत चुकानी पड़ती है वह बहुमूल्य होती है। चित्र मुदगल के उपन्यास ''एक जमीन अपनी'' की नीता अभिनेत्री बनने की चाह में सक्सेना से संबंध स्थापित करती है। यह जानते हुए भी कि सुधीर शादी शुदा है उससे शारीरिक संबंध बनाती है, उसके साथ बिना विवाह किए पति पत्नी के समान रहती है। वह अभिनेत्री बन भी जाती है पर उपलब्धियो के नाम पर निराशा ही उसके हाथ लगती है और अंत में दुखी होकर वह आत्महत्या कर लेती है। ऐसी उपलब्धि का क्या लाभ जो मनुष्य का जीवन ही समाप्त कर दे। शरद सिंह के उपन्यास ''कस्बोई सिमोन'' की सुगन्धा भी समाज की परवाह न करते हुए रितिक के साथ लिव इन रिलेशन में रहती है। रितिक के पिता जब उसे समझाते हैं कि यदि उसे रितिक के साथ रहना है तो विवाह करके रहे तब वह उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा की बात को नकारते हुए कहती है ''आप जिस सामाजिक प्रतिष्ठा की बात कर रहे है वह उस समय कहाँ चली जाती है जब किसी जब किसी नव वधू को जलाकर मार दिया जाता है। यह प्रतिष्ठा उस समय कहाँ चली जाती है जब किसी पत्नी से छुटकारा पाने के लिए अकारण उसे बदलन कण्रार दे दिया जाता है। आखण्रि। कब तक हम अपनी कायरता को प्रतिष्ठा के नाम पर ढोते रहेंगे ।''1 परन्तु जब

वही रितिक उस पर अविश्वास करता है और दोनों के संबंधों में दरार पड़ जाती है तब उसे छोड़ने के अतिरिक्त और कोई विकल्प उसके पास नही बचता। रितिक से संबंध बिच्छेद होने पर अकेले रह जाती है और पछताती है।

आज स्त्रियाँ काम और आइडेंटिडी के चक्कर में घर परिवार के दायित्व से विमुख होती जा रही है। इससे पति पत्नी के जीवन में टकराव बढ़ता जा रहा है और इसका गलत प्रभाव बच्चो पर पड़ रहा है। प्रभा खेतान के उपन्यास ''छिन्नमस्ता'' की प्रिया जानती है कि वह काम में अधिक व्यस्त होने के कारण पति नरेन्द्र और बच्चे को समय नही दे पा रही। वह दोनों में संतुलन नही बना पा रही । इसलिए नरेन्द्र कहता है ''संतुलन औरवह भी तुमसे? तुम तो सदा से वन टैरैक माइंड की हो। पागलो की तरह अब दिन रात इसी के पीछे। सुबह आठ बजे घर से निकलती हो और रात आठ शक्ल दिख जाए तो भाग्य हमारे । मै कही चलने के लिए कहूँ तो थकी हुई हूँ। सर में दर्द हो रहा है। और अभी कोई तुम्हारा कोई व्यापारी आ जाए तो तुरन्त उसे लेकर तुम रात बारह बजे तक बाहर। तब तुम खूब चहकने लगती हो, कहाँ से हँसी आ जाती है चेहरे पर ।''2

यह सच है कि आज स्त्री की महत्वाकांक्षा अत्यंत बढ गई है। आज की स्त्री अपनी महत्वाकांक्षा या अपने अनुसार जीवन जीने की चाह में नई अस्मिता तलाशने की चाह में घर परिवार छोडकर घर से बाहर तो निकल आती है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नैतिकता और संस्कारों के सभी बंधनो को तोड़ती है और कहीं कहीं तो शोषण भी सहती है परन्तु बिडम्बना यह है कि इस शोषण को वे शोषण नही मानती । जैसे प्रभा खेतान अपने और डॉक्टर साहब के सम्बन्ध को चाहे जितना आत्मीय माने लेकिन कही न कही डॉक्टर साहब उनका शोषण कर रहे है और वे शौक से करा रही हैं। इसी तरह ''मुझे चाँद चाहिए'' की वर्षा वशिष्ठ फिल्म में काम करने के लिए हर्ष से प्रेम करते हुए भी सुधांशु सेशारीरिक सम्बन्ध बना लेती है । चित्र मुदगल के उपन्यास ''एक जमीन अपनी'' की नीता किसी पद को पाने और सफलता की सीढियाँ चढ़ने की चाह में अपनी देह को सहर्ष माध्यम बना लेती है । नीता अंकिता से कहती है ''जिंदगी में वह जो कुछ हासिल करना चाहती है उसे प्राप्त करने के लिए वह किसी भी सीमा तक जा सकती है। यह सच है कि वह अपने बनाए रास्ते पर चलकर अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेती है पर अंत में नीता को दुख पीडा घुटन, संत्रस के अतिरिक्त कुछ नही मिलता। हार कर वह आत्महत्या कर लेती है। नीता जानती है कि सुधीर शादी शुदा है परन्तु फिर भी वह सुधीर से प्रेम करती है क्योंकि उसी के सहारे वह विज्ञापन जगत की ऊचाईयो को प्राप्त करती है। यही नही वह वह उसके साथ लिवइनरिलेशन शिप में रहती है। और अपने प्रेम को उचित ठहराती है। उसे पवित्र मानती है। वह कहती है ''हम प्रेम करते है। हमारा संवाद है। परिपक्व मानसिक जुड़ाव। हम वर्जनाहीन होकर जिएँगे, बंधनहीन होकर बंधेंगे। रूढि मुक्त हो मानसिक वरण।''3 अंत में यह रूढि मुक्त बंधन उसके गले का फंदा बन जाता है और उसका जीवन समाप्त हो जाता है। सुधीर उसे धोखा देता है। बिडम्बना तो यह है कि ''आँवा'' की नमिता और ''एक जमीन अपनी की नीता जैसी लड्कियो को यह क्यों नही समझ आता कि एक

पुरूष यदि अपनी पत्नी को धोखा दे सकता है तो वह अपनी प्रेमिका को भी धोखा दे सकता है। चित्र मुदगल के उपन्यास ''एक जमीन अपनी'' के माध्यम से यह बात तो स्पष्ट होती है कि अपने मूल्यो संस्कारों को छोड़कर नारी की कोई पहचान नही बनती। स्वतंत्रता के नाम पर वह चाहे जितनी उड़ान भर ले पर अंत में उसके हाथ पछतावा ही लगता है। उसे कोई सुख कोई सम्मान नही मिलता।

वास्तव में नारी ने नारी अस्मिता के नाम पर जिन मूल्यो को अपनाया है उससे उसे निराशा, कुंठा, यौन उत्पीड़न, अकेलेपन के अतिरिक्त कुछ नही मिला। स्वतंत्रता के नाम पर वह पुरूषो की भोग्या बनकर रह जाती है। यह दुख की बात है कि पुरूष की स्त्री के प्रति जो सामंती सोच सदियों से चली आ रही है वह नही बदली है परन्तु उससे बडा दुख और बिडम्बना यह कि आज की पढ़ी लिखी स्त्रियाँ पुरूष की इस सोच को बढ़ाने में सहायता कर रही है। जल्दी से पैसा कमाने और सुख सुविधाओं की चाह में आज की स्त्रियाँ पुरूषो के किसी भी झाँसे में आ जाती है और उसे सर्वस्व समर्पण कर देती हैं।

यह संघर्ष की कौन सी कसौटी है कि संघर्ष के नाम पर दैहिकसम्बन्धो का खुला चित्रण किए जाने का प्रचलन हो गया है किंतु यह स्त्री विमर्श की मूल चेतना नही है। स्त्री विमर्श की मूल चेतना में रूढ़ियों गलत परम्पराओं को तोड़ना था। नारी के प्रति समाज का जो भोग्या दृष्टिकोण था उसे बदलना था।

कोई भी समाज अपनी संरचना और सोच के अनुसार ही चलता है। भारतीय समाज की अपनी संरचना है, अपनी सोच और संस्कार है। जिसमें परिवार और विवाह संस्था की सहभागिता है। जब हम अपनी संरचना के अनुसार जीते हैं तभी हम संतुलित रह पाते है।

नारी को अपने प्रति सचेत होना चाहिए। उसका अपना अस्तित्व है। उसे भी निर्णय की छूट होनी चाहिए लेकिन घर परिवार और पुरूष के वर्चस्व से मुक्ति के लिए कुछ भी कर गुजरना नारी अस्मिता नही है। जैसे प्रभा खेतान के उपन्यास ''छिन्नमस्ता'' की प्रभा अपने व्यवसाय को बढ़ाने की खणतिर छोटे से बच्चेकी परवाह किए बिना घर छोड़कर निकल पड़ती है। पर आत्मिक शांति उसे उसके बाद भी नही मिलती। ना उसे बच्चे का प्यार मिलता है ना परिवार का सुख ना ही उसे कोई अपना कहने वाला है। ऐसा नही है कि उसे संबंधों की आवश्यकता नही है। जब वह एयर पोर्ट पर बेहोश हो जाती तो उसे फिलिप की याद आती है।

बिना विवाह किए जीवन बिताने निर्णय अनेक आधुनिक स्त्रियाँ लेती हैं और अंतत: वे अपने इस निर्णय से पछताती है। दिखाने के लिए वह समाज के सामने भले ही अपने आपको निर्भीक, निडर और स्वतंत्र घोषित करती हैं पर वे अंदर से हताश, निराश टूटी हुई होती हैं। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में स्वीकार किया है कि कि उन्हे कभी मानसिक शांति नही मिली। वे लिखती हैं ''मुझे कोई शारीरिक सजा नही मिली किसी दैहिक पीड़ा का एहसास कभी नही हुआ

लेकिन एक चरम मानसिक यंत्रणा को एक स्थायी आतंक को झेलते रहने को मै बाधय थी।''4 और ऐसी यंत्रणा जिसका कोई अंत नही था।

किसी विवाहित स्त्री के जीवन में दुख या तनाव आता है तो उसे घर परिवार, समाज से सहानुभूति मिलती है और उसे समाप्त करने का प्रयास किया जाता है और कभी-कभी वह समस्या समाप्त भी हो जाती है पर नारी अस्मिता के क्रांतिकारी कदम से कमाई गई यह मानसिक यंत्रणा कभी समाप्त नही होती और स्त्रियो की स्थिति साँप और छछून्दर की तरह हो जाती है। समाज उन्हे स्वीकार नही कर पाता और उस यंत्रणा भरी जिंदगी को छोड़ने का कोई रास्ता उनके पास नही होता। डॉ० साहब के साथ रहते हुए प्रभा खेतान की स्थिति कुछ इसी तरह की थी। वे कभी भय मुक्त और तनाव मुक्त नही रह पाई। उन्होने खुद स्वीकार किया है ''उनके साथ रहते हुए मै खुद तनावग्रस्त होती जा रही थी। काम का बोझ मुझे अनुशासित करता लेकिन इसके साथ मेरी छोटी-छोटी खुशियों की होली जला करती। मेरी सबसे बड़ी त्रासदी यह थी कि मै हमेशा भय ग्रस्त रहती। समाज के ताने बोली का भय उनके परिवार में एक बाहरी व्यक्ति बनकर रह न जाऊँ इसका भय डॉ० साहब के विमुख होने का भय, मेरा स्थायी स्वभाव बन गया।''5 यदि आज नारी को अपनी अस्मिता स्थापित करनी है तो उसमें संघर्ष की शक्ति होनी चाहिए। बिना पुरूषो के जिंदगी जीने की भावना और शक्ति होनी चाहिए। उसे अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण करना आना चाहिए। न कि एक शोषण खत्म करने की चाह में दूसरे शोषण के ऐसे दलदल में फँस जाना जहाँ से न तो वह निकल सके और न ही उसे शोषण का अहसास हो।

संदर्भ :

1. शरद सिंह - कस्बोई सिमोन - पृ, 94
2. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता - पृ, 11
3. चित्र मुदगल - एक जमीन अपनी
4. प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या पृ, 84
5. प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या पृ, 174

डॉ अमिता तिवारी, एसोसिएट प्रोफेसर, जीसस एंड मेरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. : 9871455224

गढ़ी हुई मूरत

डॉ. सुशीला गुप्ता

एक दिन सुजाता सुबल को लेकर उसके स्कूल जा रही थी। रास्ते में उसका सामना श्याम से हुआ। उसके साथ दो और लड़के थे। वे तीनों मिलकर दो लड़कियों को छेड़ रहे थे। राहगीर उनको देख थोड़ी देर रूकते फिर आगे बढ़ जाते थे। सुजाता को गुस्सा आया, वह उन लड़कियों के पास गयी और कहा ''लड़के तुम्हें छेड़ रहे हैं। तुम सकपकायी-सी क्यों हो? उनको जवाब क्यों नहीं देती?' माँ का गुस्सा देख सुबल घबड़ा गया। माँ चलो'' कहते हुए उसका हाथ पकड़कर खीचे खींचने लगा। सुजाता ने दोनों लड़किया से कहा,'' आओ मेरे साथ। उसने एक तमाचा श्याम को लगाया।

माँ! महान् क्या होता है? आज क्लास में हमारी टीचर ने बताया कि महात्मा गाँधी महान् थे। उन्होंने गाँधीजी के बारे में बहुत-सी बातें बतायीं, अच्छी तरह से समझाया भी, लेकिन मेरी समझ में नहीं अया कि महान् का मतलब क्या होता है। महान् का मतलब क्या बहुत लंबा होता है?'' सुबल ने पूछा।

''नहीं बेटा।'' सुजाता ने कहा।

''तो क्या बहुत मोटा होता है?''

'नहीं बेटा। कोई भी आदमी शरीर से नहीं अपने काम से महान् होता है। गाँधीजी तो दुबले पतले इनसान थे। कपड़े भी मामूली पहनते थे। कमर में धोती और कंधे पर चादर के अलावा वे कुछ भी नहीं पहनते थे।''

''ऐसा क्यों माँ?''

''हमारे घर के पास झोंपड़पट्टी है न? वहाँ पर बहुत से लोगे के पास कपड़े नहीं होते। हमारे पूरे देश में बहुत से गरीब लोग हैं, जिनके पास खाने के लिए अनाज और पहनने के लिए कपड़े नहीं होते। गाँधीजी ने उन गरीबों की दशा देखकर अपने कपड़े भी मामूली कर लिये। उन्होंने यही सोचा था कि हमारे गरीब भाईयों के पास कपड़े-लत्ते नहीं हैं तो मैं भी मामूली कपड़े ही पहनूँगा। उन्होंने पूरे देश को अच्छी अच्छी बातें बतायी और सिखायी, इसलिए वे महान् कहलायें?''

''तो क्या मैं भी महान् बन सकता हूँ?''

''हाँ बेटे क्यों नहीं? तुम अच्छे बच्चे हो न? पढ़ाई में मन लगाओ, अपने दोस्तों से

मेल रखो। अपनी टीचर की हर बात मानो। अभी तो तुम अच्छे बच्चे बनो।''

''मेरी क्लास का यश है न माँ, वह बहुत खराब है। वह हमेशा झूठ बोलता है और दूसरों की चुगली करता रहता है। पढ़ाई में उसका बिलकुल मन नहीं लगता, पढ़ाई में वह फिसड्डी है फिसड्डी।

''दूसरे की बुराई नहीं करते बेटा। अच्छे लड़को के साथ रहा करो।''

''मैं तो एक अच्छा लड़का हूँ माँ।''

माँ-बेटे की बातचीत हो रही थी, इतने में घर के बाहर से शोर-गुल की आवाज आने लगी। पहले तो सुजाता ने बोला जाने दो मुझे क्या करना। लेकिन शोर-गुल के साथ गाली-गलौज की आवाज आने लगी तो उससे नहीं रहा गया।

सुजाता के पड़ोस में मरम्मत का काम चल रहा था। आठ-दस मजदूर काम पर लगे थे। उनके ऊपर ही एक लड़का बुरी तरह चिल्ला रहा था और भद्दी-भद्दी गालियाँ बक रहा था।

सुजाता ने एक आदमी से पूछा ''क्या माजरा है? उसने बताया,'' यह लड़का ही बिगड़ैल है मैडम। श्याम नाम है इसका। वह किसी की नहीं सुनता। उसका बाप ठेकेदार है, पैसेवाला है लेकिन उसके सब बुरे धंधे चलते रहते हैं। शराबी-जुआरी है तो बेटा कैसा होगा। फिजूल ही मजदूरों के साथ जोर-जबरदस्ती कर रहा है। बहुत बुरी-बुरी गाली देता है।''

''उसे कोई रोकता नहीं।''

''कौन रोकेगा मैडम उसे? जो रोकेगा, उसी की शामत आ जायेगी। दो -चार गुंडों के साथ बिना वजह किसी के घर में घुसकर, उत्पात करने लगता है। राह चलती लड़कियों को भी छेड़ता रहता है। पुलिस भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ती। बाप खुद बिगड़ैल है तो बेटा कहाँ से शरीफ निकलेगा।''

''मैं उसे ठीक करूँगी।''

''आप उसे ठीक करेंगी? नहीं मैडम, आप उससे पंगा मत लीजिएगा। वह बहुत नालायक लड़का है।''

सुजाता ने आव देखा न ताव। सीधे पड़ोस के मकान में चली गयी। उसने कहा, ''माँ-बहन की गाली बकते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती।''

''आप कौन हैं? आप से मतलब?

''मैं कोई भी हूँ। आस-पास शरीफ लोग रहते है। उनके सामने ऐसी गंदी जबान! छिः।

''आप मुझे धिक्कार रही है?''

''धिक्कार रही हूँ, क्योंकि तुम्हारें ऊपर मुझे तरस आ रहा है।

''आप मेरी बेइज्जती कर रही हैं? मैं देख लूँगा।''

''और क्या कर सकते हो। अच्छे-भले लड़के तुम्हारी ही तरह बिगड़ जाते है तो अपना तो नुकसान ही करते है, दूसरो को भी नुकसान पहुँचाते है।'' कहती हुई सुजाता लौट गयी।

सुबल ने छूटते ही उससे पूछा, ''कितना खराब है न वह माँ। उससे तुम्हें डर नहीं लगा? लोग बोलते हैं कि श्याम से सब डरते है''।

''नहीं बेटा, डरने की क्या बात है।''

शाम को सुबल के पिता ज्ञानचंन्द्र रस्तोगी दफ्तर से लौटे तो बाहर से ही उन्हें पता लग गया कि आज सुजाता ने किसी मवाली को डाँटा है।

अन्दर आते ही वे सुजाता पर उबल पड़े, ''तुम्हें मालूम नहीं, श्याम मुहल्ले का गुंडा है। उससे कोई पंगा नहीं लेता। समझदारी इसी में है कि अपनी इज्जत बचाकर रहो। लेकिन तुम्हें तो नेतागीरी का शौक है।..... मैं तुम्हें कहाँ-कहाँ सुरक्षा प्रदान करता रहूँगा। अपना नहीं तो सुबल का तो खयाल करो। श्याम ने उसे सताया तो? यह नेतागिरी की लत छोड़ो।''

एक दिन सुजाता सुबल को लेकर उसके स्कूल जा रही थी। रास्ते में उसका सामना श्याम से हुआ। उसके साथ दो और लड़के थे। वे तीनों मिलकर दो लड़कियों को छेड़ रहे हो। राहगीर उनको देख थोड़ी देर रूकते फिर आगे बढ़ जाते थे। सुजाता को गुस्सा आया वह उन लड़कियों के पास गयी और कहा ''लड़के तुम्हें छेड़ रहे हैं। तुम सकपकायी-सी क्यों हो? उनको जवाब क्यों नहीं देती?' माँ का गुस्सा देख सुबल घबड़ा गया। माँ चलो'' कहते हुए उसका हाथ पकड़कर खींचने लगा। सुजाता ने दोनों लड़कियों से कहा, ''आओ मेरे साथ।'' उसने एक तमाचा श्याम को लगाया। तमाचा जोरदार था, उसके गाल झनझना उठे। उसने दोनों लड़कियों से कहा ''तुम दोनों इसके दोस्तों को थप्पड़ मारो। डरों नहीं।'' उनकी भी हिम्मत बढ़ी। उन्होने दोनों को तमाचा जड़ दिया।

सुजाता क्रोध में तमतमा रही थी। उसने कहा ''तुम्हारी माँ ने तुम्हें यही सिखाया है? कैसी परवरिश है तुम्हारी?'' श्याम को देखते हुए उसने कहा, ''तुम बुरी सोहबत में पड़कर गुंडागर्दी करते रहते हो। नरक का कीड़ा क्यो बनना चाहते हो? छोड़ क्यों नही देते बुरी सोहबत? बुरी सोहबत पाकर अच्छे-अच्छे लड़के बिगड़ जाते हैं। मन लगाकर पढ़ाई करो और अच्छी सोहबत में रहना सीखो।.... तुम यदि मेरी कोख से जन्म लेते तो ऐसी हरकत कभी न करते।.....'' वह सुबल का हाथ पकड़ चुपचाप लौट पड़ी। सुबल ने हवा में अपना हाथ भांजा, मानो वह भी दोषी को दंड दे रहा है।

श्याम को उसके पिता ने बहुत बार मारा-पीटा था। उसकी माँ ने भी तंग आकर उस पर कई बार हाथ उठाया था।.....लेकिन आज के थप्पड़ की मार अलग ही थी। गाल पर चोट लगी थी उसका उस पर असर तो हुआ था, अपमान के कारण वह विलविला गया था, लेकिन तिरस्कार के शब्दों ने उसके दिल पर गहरी चोट की थी। तुम अगर मेरी कोख में जन्म लेते तो.... सुजाता के ये शब्द उसके हृदय को चीरे जा रहे थे....तुम अगर मेरी कोख से जन्म लेते तो शब्दों से पीछा छुड़ाना उसके लिए मुश्किल हो रहा था। शब्दों की चोट इतनी मारक थी कि उसके अपने चारों ओर बस यही सुनायी दे रहा था। एक गाड़ी उसके सामने से सर्राटे से निकल गयी, वही प्रतिघ्वनि। सामने गाड़ी का हॉर्न बज रहा था, वही प्रतिघ्वनि। ठेलेवाला अपना ठेला लिये जा रहा था....वही प्रतिध्वनि। उसे हो क्या गया! क्या वह पागल हो जायेगा?

श्याम के दिल के अन्दर कुछ उबल रहा था। इसके पहले भी उसका तिरस्कार हुआ था, लेकिन उसने दूने तिस्कार से उसका जवाब दिया था.....लेकिन इस तिरस्कार में इसके लिए एक चुनौती थी....क्या मैं। कुछ साबित नहीं कर सकता? कुछ साबित करना बहुत मुश्किल तो नहीं....तो अब वह वही करेगा, कुछ साबित करके ही दिखायेगा। उसके रास्ते में कठिनाईयाँ आयीं' अच्छा काम करता तो उसके दोस्त ही उसका मजाक उड़ाते। मैं पढ़ाई करूँगा, अच्छे अंक लाऊँगा परीक्षा में, उसे हतोत्साहित करने वाले बहुत से दोस्त थे।

सबसे पहले उसने बुरी सोहबत छोड़ी। उसे मंजिल दिखी तो सही रास्ता मिला। पुराने सब दोस्त बारी-बारी से छूटे। सही रास्ते में उसे कम दोस्त मिले, लेकिन जो मिले, वह अच्छे थे। हितैषी थे, पढ़ाई में उसका साथ देते थे।

श्याम सवेरे जल्दी उठता, नाश्ता करके कालेज चला जता। धीरे-धीरे उसके शिक्षकों को यकीन हो गया कि श्याम पूरी तरह बदल गया है। वह खाली समय लाइब्रेरी में अपना समय बिताता। अब उसे पढ़ाई का जुनून था। घर में पिता पहले की ही तरह नशे में धुत देर रात घर में घुसते, उसकी माँ के साथ गाली-गलौज करते। लेकिन वह इसकी ओर ध्यान ही नहीं देता था। वह और उसका कमरा। कमरा बन्द करके अपनी पढ़ाई-लिखाई में वह तल्लीन रहता।

श्याम सीढ़ी-दर सीढ़ी चढ़ता गया। ग्रेजुएट होने के बाद वह आई.ए.एस. की तैयारी में जुट गया। कामयाबी मिले ना मिले, उसे कोशिश करनी थी- ''करत करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान''। आखिर वह दिन आया जब वह आई0ए0एस0 के लिए चुन लिया गया।

नौकर ने सुजाता रस्तोगी को सूचना दी, भौजी, श्याम नाम का कोई लड़का आपसे मिलने आया है। ....श्याम तो मवाली था गुंडा था, कोई दूसरा श्याम होगा, सुजाता ने सोचा।

सामने श्याम खड़ा था, लेकिन वह श्याम का दूसरा रूप था-गुंडे जैसा दीखने वाले श्याम का दूसरा ही रूप, सुरूचिपूर्ण वस्त्रों में विनम्रता की मूर्ति, यह आकर्षक युवक। प्रणाम करते हुए उसने कहा, बैठने के लिए नहीं कहेंगी?

हाँ हाँ बैठो।

यकीन मानिए आंटी। मैं अब सुधर गया हूँ। आपके एक थप्पड़ ने मेरी जिन्दगी की दिशा बदल दी। आपके तिरस्कार के शब्द यदि मेरी कोख से जन्म लेते तो.....'' लगातार मेरा पीछा करते रहे.....मैं सुधर गया हूँ आंटी।'' एक गुजारिश है आपसे, अगले शनिवार को मेरे कॉलेज में एक प्रोग्राम है। आपको आना है। प्लीज आप जरूर आइएगा। जब तक आने का वादा नहीं करेंगी, तब तक मैं यहाँ से टलूँगा नहीं।''

''कालेज का प्रोग्राम। चक्कर क्या है?'' सुजाता आश्चर्य चकित थी। कई साल पहले का दृश्य उसकी आँखों के सामने नाच उठा। ''ठीक है, मैं आऊँगी। पता दे दो।''

सुबल को भी ले आइएगा। अब तो वह भी बड़ा हो गया होगा।

रस्तोगी साहब दफ्तर से आये तो सुजाता ने श्याम के बारे में जानकारी दी उन्हें भी उत्सुकता हुई। उन्होंने कहा, ''मैं भी आता प्रोग्राम में, लेकिन मुझे टूर पर जाना है। तुम सुबल के साथ चली जाना।''

नियत समय पर सुजाता सुबल को लेकर कार्यक्रम में पहुँची। हॉल खचाखच भरा हुआ था। उसे देखते ही, श्याम के इशारा करने पर, प्रिंसिपल साहब ने उसे मंच पर बुलाया और बड़े आदर के साथ वेक्ताओं के बीच बिठाया।

कार्यक्रम की प्रस्तावना के बाद प्रिसिंपल साहब माइक, पर आये। उन्होंने कहा कि मेरे कालेज के लिए फक्र की बात है कि हमारे कालेज का भूतपूर्व विद्यार्थी श्याम, आज आई0ए0एस0 में सेलेक्ट हो गया है-आज वह अपनी सफलता का सारा श्रेय श्रीमती सुजाता रस्तोगी को देना चाहता है, मैं चाहूता हूँ कि स्वयं श्यामपुष्प गुच्छ, नारियल और शॉल से उनका अभिनन्दन करें। श्रीमती सुजाता रस्तगोगी का अभिनन्दन एक अभूतपूर्व दृश्य था। श्रोताओं ने खड़े होकर तालियों की गड़गहाट से पूरे सभागृह को गुँजा दिया। भावविभोर सुजाता के लिए सब कुछ अप्रत्याशित था। वह माइक पर बोलने के लिए खड़ी हुई तो केवल इतना ही कहा, ''बच्चे की परवरिश बहुत मायने रखती है, अच्छी आवोहवा में कोई भी पौधा खिल उठता है। श्याम बेटे! उँचा ओहदा और गाड़ी-बँगला तुम्हारी राह देख रहे हैं, लेकिन तुम हवा में उड़ने के बजाय अपनी मिट्टी में पैर जमाये रखना। मेरी मंगलकामनांए तुम्हारे साथ हैं, खुद खुश रहो और दूसरों को भी खुश रखो।'' प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए श्याम माइक पर आया तो उसने कहा '' मैं सुजाता रस्तोगी मैडम के प्रति हृदय से अभारी हूँ कि हमारे निमंत्रण पर आप कार्यक्रम में तशरीफ लायीं। मैं आपको यह दिखाकर आश्चर्य में डालना चाहता था कि आपने कैसे एक जानवर को इन्सान बना दिया। पहले मैं कॉलेज का एक बदनाम गुंडा था। मेरे प्राध्यापक मुझे देखकर मुँह बिचकाते थे। कॉलेज के लड़के मुझसे खौफ खाते थे। आप लोगों को ताज्जुब होगा कि श्याम कैसे बदल गया। आप लोगों के बीच बालक एकलव्य की कहानी मालूम होगी। गुरू द्रोणाचार्य को पता ही नहीं लगा कि यह भील बालक तीरबाजी में अर्जुन के समकक्ष कैसे हो गया, जब कि उन्होंने उसे कभी शिक्षा हीं नहीं दी। उनकी मूर्ति को ही उसने अपना गुरू माना। सुजाता मैडम को नहीं मालूम कि वे ही मेरी गुरू हैं, मेरी भाग्य विधाता है। मैडम आपको याद होगा, बीच सड़क में मुझ बिगड़ैल लड़के को एक दिन आपने तमाचा जड़ा था, क्योंकि मैं दो लड़कियों के साथ छेड़छाड़ कर रहा था।....आपने कहा था, अगर तुम मेरी कोख से जन्म लेते तो ऐसी हरकत कभी न करते। आपके तिरस्कार के शब्दों ने कभी पीछा न छोड़ा।.... दिल में गहरा घाव हो गया मैडम।..... मेरी बेचैनी किसी ने न देखी, देखा मेरा बदलता हुआ चेहरा। मैंने सकंल्प किया मैं आई0ए0एस0 बनकर रहूँगा। आज आपकी गढ़ी हुई मूरत आपके सामने है।

सुबल श्रोताओं के बीच बैठा सोच रहा था, मेरी माँ ने श्याम को जिन्दगी की सार्थकता प्रदान की, उसके लिए गर्व का विषय है। क्या सचमुच उसकी माँ ने श्याम नामक मूर्ति गढ़ी है!''

डॉ. सुशीला गुप्ता, डिग्निरी लाइफ़ स्टाइल टाउनशीप, कॉटेज–74, कर्जत–माधेरान मेन रोड, नेरल, रायगढ़–410101 (महाराष्ट्र)

स्मृति शेष : डॉ. जगन्नाथ मिश्र

डॉ. अमित कुमार मिश्रा

बिहार और भारत के राजनीति में डॉ. जगन्नाथ मिश्र सदैव देदीप्यमान नक्षत्र की भांति भाषित रहे है। वे अपने छात्र जीवन से ही राजनीति में सक्रिय रहे। वे एक जाने-माने शिक्षाविद एवं एक राजनेता के रूप में जाने जाते रहेंगे।

चाहे राजनीति का क्षेत्र हो, शिक्षा का हो, सामाजिक सुधार का, या साहित्य का, डॉ. जगन्नाथ मिश्र की गरिमापूर्ण उपस्थिति ने सभी को सिंचित किया है। डॉ. मिश्र को स्मरण करते हुए लोग उनके राजनीतिक अवदानों की चर्चा तो करते ही हैं एक प्रख्यात शिक्षाविद् के में भी ख्याति रहे है। उन्होंन अपने कैरियर की शुरूआत ही बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर व्याख्याता के रूप में की। डॉ. मिश्र ने 'पब्लिक फाइनेंस' में पी.एच.डी. की थी। शिक्षा के क्षेत्र में उनका अवदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। अपने जीवन काल में उन्होंने दो दर्जन पुस्तों की रचना की है। इन पुस्तकों से अर्थशास्त्र की शिक्षा को उन्नत बनाने में सहायता ली जाती रही है। उन्होंने अर्थशास्त्र के 20 शोधार्थियों का शोध निर्देशन भी किया। पत्र-पत्रिकाओं में उनके पैंतिस - चालीस शोधपत्र और आलेख प्रकाशित हैं।

समाज सुधार में योगदान :-

समाज में निचले तबके और गरीब-भूमिहीनों की सहायता के लिए डॉ. मिश्र सदैव तत्पर रहे। भू-दान आन्दोलन के दौरान उन्होंने पूरे प्रदेश की पैदल-यात्रा इस यात्रा में तहत तीन लाख लोगों के लाभान्वित होने का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। कृषि क्षेत्र में कृषि मंत्री के पद पर रहते हुए उन्होंने बिहार की कृषि को समुन्नत बनाने की दिशा में अहम योगदान दिया। व्यक्तिगत नलकूप के लिए अनुदान की व्यवस्था की गई। 4 हजार से

ज्यादा राजकीय नलकूप लगवाए गएं। सिंचाई-कर की बकाया राशि से किसानों को सामूहिक रूप से मुक्त किया गया और छोटे किसानों के लिए बिजली-शुल्क भी माफ की गई।

शिक्षा के क्षेत्र में :

डॉ. मिश्र ने बिहार में, शिक्षा के क्षेत्र में भी कई अविस्मरणीय योगदान दिया है। ललित नारायण मिश्र आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन संस्थान (पटना), ललित नारायण मिश्र व्यापार प्रबंधन महाविद्यालय (मुजफ्फरपुर), बिहार आर्थिक अध्ययन संस्थाना (पटना), ललित नारायण मिश्र तिरहुत महाविद्यालय (मुजफ्फरपुर) आदि की स्थापना कर डॉ. मिश्र ने बिहार को शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी बनाने का सफल प्रयास किया। इसके अलावा संस्कृत शिक्षा बोर्ड की स्थापना, 54000 प्राथमिक, 3000 माध्यमिक, 429 संस्कृत विद्यालयों का राजकीयकरण, 235 महाविद्यालयों और 39 संस्कृत महाविद्यालयों का अंगीभूतिकरण आदि शिक्षा के क्षेत्र में उठाए गए ऐसे मजबूत कदम हैं जो सदैव डॉ. मिश्र महता का एहसास कराते रहेंगे। के पथ पर अग्रसर किया गया।

राजनीति के क्षेत्र में :

बिहार और भारत की राजनीति के क्षेत्र में डॉ. जगन्नाथ मिश्र सदैव नक्षत्र की भांति भाषित रहे है। वैसे तो वे अपने छात्र जीवन से ही राजनीति है। वैसे तो वे अपने छात्र जीवन से ही राजनीति में सक्रिय रहें लेकिन उनका राजनीतिक जीवन 1968 ई0 में सक्रिय रूप से शुरू हुआ जब वे पहली बार मुजफ्फरपुर, चम्पारण एवं सारण निर्वाचन हुए। तद्उपरांत वे पांच बार (1972, 1977, 1980, 1985 और 1990), मधुबनी जिले के झंझारपुर से बिहार विधनसभा के लिए निरंतर निर्वाचित होते रहे। बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में तीन बार उन्होंने कुशल नेतृत्व किया। पहली बार 1975-1977 तक, दूसरी बार 1980-1983 तक और तीसरी बार 1989-1990 तक उन्होंने बतौर मुख्यमंत्री बिहार के विकास के पथ पर अग्रसर किया। इसके अलावे वे केन्द्र सरकार में भी कई बार अलग-अलग विभागों में मंत्रीपद पर आसीन हुए।

डॉ0 जगन्नाथ मिश्र आजीवन राजनीतिक सामाजिक रूप से बिहार को नेतृत्व करते रहें। वे अपनी दमदार राजनीति और कुशल व्यक्तित्व के कारण नव-बिहार के निर्माताओं में शुमार रहें है।

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।
सम्पर्क : 9304302308, ई–मेल : amitraju532@gmail.com

अनुवाद – डॉ. नीरज दइया
मूल – अतुल कनक

बच्चा नहीं जानता

बच्चा रोता है
क्योंकि वह नहीं जानता–दूधवाले का हिसाब
बनिये का ब्याज,
अनाज का भाव
और पिता की बेरोजगारी।

भूख लगने पर
रोटी मांगता है पेट
क्योंकि पेट नहीं समझता–
मुद्रास्फीती की घटती दर,
मुद्राकोष पर सुधार का असर
और भुगतान के संतुलन का गणित।
यदि आंतों की हूक
और आंखों की अय्याशी में
नहीं होता अंतर
तो रंगीन टी.वी. के विज्ञापन से
ज्यादा जरूरी होती रोटी।

विधाता डाल देता है–
इतने मोड इन आंतों में
कि नहीं मिटती
रोटी की भूख
भाषणों से,
विज्ञापनों से।
बच्चा रोता है
क्योंकि नहीं जानता वह
आंखों और आंतों के सच के बीच
पसरे हुए हैं – सात समंदर...।

इन दिनों

इन दिनों
मैं नहीं बोलता
बोलती हैं– आँखें तुम्हारी,
और नहीं जानता क्यों
तुम्हारे सामने पहुँचते ही
चुक जाते हैं– मेरे शब्द....
कस कर मुठ्ठी में बांधना चाहता हूँ–
गतिशील इस समय को
और डूबते सूरज के पीछे
बिखर जाना चाहता हूँ–
तुम्हारे दरवाजे पर
एक खुशबू की तरह...
इन दिनों
मेरी आँखें मुस्कुराती नहीं हैं
क्योंकि मन ही मन डरता हूँ मैं–
कि मुस्काने से
कहीं बिखर नहीं जाए
आँखों में बने तुम्हारे स्मृति–चित्र।

सुनो!
तुम ऐसे ही कहते रहो
ऐसे ही मुस्कुराते रहो
ऐसे ही लिखते रहो हथेली पर मेरा नाम
तुम नहीं जानते
कि ऐसे ही तो जिंदा हूँ मैं
इन दिनों।

मेरे पास बिटिया

मेरे पास सोती नन्ही बिटिया
जैसे आंखों के पास नींद
नींद के सिराहने सपने,
सपनों की जेब में सुख
सुख की मुठ्ठी में आने वाला कल
और कल के चेहरे पर लिखें-
दो अक्षर- आ शा...
मेरे पास सोती मेरी लाडली
जैसे ऊंचे पहाड़ों पर
सुगंध लिए लहराती है हवा
हवा के लहराने से थिरकता झील का पानी
और पानी पर बना दिया हो किसी ने
संतूर पर मधुर राग बजा कर
लोरी का चित्रा कोई....

मेरे पास सोती मेरी लड़की
जैसे जाग कर आशीर्वाद देता हो पूर्वज
कि कमरे में उतर आई हो चांदनी,
कि जिंदा हो गए हो गीतों के बोल
कि मुझसे करता हो संवाद मेरा मौन...।

आओ, बात करें!

आओ, बात करें
भूखे किसानों की बातों में
बड़े सेठों की बातों का
भाग देते हैं
और उसमें से घटा देते हैं-
नेता जी की बातें,
फिर जो भी शेषफल आए
उसमें पत्नी की बातों का जोड़ लगाएं
और
कुंवारी बहन के दहेज का हिसाब,
बूढ़ी माँ के ईलाज का खर्च,
पिता के कुर्ते की सिलाई
और बच्चों की किताबों का इंतजाम।
फिर शेष रहे अगर कुछ भी
तो देखें फिल्म
और गाएं मस्ती से-
'देखा है पहली बार
साजन की आंखों में प्यार।'
आओ, बात करें।

अतुल कनक (जन्म 16 फरवरी, 1967) कविता–उपन्यास आदि विधाओं के साथ विविध विषयों पर समसमायिक लेखन। प्रकाशन – आओ, बातां करां (कविता संग्रह), जूण जातरा, छेकड़लो तार (उपन्यास) और मगन धूली (अनुवाद)। साहित्य अकादेमी का सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त रचनाकार।
संपर्क – 3ए 30, महावीर नगर–विस्तार, कोटा– (राज.)
मोबाइल : 09414308291, ई–मेल : atulkanak@gmail.com

✧ ✧ ✧

तकनीकी: तरक्की या त्रासदी

दिनों दिन तकनीकी के विकास का गुल खिल रहा,
प्रेम पतझड़ के, पल्लव बन गिर रहा।
नाम, पद, पहचान नहीं, नम्बरों में बँट गए।
तकनीकी ने दी त्रासदी, ऐसी की अखियाँ तरस गई
बातें तो होती रही, मिलने को अखियाँ बरस गई
दूर थे पर पास दिलों के
अब पास होकर दूर
दिल की दूरी बढ़ती गई
थे स्नेह प्रेम मानव के मीत
दिन वो आज हैं बने अतीत
गाँधी ने देखा स्वप्न था
सब स्वरोजगार हों और आत्म निर्भर भी
भौतिक खुख भोग रहे नैतिकता नष्ट हुई
सत्य और सत्य व अहिंसा की रट लगाते
हिंसा व असत्य की पगडंडियाँ बनती गई
इतनी बनी, इतनी बढ़ी
दर, दर दरारे, दिल की दीवार तक दरक गई
मिसाइलें बना बना, मिसाल कायम कर रहे
मानव तो बने नहीं, मानव बम बन गए
प्रवंचना विजय की, पर विजय हुए नहीं
यंत्रों का दुरोपयोग कर
घट-घट घटती गई, मन की देख मानवता
आँखों को दीखती हैं कम, आपस की एकता
तकनीकी की ये त्रासदी, ऐसी की अखियाँ तरस गई
बातें तो होती रहीं, मिलने को अखियाँ बरस गई
सुख साधनों में मिली शान्ति, विश्व अशान्ति बढ़ती गई
महलों और कारखानों से क्षणिक सुकून भले मिले
लघु व कुटीर उद्योग टूटते गए, दुश्मनी की देख बस्तियाँ बसती गई
ऐसी नहीं थी सोच गाँधी की, थी कभी नहीं
पर कहते हैं जब तक है साँस
लोगों रखो विश्व शान्ति की आस और सोचे सभी
है ये क्या....? तकनीकी की तरक्की या त्रासदी?

डॉ0 अर्चना त्रिपाठी, वोकेशनल डिपार्टमेंट, श्री अरविन्द महिला कॉलेज

✧ ✧ ✧

सुबह का प्रणाम

सुबह उठता हूँ और देखता हूँ कि
सूरज ने चहुंओर दीपक जला रखा है
मंद बयार जागरण का संदेश फैला रहा है
पक्षी काम पर जा चुके हैं
और सुबह-सुबह कई खेत
जुते दिख रहे हैं
नजर जरा दूर जाती है और पाता हूँ
सड़कें काफी स्वच्छ हैं
नालों से गंदगी उगाही जा चुकी है
मैंने जो कचरा रखा था रात को
हटाया जा चुका है
कुछ गाड़ियाँ सावधानी से
मासूम खिलखिलाते बच्चों को
स्कूल छोड़ने जा रही है
आस-पड़ोस की औरतें
रसोई बनाने या बर्तन-कपड़ा धोने में
तन्मय हैं
मैं बिना देर किए
हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ
सूरज को, मंद बयार को,
पक्षी को, किसान को,
मजदूर को, कामगार को,
डोम को, चमार को,
ड्राइवर को, खिलखिलाते बच्चों को,
धरती को और विराट स्वरूपा स्त्री को।

नक्सलवाद

एक भव्य संघर्ष के बाद
पाई गई वह आजादी
कितनी खोखली थी
जिसने नंगे को नंगा और
भूखे को भूखा ही रहने दिया
इसी नंगेपन और भूख ने
जन्म दिया था, नक्सलवाद को
जिसे दबाने के लिए
हमारी सरकार ने
हर बदलती सरकार ने
उसकी नाजायज औलाद अफसरों ने
और समाज के ठेकेदारों ने
जिस अमानवीय कृत्यों का
नंगा नाच दिखलाया
उससे हैवानियत भी दंग रह गई
धरती के प्रिय पुत्रों को
जिस गुमनामी की जिंदगी
और मौत मिली
वह आज भी जल रूपी आंसू से
निमग्न कर जाती है वसुंधरा को
इतिहास कुछ भी कहे
धरती अपने हर चित्कार में
पुकार लगाती है
मुझे अपने हक के लिए
गुमनाम मारे गए मेरे पुत्र (नक्सलवादी)
अपने लहू से सिंच गए हैं
वे कितने भी गुमनाम हों
इतिहास में नामधारी
बड़े से बड़े सूरवीरों से कहीं अधिक
प्रिय हैं वे मुझे।

अमित कुमार मिश्रा, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।
मो. : 9304302308, ई–मेल : amitraju532@gmail.com

राजकुमारी मिश्र साहित्य यात्रा सम्मान डॉ. राजपुत को

जयप्रकाश मानस

लब्ध प्रतिष्ठित लेखक, इतिहासकार, मानवविज्ञानी और यश भारती सम्मान से अंलकृत डॉ. रामकृष्ण राजपुत को 17वें अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन एथेंस (ग्रीस) में ''राजकुमारी मिश्र साहित्य यात्रा सम्मान''-2018 से अलंकृत किया गया।

यह सम्मान उन्हें ग्रीस के जाने माने भाषाविद्, भारतीय संस्कृति, सभ्यता और साहित्य के अध्येता - ग्रीक इंडोलेजिस डॉ. दिमित्रीओस वासिलियादिस के करकमलों से प्रदान किया गया ।

डॉ. दिमित्रीओस ऐसे पहले भाषाविज्ञानी हैं जिन्होंने जनतंत्र, विधि और बहुलतावाद के परमविश्वासी दो प्राचीन सभ्यताओं के मध्य परस्पर आवाजाही पर आस्था प्रकट करते हुए पूरे 5 सालों की कड़ी साधना से ग्रीक-हिंदी और हिंदी-ग्रीक शब्दकोश निर्माण का गुरुत्तर कार्य संपन्न कर दिखाया है। वे एथेंस विश्वविद्यालय में विदेशी भाषा स्कूल में हिंदी के प्राध्यापक हैं।

सबसे खणस बात यह कि डॉ. दिमित्रीओस आज से 15 वर्ष पूर्व 2003 से Indo & Hellenic Society वित Culture and Development (ELINEPA) जैसी महत्वपूर्ण संस्था के माध्यम से ग्रीस में प्रवासी भारतीय, ग्रीस के छात्र-छात्राओं, नागरिकों और दूतावास के अधिकारियों को भारतीय साहित्य और संस्कृति से निरंतर जोड़े हुए हैं।

35 वर्ष तक योग्य विद्यार्थियों की पीढ़ी बनानेवाले डॉ. राजपुत को इसके पूर्व 11

लाख का यश भारती सम्मान (उ.प्र.), 1 लाख का साहित्य भूषण सम्मान (उ.प्र.), डॉ. बी.आर. अंबेडकर राष्ट्रीय सम्मान, दिल्ली, उ.प्र. साहित्य सम्मेलन महर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन सम्मान, शिखर श्री सम्मान, साहित्य श्री सम्मान, भदंत आनंद कौशल्यायन पत्रकारिता सम्मान, उज्जैन, सहित अन्य सैकड़ो सम्मान व पुरस्कार मिल चुके हैं ।

श्री राजपुत विभिन्न संगठनों में क्रियाशील रहे हैं जिसमें प्रमुख हैं-

1. संस्थापक, रामकृष्ण राजपुत म्यूजियम, फर्रूखाबाद
2. उ.प्र. प्रगतिशील लेखक संघ
3. अध्यक्ष, फर्रूखाबाद महोत्सव
4. अध्यक्ष, भारतीय दलित शोध संस्थान
5. इंडियन नेशनल हिस्टॉरिकल काउंसिल
6. हिंदुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद
7. पांचाल शोध संस्थान, कानपुर आदि।

उनके कृतित्व व व्यक्तित्व पर 2 छात्राओं द्वारा शोध कार्य किया जा चुका है तथा उनके शोध निर्देशन में 15 शोध छात्रों को पीएच.डी की उपाधि मिल चुकी है।

उनकी इतिहास, मानवविज्ञान, पुरातत्व पर 27 पुस्तकें प्रकाशित एवं पुरस्कृत हो चुकी हैं उन्होंने 8 विभिन्न पत्रिकाओं का संपादन किया है।

डॉ० रामकृष्ण राजपूत को युनान में राजकुमारी मिश्र साहित्य-यात्रा सम्मान प्रदान किये जाने के बाद लौटने के बाद भव्य स्वागत फारूखाबाद में किया गया।

जयप्रकाश मानस, सम्पादक, सृजनगाथा डॉट कॉम
सम्पर्क : www.srijangatha.com

रेवती रमण की पुस्तक 'परम्परा का पुनरीक्षण' प्राप्त हुआ। यह पुस्तक आधुनिक हिन्दी साहित्य से संबंध उनके लेखों का संकलन है। रेवती रमण की आलोचना दृष्टि विस्तृत है। वे किसी सीमा में आबद्ध होकर रचना को नहीं देखते। उनके सामने केवल कृति होता है जिसका सूक्ष्म विश्लेषण वे प्रस्तुत करते हैं और इस क्रम में रचना का मर्म पाठकों के सामने उद्घाटित होता है। रेवती रमण एक गम्भीर अध्येता है। अपनी बातों के लिए उनके पास पर्याप्त तर्क मौजूद होता है। इसप्रकार पाठकों के समक्ष एक निर्भीक, निश्पक्ष एवं तटस्थ चित्र अंकित होता है।

'अब भी बची है कविता' **कमला प्रसाद** का काव्य पुस्तक है। कमला बाबू एक सुपरिचित कवि हैं और एक प्रखर वक्ता भी हैं। इस पुस्तक में कमला प्रसाद की छंद बद्ध और मुक्त छंद की लगभग अठासी कविताएँ संकलित हैं। कवि कहता है –

बची रहेगी कविता कल भी,
बची रहेगी दुनिया।
बचा रहेगा तरल मनुज तो,
बची रहेगी दुनिया।

उक्त पंक्तियों में कवि कविता की सार्थकता को सिद्ध करता है। सारी कविताएँ रोचक एवं पठनीय है।

साहित्य यात्रा के संपादक प्रोफेसर कलानाथ मिश्रा को अपनी पुस्तक भेट करते ख्यातिलब्ध आलोचक एवं बिहार विश्वविद्यालय के यशस्वी प्राध्यापक प्रो. रेवती रमन

मंत्रिमंडल सचिवालय राजभाषा विभाग द्वारा आयोजित भारतेन्दु जयंती का दीप प्रज्जवलित कर उद्घाटन करते हिन्दी प्रगति समिति के अध्यक्ष एवं बिहार गीत के रचनाकार श्री सत्यनारायण, साहित्य यात्रा के संपादक कलानाथ मिश्र, डॉ. अशोक कुमार सिन्हा (राजेन्द्र कॉलेज छपरा), डॉ. कुमारी अरूणा (मगध महिला कॉलेज) एवं राजभाषा विभाग के पदाधिकारीगण।

RNI No. : BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906
Postal Registration No. : PT-7C

डॉ. जगन्नाथ मिश्र

24 जून 1937 - 19 अगस्त 2019

सामाजिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक गगनांकन में देदीप्यमान नक्षत की भांति भासित डॉ. जगन्नाथ मिश्र का विगत 19 अगस्त 2019 को देहावसान हो गया।

वे तीन बार (1975-77, 1980-83 और 1989-1990) अखण्ड बिहार के मुख्यमंत्री रहे तथा भारत सरकार में केन्द्रीय मंत्री रहे। अपने आकर्षक सहज सभ्य व्यक्तित्व के कारण वे जन मन में निवास करते थे। यही कारण है कि लगभग 20 वर्ष तक राजनीति के किसी पद पर नहीं रहने के उपरान्त भी उनके निधन से पूरे प्रदेश में शोक की लहर दौड़ गई।

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में भी स्वर्गीय डॉ. मिश्र की सक्रियता निरंतर बनी रही। उनकी 23 पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें उनकी विद्वता की झलक स्पष्ट पायी जा सकती है। उनके शैक्षणिक ज्ञान प्रसार का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उनके कुशल निर्देशन में अर्थशास्त्र में 20 शोधार्थियों ने डाक्टरेट की उपाधि पायी है।

स्वर्गीय डॉ. जगन्नाथ मिश्र की पुण्य स्मृतियों को नमन करते हुए साहित्य यात्रा परिवार उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करता है।

Design & Print @ Gyan Ganga Creations # 09334110685